भगवतीचरण वर्मा

['चित्रलेखा' से 'सीधी सच्ची बातें' तक]

दारीन

लेखिका
डॉ० कुसुम वार्ष्णेय

★

साहित्य भवन प्रा० लि०
इलाहाबाद

© लेखिका

संस्करण
प्रथम, सन् १९६८

प्रकाशक
साहित्य भवन, प्रा० लि०
इलाहाबाद

मूल्य
८ ०० रुपये

मुद्रक
रामशरण अग्रवाल
प्रगति प्रेस
७३ कल्याणीदेवी रोड
इलाहाबाद

समर्पण

उन पूज्य पिताजी को

जो मेरी प्रेरणा थे।

जिनसे मुझे सच्चा प्यार मिला।

क्रम-सूची

प्रथम खंड

द्वितीय खंड

एक स्वर और

मुझे अपने सम्बन्ध में कुछ कहना चाहिए इस पुस्तक की लेखिका का यह आग्रह है। लेकिन मेरी समझ में नहीं आता कि मैं क्या कहूँ। लेखिका ने मेरे कथा-साहित्य का मूल्यांकन किया है वह मूल्यांकन सही है या गलत है इससे मुझे कोई मतलब नहीं। अपनी आलोचना के प्रति मैं हमेशा से उदासीन रहा हूँ चाहे वह आलोचना कड़ुवी रही हो चाहे वह मीठी रही हो। आलोचनाओं के अनुसार मैं अपने को बदल तो नहीं सकता। व्यक्ति की कमजोरियाँ व्यक्ति की अच्छाइयों का अविच्छिन्न भाग रहा करती हैं। न तो दूसरों की नजर में खटकने वाली मेरी खूबियाँ मेरी दूसरों की नजर में खटकने वाली कमजोरियों पर विजय पा सकती हैं और न वह कमजोरियाँ उन खूबियों को विकृत कर सकती हैं।

मैं कहानीकार हूँ क्योंकि कहानी कहने की प्रवृत्ति मैंने पाई है। मैं कवि भी हूँ क्योंकि भावना की रंगीनियों में अपने को खो देने की प्रवृत्ति भी मुझे मिली है। मैं मूल रूप से भावना प्रधान प्राणी हूँ। लेकिन बौद्धिकता के क्षेत्र में मैं अपने को किसी से भी हीन नहीं समझ पाता। वैसे शास्त्रों के अध्ययन से मुझे अरुचि रही है किताबों से अर्जित ज्ञान को मैं अपने जीवन में कभी महत्व नहीं दे पाया क्योंकि वह किताबों द्वारा अर्जित ज्ञान मेरा सत्य नहीं बन सका। सत्य बनने के लिए इस ज्ञान को अपने अनुभवों द्वारा ही अर्जित किया जाना चाहिए और अनुभव स्वयं में भावनात्मक होता है। शायद इसीलिए विशुद्ध शास्त्रीय अथवा वैज्ञानिक क्षेत्र को न अपना कर मैंने भावना का क्षेत्र अपनाया है।

मैं अपने जीवन के क्रम को देखता हूँ। एक मध्यवर्गीय बौद्धिक परिवार में मेरा जन्म हुआ। यद्यपि मेरी पाँच वर्ष की अवस्था में ही मेरे पिता का देहान्त हो गया था और मेरी उन्नति एवं विकास के प्रति सिवा मेरी माता के और किसी दूसरे में दिलचस्पी न थी, और माता का शासन मुझ पर नहीं के बराबर रहा है लेकिन जाति और कुल के संस्कारों से प्रेरित होकर अनेक बाधाओं के बावजूद मैंने विश्वविद्यालय की शिक्षा प्राप्त की। वैसे बाल्यकाल में ही मेरे ऊपर से शासन हट गया था और कला की प्रवृत्ति मुझमें तेरह-चौदह वर्ष की अवस्था में प्रस्फुटित हो गयी थी लेकिन मध्य वर्ग की आस्थाओं एवं

नतिक मायताओ मे कारण मैं उखड नहीं पाया। आदोलना मे उखाड पछाड से मैंने अपने को दूर रक्खा, ग़लत राह पर बहकने से मैं सावधान रहा। हो सकता है कि इसमें मध्यवग की धर्म भीरुता वाली कायरता का हाथ रहा हो वैसे स्पष्ट रूप से मैं कायर कभी नही रहा। जिदगी भर उन्ही नतिक माम ताओ एव आस्थाओ से मैं चिपका रहा हूँ यद्यपि बौद्धिक दृष्टि से इन आस्थाओ एव मान्यताओ पर स मेरा विश्वास विश्वविद्यालय मे जीवन काल स ही जाता रहा।

कविता के क्षेत्र में मुझे बाल्यकाल में ही सफलता मिल गयी थी। जहाँ तक मुझ याद है उन दिनो मुझ छायावाद का प्रवर्तका म स्वीकार किया जाता था। लेकिन मेरे अन्दर एक कहानीकार भी था जो बाद मैं जागा। मैंने विद्यार्थी-काल म ही दुनिया के श्रेष्ठ उपन्याम पढ डाले थ और सन् १६२६ म मैंने प्रयोग के रूप मे एक उपयास लिखा पतन । वह उपयास सफल न रहा, लेकिन उस उपयाम को लिखने के बाद मुझे यह भरोसा हो गया कि मैं कहानी का गठन कर सकता हू।

उन्ही दिनो मेरे जीवन मे आर्थिक सघर्षों का दौर आया। सिवा साहित्य क और किसी काम मे मन नही लगता कुल की परम्परा के अनुसार मैंने वकालत पास करके जीविकोपाजन के लिए वकालत आरम्भ भी की थी लेकिन जिन उपाया से वकालत जमती है और चलती है उन पर विश्वास न होने क कारण मुझे यह अनुभव हो गया कि उस पेशे को अपना कर मैंने ग़लती की और इसीलिए साहित्य को ही अपनी आजीविका का साधन बनाने का एक गौण सकल्प मेरे मन म जागा। कविता केवल शौक की ही चीज बन सकती है वह सिवा कवि सम्मेलना के और कहा बिकती नही और इसलिए मैंने कहानी एव उपन्यास मे ही अपनी गति देखी। सन् १६३१ मे मैंने चित्रलेखा लिखना आरम्भ किया और सन् १६३४ मे जब मैं वकालत छोडकर आजीविका के लिए इलाहाबाद में साहित्य स सम्बद्ध अय क्षेत्रो की तलाश मे आकर बस गया था 'चित्रलेखा प्रकाशित हुई। चित्रलेखा लिखकर मैंने दूसरा उपयास लिखा— 'तीन वप जो सन् १६३६ म प्रकाशित हुआ। कविता छूटने लगी थी। मेर अन्दर-वाला कहानीकार मुखर हो उठा था।

उन दिनो परिस्थितियाँ कुछ ऐसी थी कि विशुद्ध साहित्य द्वारा आजीविका की समस्या हल हा ही नहीं सकती थी। इसलिए इधर उधर छिट पुट काम करने पडे लेकिन जो काम भी मैंने किये वह साहित्य से सम्बधित थे। फ़िल्मो में कहानी एव सवाद-लेखक का काम मैंने किया स्वयं पत्र-पत्रिका निकाल कर उन मे

सम्पादन का काम किया। नियति के हलकोरों में मैं बहता रहा—दो वर्ष मैं कलकत्ता में रहा, दो वर्ष मैं बम्बई में रहा—दोनों जगह यही समझता रहा कि वहीं बसना है। सन् १९४८ में नवजीवन के प्रधान सम्पादक की हैसियत से मैं बम्बई से अपने प्रदेश की राजधानी लखनऊ वापस लौटा, और तब मैंने देखा कि हिन्दी साहित्य का संसार यह भूल चुका है कि मैं कवि हूँ। केवल उपन्यासकार के रूप में लोग मुझे जानते हैं, और सबसे विचित्र बात यह है कि हिन्दी साहित्य-संसार के आचार्य गण मुझे उपन्यासकार की हैसियत से स्वीकार करने में भी संकोच करते हैं यद्यपि कई विशिष्ट विद्वानों एवं तटस्थ आलोचकों ने मेरे 'टेढ़े मेढ़े रास्ते' उपन्यास को उस समय के हिन्दी उपन्यासों में सर्वश्रेष्ठ माना है। इसका कारण सम्भवतः यह रहा हो कि उस उपन्यास में राजनीतिक पुट होने के कारण अपने को प्रगतिशील कहने वाले आलोचकों ने एक स्वर से मेरी निन्दा की थी और मुझे गालियाँ तक दी थीं।

मैं पहले ही कह चुका कि जो भी काम मैंने किया था वह अस्थायी समझ कर किया था ताकि मेरे साहित्य सृजन में आघात न पहुँचे। सन् १९४८ के अन्त में ही मैंने 'नवजीवन' से त्यागपत्र दे दिया। आर्थिक संघर्ष अब फिर सामने आ गया था। सोच रहा था कि बम्बई वापस जाऊँ फिल्मों में और तभी आकाशवाणी में हिन्दी सलाहकार बनने का प्रस्ताव मेरे सामने आया।

बम्बई वापस लौटने के अर्थ होते अपना कदम पीछे हटाना विवशता की हालत में यह सोचा था वैसे बम्बई वापस जाने की इच्छा मुझमें नहीं थी और मैंने आकाशवाणी वाला प्रस्ताव स्वीकार कर लिया। हिन्दी सलाहकार की हैसियत से मुझे साहित्य सृजन की सुविधा रहेगी, और आकाशवाणी में रह कर मैंने फिर से हिन्दी-साहित्य में अपना स्थान बनाना आरम्भ किया। मैंने कविताएँ लिखीं नाटक लिखे निबंध लिखे लेकिन उपन्यास मैं नहीं लिख पाया। 'भूले बिसरे चित्र' उपन्यास का लिखना मैंने आकाशवाणी में आने के पहले से ही आरम्भ कर दिया था लेकिन सात वर्ष तक आकाशवाणी में काम करने के बाद भी मैं उसका एक खण्ड ही लिख पाया था। सन् १९५७ में मैंने साहस किया और आकाशवाणी से मैंने इस्तीफा दे दिया। इस साहस का एक कारण और था मेरे पिछले उपन्यासों का उस समय तक काफी प्रचार हो चुका था और मुझे इतनी रायल्टी मिलने लगी थी कि मैं भूखा न मरने पाऊँ। तब से मैं उपन्यास लिखने में व्यस्त हो गया। सन् १९५७ के बाद मैं लगातार अपने खिलौने 'भूले बिसरे चित्र', 'सामर्थ्य और सीमा', 'रेखा' और 'सीधी-सच्ची

घातें—यह और महत्वपूर्ण उपन्यास मैंने लिखे। दो छोटे छोटे उपन्यास भी मैंने लिख डाले—वह फिर नहीं आई और धन पाँव।

  

मैं नियतिवादी हूँ और मेरे नियतिवादी होने के सुस्पष्ट कारण भी हैं। मैं जो कुछ हूँ परिस्थितियों ने मुझे वह बनाया है। और यह परिस्थितियाँ मेरे हाथ में नहीं थीं। एक मध्यवर्गीय परिवार में मेरा जन्म हुआ जिसकी निजी मान्यताएं थीं परम्पराएं थीं और उसके अपने निजी संस्कार थे। यह परम्पराएँ मान्यताएं और संस्कार मेरे अविच्छिन्न अंग हैं। फिर मुझे जन्म से ही कुछ प्रवृत्तियाँ मिलीं और उन परिस्थितियों में जिनमें मैं बिना अपने प्रयत्न के या अपनी इच्छा के पड़ गया था मेरी उन प्रवृत्तियों का विकास हुआ। मुझे एक ऐसा अहं मिला जो किसी के आगे झुक न सकता था और उसने मुझे जीवन भर संघर्षों में रत रक्खा। जीवन की सुख सुविधा से मैंने अपने को हमेशा दूर पाया, यद्यपि सुख-सुविधा के प्रति एक मोह मुझमें हमेशा रहा है और आज भी है। कभी-कभी तो ऐसा लगने लगता है कि मेरा अहं एक अभिशाप की भाँति मेरे सर पर सवार है।

लेकिन जब मैं ठंडे दिमाग से सोचता हूँ तब ऐसा लगता है कि जो कुछ हुआ या जो कुछ हो रहा है उसमें मुझे किसी तरह की शिकायत नहीं होनी चाहिए। जीवन में जितने भी संघर्ष मुझे करने पड़े हैं वे सब अनुभवों के रूप में मेरी चेतना और मेरे मन के विकास में सहायक रहे हैं।

मैंने बहुत कुछ पाया है दूसरों की दृष्टि में न सही पर अपनी दृष्टि में तो अवश्य। और इस पाने के क्रम में जहाँ तक मैं समझता हूँ मैंने खोया कुछ भी नहीं है। आखिर खोने के लिए मेरे पास था भी क्या? और फिर मैं सोचने लगता हूँ कि खोने के लिए दूसरों के पास ही क्या है? धन वैभव—यह दूसरों को अपाहिज और पंगु ही बना सकते हैं और इस धन वैभव की बहुत बड़ी कीमत चुकानी पड़ती है मनुष्य को अपने अन्दरवाले स्वाभिमान से, अपने अन्दरवाली मानवता से। मुझे इतना संतोष है कि कि मेरे अन्दर वाला स्वाभिमान मुझमें अक्षुण्ण है। बाकी जो भी भौतिक सुख सुविधाएं हैं वह सब शरीर से सम्बद्ध हैं।

लेकिन दुनिया में न कोई पानेवाला है न कोई देनेवाला है—नियतिवाद तो यही कहता है। मेरा अहं मेरे लिए सच्चा है लेकिन यह अहं अहंकार बन कर विकृति का रूप धारण कर लेता है। इस अहंकार से मनुष्य अशिष्ट और उद्दत हो जाता है। कभी कभी मुझे यह अनुभव होने लगता है कि यह अशिष्टता

का गर्व मुझ पर हावी होता जा रहा है। मुझे इस गर्व से लड़ना है। आखिर यह अहंकार ही तो मनुष्य का सबसे बड़ा शत्रु है—सामाजिक परिवेश में।

लेकिन करूँ क्या? कला स्वयं में कलाकार के अहं के आरोपण में विकसित होता है। दूसरों को अपने में तन्मय कर लेना—कला का एकमात्र उद्देश्य है मुझे यह लगता है। कलाकार की हरेक कलाकृति उस कलाकार के अहं का आरोपण हुआ करती है। इस दोष से बच सकना कलाकार के लिए सम्भव नहीं है। लेकिन अहं का आरोपण और अहंकार का आरोपण—यह दो अलग अलग चीजें हैं। कलाकृति के सृजन के समय कलाकार अपने अहंकार का आरोपण करता है वह कलाकार जब अपने सामाजिक जीवन में अपने अहं का आरोपण करता है तब वह अहंकार बन जाया करता है।

जिन्हें मैं विकृतियाँ समझता हूँ उनको बरदाश्त न कर सकना समाज की दृष्टि में मेरा बहुत बड़ा अवगुण है। उनके प्रति उदासीन हो जाना या समझौता कर लेना ही इष्ट है। मैंने हमेशा ऐसा करने का प्रयास किया है। लेकिन दूसरे जब अपनी उन विकृतियों को समाज पर आरोपित करते हैं तब उनका विरोध न करके उन पर चुप रह जाना यह बड़ा कठिन हो जाता है। यह कह कर मैं अपनी अशिष्टता के अवगुण को ढकने का प्रयत्न भले ही कर लूँ—लेकिन प्रश्न यह है कि कहाँ तक विरोध किया जाय? दुनिया भर में यह विकृतियाँ आरोपित की जा रही हैं। आज के भौतिक सपनों के जगत् में हर जगह आरोपण हो आरोपण है—कर्म में, विचार में, सिद्धान्त में। और फिर यह विरोध भी तो मेरा आरोपण है—मुझे यह अनुभव होने लगता है। दूसरों को दोष देने के समय मैं भूल जाता हूँ कि मैं स्वयं दोषी हूँ।

लेकिन करूँ क्या। मैं अभी तक अपने इस दोष पर विजय नहीं पा सका। क्या मैं अपने इस दोष को ढकने के लिए निर्विकार बन गया हूँ? यह नहीं सकता। वैसे मैंने जो कुछ लिखा है या जो कुछ मैं लिख रहा हूँ उसका श्रेय पाने की उत्कट अभिलाषा मुझमें धीरे-धीरे जाती रही है। मेरा समस्त ज्ञान—मेरे समस्त अनुभव—यह सब मेरे कब हैं? यह सब तो मुझे अनायास ही मिल हैं। फिर इनके प्रति मेरी इतनी ममता क्यों हो कि इनकी निन्दा से मैं तिलमिला उठूँ? और मैं अपनी सफलता और यश के प्रति भी उदासीन रहा हूँ। बहुत सम्भव है कि उदासीनता का एक कारण यह भी रहा हो कि मैं आलसी हूँ।

अपने आलस और अपनी लापरवाही से मुझे अब तक बहुत अधिक हानियाँ उठाना पड़ा है लेकिन इन हानियों से मेरे अन्दर कोई अन्तर नहीं आ पाया। अनायास ही मान भी तो मुझे होते रहते हैं। जो कुछ मैंने चाहा वह

मिल सका। मुझे याद है कि मैं कभी अमीर और सम्पन्न बनने के सपने देखे थे मैंने राजनीतिज्ञ बनने के सपने देखे थे मैंने शक्तिशाली अफसर बनने के सपने देखे थे। लेकिन इनमें से मैं कुछ नहीं बन पाया मैं बन गया तो साहित्यकार! और अब यह सोच रहा हूँ कि अच्छा हुआ जो साहित्यकार बन गया। करोड़पती और अमीर बनने के लिए बेईमानी नहीं करनी पड़ी चोरबाज़ार का सहारा नहीं लेना पड़ा। राजनीति में आकर मिनिस्टर बन कर दूसरों के आगे हाथ फैलाना नहीं पड़ा गलत आदमियों से समझौते नहीं करने पड़े छल कपट के प्रपंच में नहीं पड़ना पड़ा और बहुत बड़ा अफसर बन कर राजनीतिज्ञों की गुलामी नहीं करनी पड़ी अपने अन्दरवाली आवाज़ का हनन नहीं करना पड़ा। और इसलिए जो कुछ मैं बन गया उससे मुझे संतोष है।

परिश्रम करके प्रयत्न करके मैं छोटी मोटी चीजों को नहीं पा सका और बिना किसी प्रयास या परिश्रम के मुझे मेरा संतोष मिल गया मुझे सुख शान्ति मिल गयी—यह नियति का विधान नहीं तो और क्या है? मेरी कोई अपनी निजी सत्ता नहीं है जो हो रहा है उसमें किसी दूसरे का हाथ है—मैं यह जानता हूँ।

  

इस पुस्तक की लेखिका डाक्टर कुसुम वार्ष्णेय ने प्रयाग विश्वविद्यालय से डाक्टरेट प्राप्त की है। उन्होंने कई महत्त्वपूर्ण शोधें की हैं और उन्हें विवेचना में गति है। विश्वविद्यालय से डाक्टरेट प्राप्त करनेवाले व्यक्तियों से शास्त्रीय ज्ञान की आशा की जानी चाहिए और यह शास्त्रीय ज्ञान डाक्टर कुसुम वार्ष्णेय में प्रचुर मात्रा में है। साथ ही वह नारी हैं और इसलिए भावनात्मक संवेदना भी प्रचुर मात्रा में है।

इस पुस्तक में मेरे अंदरवाले कथाकार की कृतियों के गुणों और दोषों का शास्त्रीय विवेचन मिलेगा। लेखिका का अपना निजी व्यक्तित्व है निजी दृष्टिकोण है और आलोचना लिखने के समय लेखिका का दृष्टिकोण भावनात्मक होने की अपेक्षा शास्त्रीय अधिक हो गया है। शायद यह स्वाभाविक भी था क्योंकि विश्वविद्यालयों की परम्परा के अनुसार लेखिका का उद्देश्य यह है कि वह हिन्दी साहित्य के विद्यार्थियों का मेरे साहित्य के अध्ययन में सहायक हो। यह पुस्तक आलोचना शास्त्र की है सृजनात्मक साहित्य की नहीं है यह स्पष्ट है।

—भगवती चरण वर्मा

दो शब्द

भगवती बाबू प्रेमचन्द से जैनेन्द्र और यशपाल तक की एक महत्त्वपूर्ण कड़ी भी हैं और प्रेमचन्द-युग के बाद के पहले और मौलिक कथाकार भी। उन्होंने हमें प्रेमचन्द के आदर्शवाद से मुक्त कराकर व्यक्ति-स्वातन्त्र्य का संदेश दिया। उनके कथा-साहित्य पर अभी तक एक भी आलोचनात्मक पुस्तक नहीं थी। इसी अभाव की पूर्ति की प्रेरणा से मैंने प्रस्तुत पुस्तक की रचना की है। कई लोगों ने मुझसे कहा कि आपने भी कौन-सा कथाकार चुना है? क्या है उनके साहित्य में नया? जो उन्होंने अपनी पहली रचना में कहा है वही उनकी अंतिम कृति में है। आदि से अंत तक नियतिवाद का पाठ पढ़ाते हैं वे। और यह सब सुनकर उत्तर की जगह मैंने प्रश्न करना चाहा कि क्या नहीं है उनके साहित्य में? उसमें एक स्वस्थ जीवन-दर्शन है। विकृतियों से वितृष्णा और अच्छाई को अपनाने की प्रेरणा है। टेढ़े मेढ़े रास्ते से एक नया और सुगम मार्ग खोजने की प्रेरणा है। उनके साहित्य में भारत के भूले बिसरे चित्र साकार हुए हैं। उनके साहित्य में भारत की छाया सच्ची उतरी है।

और अधिक मुझे कुछ कहने की आवश्यकता महसूस नहीं हो रही। जो कुछ मैंने कहना चाहा है वह मैंने पुस्तक में आद्योपान्त कहा है।

हाँ, श्रद्धेय भगवती बाबू की मैं अतिशय कृतज्ञ हूँ जिन्होंने समय समय पर मेरी शंकाओं का समाधान किया। साथ ही श्री पुरुषोत्तमदास जी टण्डन की कृतज्ञ हूँ जिन्होंने पुस्तक प्रकाशन का भार सहर्ष स्वीकार किया।

इलाहाबाद
२ ३ ६८

कुसुम वार्ष्णेय

प्रथम खण्ड

- पूर्वपीठिका
- साहित्यिक व्यक्तित्व

• कला वर्मा जी की दृष्टि में

प्रत्येक कलाकार का कला को देखने का अपना निजी दृष्टिकोण होता है और यही दृष्टिकोण उसकी कृति को विशिष्टता प्रदान करता है। कला के प्रति वर्मा जी का मौलिक दृष्टिकोण है। उनके अनुसार कला एक प्रवृत्ति है और उसके दो पक्ष हैं—एक उसका निजी-रूप और दूसरा उसका परोक्ष रूप। कला का निजी-रूप (कलाकार के पक्ष वाला रूप, जिसे अंग्रेजी में सब्जेक्टिव रूप कहते हैं) आनन्द का सृजन है, कला का परोक्ष रूप (कलाकृति का ग्रहण करने वाले पक्ष का रूप, जिसे हम अंग्रेजी में आब्जेक्टिव रूप कहते हैं) मनोरंजन का सृजन है। वर्मा जी इन दोनों रूपों को आवश्यक मानते हैं, और उस कलाकार को सफल मानते हैं जो मनोरंजन तो करता हो पर उस मनोरंजन को 'आनन्द' में परिणत भी करता हो। अतः 'महान् कला की कसौटी इसी बात में है कि वह मनोरंजन को कहाँ तक आनन्द की सीमा तक पहुँचा सका है।'[1] स्पष्ट है कला को स्वान्तः सुखाय मानते हुए, वर्मा जी उसे बहुजन हिताय भी मानते हैं। इस सम्बन्ध में उनका कथन है

"वैसे हरेक कला स्वान्तः सुखाय होती है जिस कला को कलाकार अपने में तन्मय होकर सृजन नहीं करता उसमें कलाकार प्राण प्रतिष्ठा नहीं कर सकता पर कलाकार के निजी पक्ष के साथ परोक्ष पक्ष अभिन्न-रूप से जुड़ा हुआ है क्योंकि कला का सृजन दूसरों के लिए किया जाता है, और इसलिए सामाजिक मान्यताओं के अनुसार कला का बहुजन हिताय होना नितान्त आवश्यक है। जो कला बहुजन हिताय नहीं होती वह समाज में स्थान प्राप्त नहीं कर सकती। पर कला की उत्कृष्टता उसकी शक्ति और उसकी सफलता कला के स्वान्तः सुखाय वाले पक्ष में निहित है, क्योंकि कला का स्रोत तो कलाकार की प्रवृत्ति और अन्तःप्रेरणा अर्थात् कलाकार की चेतन प्राण शक्ति में

---

१ भगवतीचरण वर्मा 'साहित्य की मान्यताएँ', पृष्ठ २२-२३ प्र० सं० हिन्दुस्तानी एकेडेमी इलाहाबाद।

है और कलाकार का उद्देश्य अपने निजी आनन्द का सृजन है। मैं बहुजन हिताय वाले सिद्धान्त को स्वीकार अवश्य करता हूँ पर इस बहुजन हिताय वाले सिद्धान्त को साहित्य का स्रोत मानने को मैं तैयार नहीं हूँ। स्वान्तः सुखाय वाले तत्व में ही साहित्य का सृजन है समाज द्वारा उस साहित्य की स्वीकृति बहुजन हिताय वाले तत्व पर निर्भर है।[१] इस प्रकार वर्मा जी स्वान्तः सुखाय वाले तत्व को प्राथमिकता देते हैं।

वर्मा जी कला में मनोरंजन को प्रधानता देते हैं। इसलिए वे दर्शन और शास्त्रीय ज्ञान से बोझिल कृति को श्रेष्ठ नहीं मानते। हम किसी भी साहित्यकार की रचना पढ़ते समय उसमें किसी विशेष दर्शन को नहीं ढूँढ़ते और न रचना से हम कोई शास्त्रीय ज्ञान पाना चाहते हैं। सामाजिक मान्यताओं का प्रतिपादन साहित्य का क्षेत्र नहीं है हम तो साहित्यकार की रचना आनन्द प्राप्त करने के लिए पढ़ते हैं और हमें आनन्द मिलता है उस साहित्यकार की भावना में जो बराबर हमारे मन को पुलकित कर देती है।[२] किन्तु मनोरंजन से वर्मा जी का अभिप्राय सस्ते मनोरंजन से नहीं है। उनकी मान्यता है कि 'कला का आदि रूप सामाजिक मनोरंजन में ही निहित है और सामाजिक मनोरंजन होने के कारण कला को व्यक्तिगत भाव से मुक्त होना चाहिए। अनादिकाल से कला को मानव जीवन में एक उच्च तथा महत्वपूर्ण स्थान मिला है क्योंकि कला सामाजिक आनन्द प्रदान से युक्त होती है और इसलिए सामाजिक हित एवं भ्रातृत्व कला का ध्येय रहा है। और इसलिए कला में सात्विकता की भावना को महत्व मिला है क्योंकि जो सात्विक नहीं है वह असामाजिकता को प्रेरणा देती है। साहित्य का क्षेत्र भावना है और साहित्य का प्रमुख उद्देश्य मनोरंजन है। सामाजिक रूप से यह भावना 'गुण' की कोटि की होनी चाहिए विकृति असामाजिक है। और साहित्य द्वारा जो मनोरंजन प्राप्त हो वह सामाजिक नियमों की अवहेलना की प्रेरणा देने वाला न होना चाहिए। सामाजिक नियमों की रक्षा मानव की स्वाभाविक या सात्विक प्रवृत्ति ही करती है और इसलिए यह मनोरंजन असात्विक न होना, चाहिए। ऐसी हालत में वह प्रत्येक साहित्य जो मानव को सात्विक मनोरंजन प्रदान करे वह समाज के लिए उपयोगी है—ऐसा मेरा मत है क्योंकि इस साहित्य से मानव की सद् और कल्याणकारिणी प्रवृत्ति को सहायता मिलती है और समाज स्वयं

१ भगवतीचरण वर्मा 'साहित्य की मान्यताएँ' पृष्ठ २४ २५ प्र० स० हिन्दुस्तानी एकेडमी, इलाहाबाद।

२ वही पृष्ठ ५८ ५९

मानव की सद् और कल्याणकारिणी प्रवृत्तियों पर कायम है।[1] और इस प्रकार वर्मा जी के अनुसार 'कला का उद्देश्य सुन्दरता का सृजन है कुरूपता का सृजन नहीं है।[2]

विषय की पुनरावृत्ति तो अवश्य होगी, किन्तु अपनी कला-कृतियों में वर्मा जी का क्या रुख रहा, उसे उन्हीं के शब्दों में प्रस्तुत करना असंगत न होगा। वर्मा जी का कथन है कि 'मैं कला को निरुद्देश्य नहीं मान पाता, यद्यपि उस उद्देश्य युक्त मानने से कला के शिथिल पड़ जाने का खतरा रहता है। मगर ध्यान से देखा जाय तो कला का उद्देश्य है *मनोरंजन प्रदान करना*। पर मनोरंजन के विविध प्रकार हो सकते हैं और ऐसी हालत में मनोरंजन के सम्बन्ध में मेरी कुछ अजीब-सी धारणा है। मनोरंजन का आत्मगत पक्ष है—उसका वस्तुगत पक्ष भी है। मनोरंजन का आत्मगत पक्ष मुझे कला के सृजन की प्रेरणा देता है लेकिन उसका वस्तुगत पक्ष ही इस कला को जनता में मान्य और जनता के लिए ग्राह्य बना सकता है। इस आत्मगत पक्ष और वस्तुगत पक्ष का समन्वय कठिन अवश्य है, पर वह असम्भव नहीं है। मनोरंजन वह श्रेष्ठ होता है जो आनन्द की सीमा तक पहुँच जाय। *यह आनन्द ही वास्तविक भावनात्मक उपलब्धि है* और वह भावना ही सब काल के लिए तथा समस्त मानव जाति द्वारा स्वीकृत होगी जो संवेदना की सृष्टि करे। मनुष्य का अस्तित्व एवं विकास ही इस संवेदना पर निर्भर है। ऐसी हालत में भावनात्मक संवेदना में ही मैं आनन्द की उपलब्धि देख पाता हूँ। दूसरे शब्दों में मैं कला का एक मात्र उद्देश्य मानता हूँ भावना का उन्नतीकरण। यह उदात्त भावना समस्त मानव विधान को मानव समाज के लिए हितकर बना सकती है।[3]

इस सदर्भ में अश्लीलता, यथार्थवाद और आदर्शवाद के सम्बन्ध में भी वर्मा जी के विचारों का संकलन समीचीन होगा। अश्लीलता जैसी वस्तु विषय में होती है उसकी अभिव्यक्ति में नहीं। और जब वर्मा जी कहते हैं कि मैं कला को वस्तु विषय मानता ही नहीं, मैं तो कला को अभिव्यक्ति मानता हूँ, तो स्पष्ट हो जाता है कि उनकी रचनाओं में वस्तु-विषय वाली अश्लीलता नहीं है। वे कहते हैं जहाँ तक मेरे *व्यक्तित्व और मेरे वस्तु-विषय का प्रश्न है* मुझे

---

१ साहित्य की मान्यताएँ, पृष्ठ ६, ३८

२ वही पृष्ठ ५५

३ भगवतीचरण वर्मा 'रंगों से मोह' (प्रस्तावना) पृष्ठ ६ १०

इसका संतोष है कि मैं असामाजिक नहीं हूँ।[१] यही कारण है कि यथार्थवाद के समर्थक होते हुए भी वे उस यथार्थ का चित्रण श्रेयस्कर नहीं मानते जो कुरूप और अकल्याणकारी है क्योंकि उनका मत है कि कला का उद्देश्य सुन्दरता का सृजन है कुरूपता का सृजन नहीं है।[२] इसलिए उनके यथार्थवाद और आदर्शवाद की परिभाषाएँ बड़ी व्यापक हैं। वे कहते हैं मैं यथार्थवाद को वह आदर्शवाद समझता हूँ जो काल और परिस्थिति से अनुशासित है। साहित्य और कला का भाग होने के कारण आदर्शवाद और यथार्थवाद दोनों में ही कुरूपता का कोई स्थान नहीं असद् और अकल्याण से दोनों ही परे हैं। वस्तुतः प्रत्येक यथार्थवाद में मानव की उदात्त भावना का समावेश होना चाहिए क्योंकि इसी उदात्त भावना में सद् और कल्याण है और प्रत्येक आदर्शवाद में सहनशीलता होनी चाहिए। शाश्वत सत्य और मान्यताओं पर ही उसकी स्थापना होनी चाहिए।[३]

• • उपन्यास और कहानी वर्माजी की दृष्टि में

वर्माजी के अनुसार आज का युग कहानी का युग है। मेरा यह निश्चित मत है कि गद्य साहित्य में भावनात्मक संवेदना की दृष्टि से उपन्यास सबसे अधिक शक्तिशाली माध्यम है।[४] व्यावसायिक दृष्टि से भी कविता की अपेक्षा आज उपन्यास कहानी ही उपयोगी हैं। भौतिक और वैज्ञानिक युग का मनुष्य कविता के प्रति उदासीन हो गया है और स्वभावतः कविता की पुस्तकों की बिक्री बहुत कम हो गयी है। कविता केवल मनबहलाव की चीज रह गयी है आजीविका के लिए कविता का कोई महत्त्व नहीं रह गया।[५]

उपन्यास में वर्माजी कहानी वाले तत्त्व को प्रमुखता देते हैं। स्पष्ट ही यहाँ आधुनिक हिन्दी उपन्यासकार जैनेन्द्र आदि में और वर्माजी के दृष्टिकोण में अन्तर है। उनका कथन है उपन्यास में कथावस्तु का विस्तार ही एकमात्र विस्तार माना जा सकता है। अन्य प्रकार के विस्तार उपन्यास को शिथिलता प्रदान करते हैं।[६] यहाँ 'अन्य प्रकार के विस्तार से वर्माजी का अभिप्राय

१ सारिका, जनवरी १९६३।
२ साहित्य की मान्यताएं पृष्ठ ५५
३ वही पृष्ठ ५५ ५६
४ वही पृष्ठ ११३ १३७
५ वही पृष्ठ १०१ १०२
६ वही पृष्ठ १३४

उपन्यास के पृष्ठों को तर्क वितर्क से भरते हैं क्योंकि तर्क वितर्क कुछ थोड़े से लोग भले ही पसन्द करें भावनात्मक अभिव्यक्ति के अभाव के कारण इन तर्कों में साधारण पाठक को कोई दिलचस्पी नहीं हुआ करती।

उपन्यास और लम्बी कहानी के सम्बन्ध में वर्माजी का मत है कि "कहानी का अच्छा गठन ही लम्बी कहानी का प्राण है। जहां उपन्यास में कथा कहने का शिल्प प्रमुख होता है वहाँ लम्बी कहानी में कथा बाँधने का शिल्प प्रमुख हुआ करता है। कौतूहल के क्षेत्र में और मनोरंजन करने में लम्बी कहानी उपन्यास की अपेक्षा अधिक सक्षम होती है लेकिन जहां तक भावात्मक संवेदना का प्रश्न है उपन्यास इसमें अधिक सशक्त है। भावना की गति वहन करता है, इस बात को मानते हुए हमें यह भी मानना पड़ेगा कि उपन्यास में लम्बी कहानी की अपेक्षा गति अधिक है। कहानी की यह गति है क्या? तभी से घटनाक्रम के चलने में एक प्रकार की गति अवश्य है लेकिन वह कला की गति नहीं कही जा सकती। भावना को आरोपित करने के लिए जितनी विविधता से काम लिया जाय उतनी ही सफलता कलाकार को मिलती। उपन्यास में अनेक कथाओं से संबंधित अनेक चरित्र आते हैं अपनी-अपनी विशेषता लिए हुए। वे कर्म करते हैं दूसरा पर इनके कर्मों की प्रतिक्रियाएं होती हैं और इस प्रकार भावनात्मक सम्वेदना का उत्तरोत्तर वृद्धि होती रहती है। इस भावनात्मक संवेदना की एक निश्चित धारा होती है—हर जगह से घूमती फिरती, भटकती और राह पाती हुई यह संवेदना अंत में एक जगह केन्द्रित हो जाती है और इतना अधिक तपने तथा परिपक्व होने के बाद यह भावनात्मक संवेदना पाठक के मन में गहराई के साथ बैठ जाती है।[१] स्पष्ट है यहाँ गति से वर्माजी का तात्पर्य घटना-क्रम की गति से नहीं है क्योंकि वह केवल कौतूहल और उत्सुकता की गति है भावनात्मक संवेदना की गति नहीं। जब तक घटना-क्रम प्रधान कहानी हाथ में रहती है, तब तक पाठक की रुचि उसमें रहती है कहानी समाप्त हो जाने के बाद कौतूहल की तृप्ति हो जाती है और इस तृप्ति के बाद मनुष्य उस घटना-क्रम के प्रति उदासीन हो जाता है। इसलिए भावनात्मक संवेदना की गति लाने के लिए अच्छे उपन्यासकार घटना-क्रम का नहीं, कुछ थोड़े से वर्णन में चरित्र के दो-एक कर्मों से वहाँ चरित्र की स्थापना करके गति उत्पन्न करते हैं।

वर्माजी कहानी के तीन अवयव प्रमुख मानते हैं—घटना चरित्र और भावनात्मक संवेदना। बिना घटना के कोई कहानी नहीं हो सकती। यह घटना

---

१ साहित्य की मान्यताएँ पृष्ठ १३६

चरित्रों की क्रिया प्रतिक्रिया के रूप में होती है। भावनात्मक संवेदना चरित्रों के साथ होती है, उस भावनात्मक सम्वेदना को उत्पन्न करता है घटना में चरित्रों का क्रम। और यहाँ घटना में रोचकता होना वर्माजी आवश्यक मानते हैं। घटना की रोचकता घटना-वैचित्र्य नहीं है अलग चीज है। घटना वैचित्र्य स्वयं में कहानी का आधार बन सकती है लेकिन घटना वैचित्र्य में भावनात्मक संवेदना हो यह आवश्यक नहीं। घटना की रोचकता में भावनात्मक सम्वेदना का होना आवश्यक है।

इस प्रसंग में यह उल्लेख कर देना भी आवश्यक है कि वर्माजी विषय वस्तु को नहीं शैली को महत्वपूर्ण समझते हैं। उनका निश्चित मत है कि क्या लिखा जाता है? इसमें कला नहीं है कैसे लिखा जाता है इसमें कला है। अतः कला का मूलाधार शैली है।[१]

इस प्रकार कला और साहित्य के संबंध में वर्माजी की मान्यताएं बड़ी स्पष्ट और सुलझी हुई हैं।

● ● ● वर्माजी का जीवन दर्शन

वर्माजी का जीवन दर्शन बड़ा स्वस्थ है और वह जीवन-सत्य पर आधारित है। अध्यात्मवाद पर वर्माजी की आस्था नहीं है। नैसर्गिक जीवन की अवहेलना या उससे उदासीनता उनकी दृष्टि में अप्राकृतिक और कृत्रिम है। दूसरे शब्दों में यह पलायनवाद की द्योतक है। जो व्यक्ति परिस्थितियों का सामना नहीं कर सकता वही अपनी स्वाभाविक प्रवृत्तियों से बचता फिरता है। मनुष्य की स्वाभाविक प्रवृत्तियाँ कुरूप नहीं हैं उसका प्रतिक्रियात्मक रूप विकृत होता है। साधारण मनुष्य में गुण सक्रिय है और विकार निष्क्रिय है। साधारण मनुष्य में जो विकृतियाँ दीखती हैं वे उसकी स्वाभाविक प्रवृत्तियाँ न होकर प्रतिक्रियात्मक प्रवृतियाँ हैं। स्वाभाविक प्रवृत्तियाँ वह हैं जो अकारण हों।[२] अतएव प्राकृतिक भावनाएं यदि अपनी तृप्ति चाहती हैं तो उन्हें दबाना अहित कर है। वर्माजी के इसी दृष्टिकोण का परिणाम है कि उनका जीवन-दर्शन भोगवाद पर आधारित है। वे उन्मुक्त भावनाओं को जी भर कर तृप्ति में विश्वास करते हैं। किन्तु वर्माजी का भोगवाद विकृत नहीं है। यह भी नहीं कि वर्माजी का जीवन-दर्शन नितान्त भौतिकवादी है। उच्छृङ्खल भावनाओं

---

१ साहित्य की मान्यताएँ पृष्ठ ११२

२ वही पृष्ठ ?४ ३५

की तृप्ति वे भी न्याय मानते हैं। जब वे कहते हैं कि साधारण मनुष्य में गुण सक्रिय है और विकार निष्क्रिय तभी उनका दृष्टिकोण स्पष्ट हो जाता है कि अनैतिक भावनाओं का उनके जीवन-दर्शन में कोई स्थान नहीं है। अतः उनके और पुराने नैतिकता अनैतिकता के माप-दण्डों में अन्तर है। परम्परागत मान्यताओं के दूषित रूप से उन्हें वितृष्णा है। इन दूषित मान्यताओं की तुला पर नैतिक-अनैतिक आचरण का निर्धारण समयानुकूल नहीं है। बदलती हुई परिस्थितियों में मान्यताएँ बनती बिगड़ती रहती हैं। वर्तमान परिस्थिति में व्यक्ति-स्वातन्त्र्य परमावश्यक है। व्यक्ति-स्वातन्त्र्य वर्माजी के जीवन-दर्शन का मूल है। किन्तु उनकी व्यक्तिवादी चेतना असामाजिक नहीं है। चित्रलेखा में महाप्रभु रत्नाम्बर से यह कहलाकर कि अच्छी वस्तु वही है जो तुम्हारे वास्ते अच्छी होने के साथ दूसरे के वास्ते भी अच्छी हो। वे अपने व्यक्तिवादी जीवन-दर्शन की व्यापकता प्रदान करते हैं।

मनुष्य अपनी प्रकृति के अनुरूप आचरण क्यों करता है इसमें वर्मा जी का नियतिवादी दर्शन निहित है। वे निम्न भाग्यवाद का समर्थन करते हैं वह उनके नियतिवाद में विश्वास का ही परिणाम है। चित्रलेखा में बीजगुप्त के माध्यम से वे कहते हैं, 'मनुष्य परतन्त्र है परिस्थितियों का दास है, लक्ष्य-हीन है। एक अज्ञात शक्ति प्रत्येक व्यक्ति को चलाती है। मनुष्य की इच्छा का कोई मूल्य नहीं है। मनुष्य स्वावलम्बी नहीं है, वह कर्ता भी नहीं है साधनमात्र है। अतः मनुष्य जो कुछ आचरण करता है, वह परिस्थिति के आग्रह से करता है और यह स्वाभाविक है। प्रश्न यह है कि क्या परिस्थितिजन्य प्रेरणा से अनुप्राणित होकर मनुष्य को अनुचित कार्य तक करने की छूट है। वर्मा जी इस प्रकार की छूट देने को तैयार नहीं हैं। वे कहते हैं, 'मनुष्य की विजय वहीं सम्भव है, जहाँ वह परिस्थितियों के चक्र में पड़कर उसी के साथ चक्कर न खाये वरन् अपने कर्तव्याकर्तव्य का विचार रखते हुए उस पर विजय पावे। स्पष्ट है, वर्मा जी परिस्थिति और नैसर्गिक इच्छाओं के सहयोग की बात पर बल देते हैं।

अतएव, वर्माजी का नियतिवाद किसी प्रातिमूलक अन्धविश्वास पर आधारित नहीं है। उसमें मानव-जीवन के स्वस्थ विकास की समस्त संभावनाएँ निहित हैं। वर्मा जी ने स्वयं कहा है कि 'मेरे ऊपर यह आरोप लगाया जा सकता है कि मैं नियतिवादी हूँ। जो नियतिवादी है वह किस प्रकार जीवन के उद्देश्य एवं भावना के उन्नतीकरण की बात कर सकता है यह कुछ लोग पूछेंगे। 1

---

१ चित्रलेखा, पृष्ठ ६७

नियतिवाद में दुःखवाद के अवयव हैं अनेक पाश्चात्य दार्शनिकों का यह मत है। मेरा नियतिवाद इस दुःखवाद से शासित नहीं है। यह समस्त रचना विकास के नियमों पर आधारित है। मनुष्य में गुण सक्रिय हैं—वह दया प्रेम त्याग आदि गुणों से युक्त होकर ही सामाजिक प्राणी बन सका है और निरंतर विकास करता जाता है। नियतिवाद का दृष्टिकोण एक स्वस्थ दृष्टिकोण है। मेरा ऐसा विश्वास है जो मेरे निजी अनुभवों से मुझे प्राप्त हुआ।[1]

इस प्रकार वर्मा जी के नियतिवाद में दुःखवाद अकर्मण्यता और निराशावाद के लिए कोई स्थान नहीं है। नियतिवाद प्रकृति का नियम और जीवन सत्य है। इसकी अवहेलना हम नहीं कर सकते। इसको स्वीकार कर अपना स्वस्थ विकास करना ही श्रेयस्कर है। इस प्रकार वर्माजी का नियतिवाद गीता के कर्मयोग का समर्थन करता है। वे कहते हैं—मैं गीता को भी तो नियतिवाद का प्रतिपादन ही मानता हूं जहाँ कि निराशावाद से भरी अकर्मण्यता के स्थान पर आशावाद युक्त कर्म मार्ग को नियतिवाद का रूप माना गया।[2]

● ● ● ● वर्मा जी का साहित्यिक जीवन

भावुक प्रकृति तथा कवि प्रतिभा वर्मा जी को जन्म से मिली है। यद्यपि उनके बाल्य जीवन का स्वाभाविक विकास नहीं हुआ। पाँच वर्ष की अवस्था में ही उनके पिता की मृत्यु हो गयी थी पर अपनी उन्मुक्त प्रकृति के कारण उन्होंने कभी भी किसी चीज को गम्भीरता से नहीं लिया। फलतः छोटी अवस्था में ही उनमें अपरिमित हास्य प्रकृति और कवि प्रतिभा मुखर हो उठी। समय के साथ स्वतन्त्रता आंदोलन के जोश में उन्होंने राजनीतिक कविताएं लिखीं। छायावादी प्रवाह में भी वह खूब बहे। हम दीवाना की क्या हस्ती उनकी इन्हीं दिनों की कविता है। वर्मा जी जिस परिस्थिति में भी रहे हों उन्होंने उसमें अपने को खूब रमा लिया। (१९२२-२३) में प्रताप कार्यालय से सम्बन्ध स्थापित हुआ तो प्रभा मासिक पत्र में उन्होंने गद्य में लेख भी खूब लिखे। इसी काल में कहानीकार विशम्भरनाथ शर्मा कौशिक से सम्पर्क हुआ तो कहानियों में भी उनकी अभिरुचि बढ़ी। अपने और दूसरों के मनोरंजन के लिए उन्होंने कहानियाँ भी लिखीं। लेकिन लेखक की लापरवाही से आज उनमें से अधिकांश कहानियाँ

---

१ रंगों से मोह की प्रस्तावना से।

२ त्रिपथगा पृष्ठ ७।

प्राप्त नहीं हैं। इस काल में वर्मा जी ने कहानियाँ भले ही लिखी हों, पर अभी तक उनकी ख्याति कवि रूप में ही थी। १९२३ तक छायावादी कवि की हैसियत से उन्हें यथेष्ट ख्याति मिल चुकी था। कहीं भी कवि-गोष्ठी होती, वर्मा जी अपना रंग जमा लेते थे। उन दिनों कविता कहने का भी उनका अपना सहजा और एक अजीब तरह का जोश था। यह काल उन्होंने कानपुर में बिताया था।

१९२४ में प्रयाग विश्वविद्यालय में प्रवेश किया तो काफी अरसे के लिए कवि वर्मा वहाँ के नए वातावरण में खो गए। उनकी स्वच्छन्द प्रकृति ने इस उन्मुक्त वातावरण का जी भर कर उपभोग किया। पर सेलन के क्षेत्र में यह काल उनके लिए अंधकार का काल रहा। न तो इस समय वे अधिक कविताएँ लिख पाये और न ही किसी अन्य प्रकार के कलाकार के रूप में ही उभर पाये। वास्तव में यह काल उनके लिए अनुभव प्राप्ति का काल था। इन्हीं दिनों उन्होंने कुछ गद्य लिखने की सूझी तो 'पतन' नाम का एक छोटा-सा उपन्यास लिख डाला। पर यह उपन्यास किसी भी अर्थ में सफल कृति नहीं बन सका। अभी भी वर्माजी की हैसियत कवि रूप में ही थी।

१९३३ में उनका पहला सफल ग्रंथ 'चित्रलेखा' प्रकाशित हुआ। लोग अब वर्मा जी को उपन्यासकार के रूप में जानने लगे। यहीं से वर्मा जी ने गद्य के क्षेत्र में प्रवेश किया। किन्तु 'चित्रलेखा' में भी उनका कवि रूप झिलमिलाता है। भाव, वर्णन शैली और भाषा तक में कवि वर्मा देखने को मिलते हैं। पर 'चित्रलेखा' की ख्याति ने कवि को पीछे छोड़ दिया और उपन्यासकार सामने आया। लेखक को उपन्यास लिखने में आनन्द आने लगा। इलाहाबाद का साहित्यिक वातावरण भी इसमें सहायक हुआ। इधर वर्माजी के जीवन में भी संघर्ष का उदय हो रहा था और अपनी जीविकोपार्जन का सवाल अब उनके सामने था। मन में व्यावसायिक प्रवृत्ति जागृत हुई, जिसने कवि रूप पर आवरण डालना शुरू कर दिया। और इन्हीं दिनों उनका 'तीन वर्ष' तथा 'इन्सटालमेंट' कहानी संग्रह प्रकाश में आया। अब तक कथाकार वर्मा कवि-वर्मा पर पूरी तरह हावी हो चुका था।

'चित्रलेखा' की ख्याति ने फिल्म जगत् का ध्यान भी वर्मा जी की ओर आकर्षित किया। जीविकोपार्जन के लिए वर्मा जी ने कलकत्ता में 'फिल्म कारपोरेशन' से सम्बन्ध स्थापित किया। वहीं उन्होंने 'टेढ़े मेढ़े रास्ते' का लेखन आरम्भ किया। कलकत्ते का वातावरण इसीलिए तथाकथित उपन्यास में अधिक मुखर हुआ है। इस काल में उन्होंने 'विचार' का प्रकाशन भी किया। किन्तु १९४० में वर्मा जी को कलकत्ता फिल्म कारपोरेशन तथा 'विचार' दोनों से

[२]

तार्किक के रूप म

वर्मा जी न उपन्यास लेखन का आरम्भ समस्या प्रधान उपन्यास का लेकर हुआ है और समस्या को प्रस्तुत करने के निमित्त उन्होने तक वितक से अनुप्राणित शैली को माध्यम बनाया। १६२२ म उन्होंने वकालत पास की और उसके बाद के छोटे से काल में उन्होंने चित्रलेखा लिखा। स्पष्ट है उपयुक्त अध्ययन ने लेखक की तकना शक्ति बढा दी। फलत वर्मा जी ने चित्रलेखा के साथ जब अपना कवि रूप छोडा तो उनमे एक नयी प्रवृत्ति भी जाग्रत हो उठी। प्रत्येक बात को बुद्धि से तौलने और तक के माध्यम से व्यक्त करने का उन्होंने अपना एक अलग ढग अपना लिया। इसलिए चित्रलेखा की भाषा काव्यमय है और उसकी शली तक से अनुप्राणित। इसका प्रत्येक पात्र बुद्धिजीवी है और वह प्रत्येक बात नाप तौलकर अकाट्य तर्कों के माध्यम से कहता है। उपन्यास का आरम्भ विशेष समस्या को आधार बनाकर और पात्रो मे वाद-विवाद कराकर होता है, उसी के आधार पर लेखक उपन्यास की कथा का ताना-बाना बुनता है।

श्वेतांक ने पूछा और पाप।

महाप्रभु रत्नाम्बर मानो एक गहरी निद्रा से चौंक उठे। उन्होंने श्वेतांक की ओर एक बार बडे ध्यान से देखा— पाप बडा कठिन प्रश्न है वत्स। पर साथ ही बडा स्वाभाविक। तुम पूछते हो पाप क्या है। इसके बाद रत्नाम्बर ने कुछ देर तक कोलाहल स भरे पाटलिपुत्र की ओर, जिसके गगन चुम्बन करने का दम भरने वाल ऊँचे-ऊँचे प्रासाद अरुणिमा के धुंधले प्रकाश म अब भी दिखलायी दे रहे थे, देखा—हाँ पाप की परिभाषा करने की मैंने भी कई बार चेष्टा की है पर सदा असफल रहा ॥। पाप क्या है और उसका निवास कहाँ है यह एक बडी कठिन समस्या है जिसको आज तक नही सुलझा सका हू पर श्वेतांक यदि तुम पाप जानना ही चाहते हो तो तुम्ह ससार ढूढ़ना पडेगा। इसके लिए यदि तैयार हो तो सम्भव है पाप का पता लगा सको।

चित्रलेखा मे लेखक पूरी तरह से तार्किक है। तक के माध्यम से उसने उन जीवन मूल्यो की स्थापना करने का प्रयास किया है जो आज व्यक्ति क

लिए आवश्यक है। ऐतिहासिक पृष्ठभूमि को अपनाते हुए भी उसने तत्कालीन व्यक्ति की साँसों म उन्मुक्तता के उभरते हुए विद्रोह का स्वर दिया है। समय प्रतिकूल पुराने आदर्शों को पनपाने वाल समाज क सामने उसने एक प्रश्न खडा कर दिया है जिसका अनुभव प्रत्येक व्यक्ति करता है। वह पूछता है—क्या नसर्गिक भावनाओं का उपभोग निन्दा की वस्तु है ? क्या सयम नियम ही समाज क लिए कल्याणकारी है ? क्या पाप और पुण्य का निर्धारण इन्हा दोना की तुला पर करना उचित है ? और इन्हा प्रश्नों क उत्तर में चित्रलेखा म वर्मा जी ने नये जीवन मूल्या की माँग की है।

पाप-पुण्य की इस बहु-चर्चित समस्या को उठा कर लखक न बडी उदारता स अपना दृष्टिकोण प्रस्तुत किया है। यह स्पष्ट है कि अन्ततोगत्वा लेखक का मन्तव्य व्यक्तिपरक रहा है। चित्रलखा क द्वितीय सस्करण म वर्मा जी ने स्वय लिखा है चित्रलखा म एक समस्या है मानव-जीवन क तथा उसकी अच्छाइयों और बुराइयो के देखने का मेरा अपना दृष्टिकोण है और मेरी आत्मा का अपना सगीत भी। वर्माजी क इसी कथन स ध्वनित होता है कि उनका मत निष्पक्ष नहा रह पाया। स्वभावत उनका झुकाव व्यक्तिवादी मानव चेतना की ओर हो गया है। किन्तु इसक लिए यह कहना कि लेखक का दृष्टिकोण मात्र उसी क दृष्टिकोण का परिचायक है सवथा असगत है। क्योंकि लखक का दृष्टिकोण सामान्य समाज का दृष्टिकोण न होने पर भी उस विशाल व्यक्ति-समूह क मन्तव्य का प्रतिनिधित्व करता है जो आने वाल युग म समाज का व्यापक दृष्टिकोण बन जावेगा और महाप्रभु रत्नाम्बर द्वारा यह कहला कर कि अच्छी वस्तु वही है जो तुम्हारे वास्त अच्छी होने के साथ ही दूसरों के वास्त भी अच्छी हो लखक अपनी जीवन-दृष्टि को व्यापक बनाता हुआ प्रतीत होता है।

चित्रलखा म वर्मा जी ने इस नवीन दृष्टि दी है। पाप जैसी वस्तु का व एकदम निराकरण कर दत हैं और इसलिए पुण्य का भी निराकरण हो जाता है। अन्त में महाप्रभु रत्नाम्बर म वे कहलात हैं ससार में पाप कुछ भी नहा है वह कवल मनुष्य के दृष्टिकोण की विषमता का दूसरा नाम है। प्रत्यक व्यक्ति एक विशेष प्रकार की मनप्रवृत्ति लेकर उत्पन्न होता है—प्रत्येक व्यक्ति इस ससार क रगमच पर एक अभिनय करने आता है। अपनी मन प्रवृत्ति से प्रेरित होकर अपने पाठ को वह दुहराता है—यही मनुष्य का जीवन है। जो कुछ मनुष्य करता है वह उसके स्वभाव क अनुकूल होता है और स्वभाव प्राकृतिक है। मनुष्य अपना स्वामी नहा है वह परिस्थितियो का दास है—विवश है। वह

कर्ता नहीं है वह केवल साधन है। फिर पुण्य और पाप कैसा ? हम न पाप करते हैं और न पुण्य करते हैं हम केवल वह करते हैं जो हमें करना पड़ता है।

यह तो हुई उपन्यास की समस्या और लेखक के दृष्टिकोण की बात। इसके समाधान में वर्माजी ने व्यक्ति स्वातन्त्र्य की स्थापना की है। इस व्यक्ति-स्वातन्त्र्य को उन्होंने यौन समस्या के माध्यम से व्यक्त किया है। यदि प्रस्तुत कृति के 'उपक्रमणिका' तथा उपसंहार वाले अंशों को छोड़ दिया जाय तो स्पष्ट हो जाता है कि उपन्यास की मूल-समस्या पाप-पुण्य की नहीं यौन सम्बन्धी है। पाप-पुण्य की समस्या उठाकर तो लेखक ने अपने विषय को व्यापक बनाने का बहाना ढूंढा है। वस्तुत लेखक यौन सबंधी स्वतन्त्रता की माँग करता है। वह प्रेम को विवाह से ऊंचा ठहराता है। यहाँ वह पुरानी मान्यताओं की अवहेलना कर विवाह की नयी परिभाषा देता है। उसके अनुसार स्त्री और पुरुष में चिरस्थायी सम्बन्ध को ही विवाह कहते हैं। स्पष्ट है वर्माजी परपरागत आचारों का विरोध करते हुए उन्मुक्त भावनाओं को खुलकर खेलने का अवसर देते हैं। जीवन के स्वच्छन्द उपभोग में उनकी आस्था है। बीजगुप्त और चित्रलेखा से वे कहलाते हैं वर्तमान हमारे सामने है और वह उल्लास विलास है ससार का सारा सुख है यौवन का सार है। अत चित्रलेखा में योग और अध्यात्मवाद का विरोध कर उन्होंने भोगवाद को प्रश्रय दिया है। लेखक की भोगवाद में अमित आस्था है। जीवन के मुक्त प्रवाह में न बहकर सयम नियम और योग का जीवन बिताना अस्वाभाविक है। स्वाभाविक जीवन से मुख मोडने पर व्यक्ति का स्वस्थ विकास असभव है। अपनी नैसर्गिक वृत्तियों को दबाना, उससे दूर भागना मनुष्य की दुर्बलता का द्योतक है। वही व्यक्ति स्वाभाविक जीवन से भागता है जिसमे परिस्थितियों से सघर्ष करने की सामर्थ्य नहीं होती। इस प्रकार चित्रलेखा में वर्माजी ने जो जीवन-दर्शन प्रस्तुत किया है वह वर्तमान परिस्थिति मे अत्यन्त स्वस्थ और ग्रहण करने योग्य है।

चित्रलेखा मे अपने दृष्टिकोण का प्रतिपादन करने के लिए लेखक ने तर्क वितर्क का सहारा लिया है। उसके तर्क अकाट्य हैं। बीजगुप्त और चित्रलेखा के वार्तालाप के एक अंश को प्रस्तुत कर इसका उदाहरण दिया जा सकता है। बीजगुप्त कहता है चित्रलेखा ! तुम भूलती हो। प्रेम का सम्बन्ध आत्मा से है प्रकृति से नहीं। प्रेम आत्मा से होता है शरीर से नहीं। परिवर्तन प्रकृति का नियम है आत्मा का नहीं। आत्मा का सम्बन्ध अमर है। और इस सत्य का खण्डन चित्रलेखा यह कहकर देती है कि कैसी विचित्र बात कह रहे हो बीजगुप्त ! जो जन्म लेता है वह मरता है यदि कोई अमर है तो अजन्मा भी

है। जहाँ सृष्टि है वहाँ प्रलय भी रहेगा। आत्मा अजन्मा है इसलिए अमर है पर प्रेम अजन्मा नहीं है। किसी व्यक्ति से प्रेम होता है तो उस स्थान पर प्रेम जन्म लेता है। संबंध होना ही उस सम्बन्ध का जन्म लेना है। वह सम्बन्ध अनन्त नहीं है कभी-न-कभी उस सम्बन्ध का अन्त होगा ही। प्रेम और वासना में भेद केवल इतना ही है कि वासना पागलपन है जो क्षणिक है और इसीलिए वासना पागलपन के साथ ही दूर हो जाती है और प्रेम गम्भीर है। उसका अस्तित्व शीघ्र नहीं मिटता। आत्मा का सम्बन्ध अनादि नहीं है बीजगुप्त।

सम्पूर्ण उपन्यास इसी प्रकार के तर्क-वितर्कों से भरा पड़ा है। सभी पात्र सुशिक्षित एवं सुसंस्कृत हैं इसलिए उनका तर्कपूर्ण वार्तालाप अस्वाभाविक नहीं लगता। प्रत्येक के तर्क अकाट्य और किसी-न-किसी अंश में सारगर्भित हैं। इन तर्कों को समझने के लिए पाठकों को किंचित बौद्धिक प्रयास भी करना पड़ता है। किन्तु इसके फलस्वरूप उपन्यास की रसात्मकता जरा भी कम नहीं होने पायी है क्योंकि उसमें कविता वाला तत्त्व इतना मोहक है कि उसने तर्क वितर्क से पूर्ण स्थलों को भी सरस बना दिया है।

'तीन वर्ष' में भी लेखक तार्किक बना हुआ है। समस्या इसमें भी स्पष्ट है। पर इसमें कहानी वाला अंश भी पर्याप्त है और दोनों में संतुलन बना हुआ है। चित्रलेखा की भाँति पहला दूसरे से अलग नहीं उभर पाया है। समस्या दोनों की एक ही है। वर्मा जी ने 'चित्रलेखा' में प्रेम-विषयक स्वातन्त्र्य की माँग तो कर दी किन्तु इस बात का अनुभव उन्होंने बाद में किया कि इसकी प्राप्ति के लिए संघर्ष भी आवश्यक है। यह हमें आप-ही-आप नहीं मिल जाता। इसके लिए हमें अपनी वर्तमान स्थिति से संघर्ष करना पड़ता है। चित्रलेखा का प्रणय कल्पना-लोक की वस्तु था यथार्थ-जगत् में इस प्रेम का कुछ और ही स्वरूप है। लेखक के अनुभव ने उसे इस तथ्य का ज्ञान कराया। फलतः लेखक अपने स्वप्निल संसार को छोड़ यथार्थ भूमि पर उतर आया। इसलिए चित्रलेखा और 'तीन वर्ष' का विषय एक होने पर भी उसका निरूपण भिन्न है। उसकी पृष्ठभूमि चित्रलेखा की भाँति ऐतिहासिक न होकर वर्तमान पर आधारित है। यद्यपि चित्रलेखा में पृष्ठ-भूमि की ऐतिहासिकता के अतिरिक्त सभी कुछ वर्तमान का है—उसकी समस्या उसका मनोविज्ञान और उसका समाधान तक। किन्तु तीन वर्ष का सभी कुछ वर्तमान पर स्थित है। ऐसा प्रतीत होता है कि लेखक रोमांस से यथार्थ की ओर बढ़ा और तब से अपने लेखन काल के आज तक के जीवन में वह यथार्थ से ही चिपका रहा है।

'तीन वर्ष' का कथानक यथार्थ भूमि पर निर्मित है उसमें चित्रलेखा की

भाँति विशुद्ध काम-समस्या नहीं है। इस काम-समस्या को लेखक ने आज की पूँजीवादी विषमता से जोड़ दिया है। फलतः 'तीन वर्ष' की मूल समस्या अर्थ जनित यौन विकृति की है। आज की आर्थिक विषमता ने व्यक्ति में अनेक प्रकार की विकृतियों को जन्म दिया है। असंतोष और अतृप्ति के कारण उसका संतुलन बिगड़ गया है। इस मनोदशा का शिकार मध्य वर्ग का व्यक्ति सबसे अधिक हुआ है। अपनी वास्तविक स्थिति को भूल वह महत्वाकांक्षी बन गया है और इसके लिए वह अनेक प्रकार के अनैतिक मार्ग अपनाने को विवश हुआ है। झूठ मिथ्या-आडम्बर छल कपट उसके आचरण के अभिन्न अंग बन गये हैं। प्रेमचन्द ने इस मध्यवर्गीय व्यक्ति को लेकर बहुत लिखा किन्तु उनका उद्देश्य केवल उसके आर्थिक पक्ष वाली समस्या तक सीमित रहा। उन्होंने मध्यवर्ग के अर्थाभाव जनित संकटों से घिरे व्यक्ति के मनोभाव उनके विचार-परिवर्तन एवं पतन का विस्तृत अंकन किया है किन्तु इस अभाव से जो मानसिक प्रतिक्रिया होती है उस पर उनका ध्यान नहीं गया। वस्तुतः अर्थाभाव के कारण मनुष्य भौतिक दृष्टि से तो असंतुष्ट होता ही है इससे भी अधिक असंतोष उसकी आत्मा को होता है। 'तीन वर्ष' में पहले-पहल वर्मा जी ने अर्थाभाव जनित मानसिक असंतोष का अंकन किया। उन्होंने दर्शाया कि मनुष्य की कोमल वृत्तियाँ प्रेम आदि वित्तीय भाव के कारण शुष्क और दमित ही नहीं कलुषित भी हो जाती हैं। उसे लगता है कि इस पूँजीवादी युग में उसके हृदयगत भावों का कोई मूल्य नहीं है क्योंकि वे भी क्रय विक्रय के उपकरण बन गए हैं। ऐसी अवस्था में व्यक्ति अपना मानसिक संतुलन खो बैठता है और कभी-कभी अपने उच्चादर्शों से गिर जाता है। भगवतीचरण वर्मा ने 'तीन वर्ष' द्वारा प्रथम बार इस बात का उद्घाटन किया कि इस वर्ग में आर्थिक विषमताओं के कारण केवल आर्थिक कुंठाएं ही नहीं हैं वरन् अर्थपरक काम-कुंठाएं भी बड़े विकृत रूप में विकसित हो रही हैं। अर्थ संकोच के कारण शारीरिक कष्ट की अपेक्षा मानसिक कष्टों की कहानी अधिक लम्बी और करुण है। शरीर तो इस आघात से केवल छटपटाकर ही रह जाता है किन्तु आत्मा छटपटाती ही नहीं बिखर जाती है और कभी-कभी टूट भी जाती है। इसी को आधार बनाकर वर्मा जी ने 'तीन वर्ष' की कहानी निर्मित की है।

'तीन वर्ष' का प्रत्येक पात्र बुद्धिजीवी है और उसका सब कुछ बौद्धिक-स्तर पर घटित होता है। प्रेम जैसा नैसर्गिक उद्वेग तक बुद्धिजनित मान्यताओं के कारण कई मोड़ लेता है। 'प्रेम ईश्वरीय है—प्रेम ही जीवन है वह दो आत्माओं का बंधन है। प्रेम में ही संसार स्थित है—प्रेम अनादि है। प्रेम अनन्त है। प्रेम ही मनुष्य का प्राण है।' 'तीन वर्ष' के रमेश की यह आस्था उचित प्रतीत होती

है। पर प्रभा का यह कथन भी बुद्धि और तर्क की दृष्टि से ठीक प्रतीत होता है कि विवाह स्त्री और पुरुष के बीच में आर्थिक सम्बन्ध है।

चित्रलेखा और तीन वर्ष के बाद जब हम 'टेढ़े मेढ़े रास्ते' को पढ़ते हैं तो इसमें हमें वर्मा जी की प्रौढ़ता के दर्शन होते हैं। इसमें आकर लेखक के विचार और उपन्यास-रचना पूर्णतः परिपक्व हो चुकी है। एक साथ अनेक चित्रों को सामूहिक रूप में देखने, उन्हें परस्पर तुलनात्मक दृष्टि से जाँचने और एक वस्तु को विभिन्न दृष्टिकोणों से परखने की व्यापक दृष्टि लेखक को मिल चुकी है। इसके अतिरिक्त विशाल कथानक को सुन्दर तन्तुजाल में बुनने की अद्भुत क्षमता भी वर्मा जी के हाथ लग गयी है। 'चित्रलेखा' और 'तीन वर्ष' संकुचित विषय-वस्तु को लेकर लिखे गये उपन्यास हैं। यही नहीं, इन सीमित विषयों को भी लेखक अनेक दृष्टिकोणों से नहीं रख सका है। फलतः कथानक भी लघु और सीधा-सादा बनकर रह गया है। परन्तु 'टेढ़े मेढ़े रास्ते' में कथानक की यह लघुता और सरलता समाप्त हो गयी है। व्यापक समस्या को लेकर चलने के कारण लेखक को पात्रों की संख्या में वृद्धि करनी ही पड़ी है। उस समस्या को अधिक उभारने, उसका विश्लेषण करने के लिए उसे विशाल वातावरण और प्रतिक्रियात्मक परिस्थितियों का भी निर्माण करना पड़ा है। इन सबकी रचना करने में वर्मा जी अत्यन्त सफल हुए हैं।

विषय और समस्या को तर्क के माध्यम से उभारने की आदत वर्मा जी में पुरानी है। 'तीन वर्ष' में तर्क कुछ धूमिल रूप में मिलता है। परन्तु 'टेढ़े मेढ़े रास्ते' में वह फिर उग्र रूप में प्रस्तुत है। विविध वादों की सैद्धान्तिक चर्चा करके तद्युगीन सामाजिक, राजनैतिक और सांस्कृतिक स्थिति का अंकन वह कांग्रेसी, साम्यवादी और क्रान्तिकारी पार्टियों के माध्यम से करता है। कदाचित् वर्मा जी ने कांग्रेस, साम्यवाद और क्रान्तिकारी पार्टी आदि की गतिविधियों का सूक्ष्म पर्यवेक्षण किया था, उनकी कमियों का अनुभव किया था, तभी उनके तर्क बड़े अकाट्य हैं। परस्पर विरोधी पार्टी के व्यक्तियों के माध्यम से, जो उच्च शिक्षित हैं और जिनकी तर्कना शक्ति भी बहुत ऊँची है, उन्होंने एक दूसरे की पार्टी की कमजोरियों का उद्घाटन कराया है। मार्कण्डेय कम्युनिस्ट पार्टी का समर्थन करता है और उसके समर्थन का आधार है तर्क, जिसका जवाब दुनिया घूमा उमानाथ नहीं दे पाता। मार्कण्डेय का यह कथन कितना सारगर्भित है

उमानाथ! तुम बतला सकते हो कि किस कम्युनिस्ट ने दूसरों की गरीबी से द्रवित होकर अपनी सम्पत्ति उनके लिए दान कर दी है? तुम बता सकते हो कि किस कम्युनिस्ट ने ऐयाशी या ऐशो-आराम छोड़े हैं, तुम बता सकते हो कि

किस कम्यूनिस्ट ने त्याग किया है ? यह चीज जिसका मतलब है लेना —इन पर तुम्हें विश्वास नहीं। तुम्हारा सिद्धांत है लेना—ठीक वही सिद्धान्त जो पूंजीपति का है। कम्यूनिज्म एक तरह से पूंजीवाद से भी भयानक है क्योंकि पूंजीवाद में जहाँ महज लेना ध्येय है वहाँ कम्यूनिज्म का ध्येय लेने के साथ मारना और पीटना भी है। दूसरे शब्दों में कम्यूनिज्म पूंजीवाद की हिंसा की एक विनाशात्मक प्रतिहिंसा भी है जो समाज के लिए कहीं अधिक भयानक है।

उमानाथ कांग्रेस वालों पर आक्षेप करता है यद्यपि उसका अल्पांश ही सत्य है। किन्तु मनमोहन के कथन और तर्क अधिक सारगर्भित हैं। उसका यह कथन कि निबल और सबल की लड़ाई केवल एक तरह से सम्भव है निबल सबल पर जब वार करे पीछे से करे। तब यह कथन यथार्थ सत्य बनकर प्रकट होता है जब तालुकेदार रामनाथ तिवारी की अहम्मन्यता पर वह पीछे से प्रहार करके करारी ठोकर मारता है।

वर्माजी ने सभी वादों के लोगों को असफल दिखा कर सब में अनास्था प्रकट की है। किसी भी वाद के लिए उनका सत्याग्रह नहीं दीखता। दयानाथ चुनाव हारकर निराश हो जाता है उमानाथ पकड़े जाने के भय से भाग खड़ा होता है और प्रभानाथ भी सरकार के चंगुल में फंस जाने के कारण मौत का वरण करने को मजबूर होता है। किन्तु इतना निश्चय है कि प्रभा हारकर भी अजय रहता है और उसके साथ पाठकों की सारी सहानुभूति उमड़ पड़ती है। और यहीं हमें वहां लेखक की सहानुभूति भी प्रच्छन्न मिलती है। दूसरे शब्दों में क्रान्तिकारी मार्ग के प्रति लेखक का लगाव प्रकट होता है। क्रान्तिकारी मनमोहन वीणा प्रभानाथ तथा इस समुदाय के सभी सदस्यों का चरित्र ऊंचा उठाकर वह अप्रत्यक्ष रूप से उनके मार्ग को उचित बताता हुआ प्रतीत होता है। यह स्वाभाविक भी है क्योंकि कितना भी तटस्थ रहने पर, कहीं न कहीं लेखक की आस्था प्रकट हो ही जाती है। टेढ़े मेढ़े रास्ते में वर्माजी के साथ भी ऐसा हुआ है। क्रांतिकारी मार्ग के अनुयायियों में असली मानवता के दर्शन कराकर उन्होंने अपनी आस्था को प्रकट होने का अवसर दिया है। मनमोहन दुखी जनता को पीड़ा-मुक्त करने के लिए हत्या करता है तथा डाके डालता है। इसलिए वह यथार्थ मानव है। उसके सामने रामसिंह आदि व्यक्ति नरक के कीड़े हैं जो केवल अपना स्वार्थ देखते हैं। इसी भांति प्रभानाथ और वीणा क्रांति का अमानुषिक मार्ग अपनाते हुए भी बहुत ऊंचे हैं क्योंकि दूसरों की भलाई के निमित्त वे अपने स्वार्थों का बलिदान करते हैं।

स्वभावतः पाठक के मन में यह प्रश्न उठता है कि वर्माजी ने हिंसात्मक आतंकवाद को क्यों अच्छा समझा ? जब यह प्रश्न मैंने वर्माजी से किया तो उत्तर में उन्होंने मुझे जो लिखा वह अक्षरशः यह था 'टेढ़े-मेढ़े रास्ते' में पाठक की सहानुभूति स्वभावतः आतंकवाद के प्रति हो जाती है क्योंकि वह जनमानस की स्वाभाविक और कल्याणकारिणी हिंसा के सबसे निकट है और उसके सामने गांधीवाद का उदात्त परिवेश भावनामय दृष्टि से कमजोर दिखने लगता है।

किन्तु अन्त में वर्माजी आतंकवाद को भी असफल दिखाते हैं क्योंकि वे अन्त में मनमोहन के मुख से यह कहलाते हैं कि 'प्रभा अन्तिम समय एक बात मैं तुमसे कहूँगा—तुम इस क्रान्तिकारी दल को छोड़ दो। यह बड़ा गलत रास्ता है।' तब हम यह निष्कर्ष निकालना पड़ता है कि वर्माजी की दृष्टि में सभी रास्ते टेढ़े-मेढ़े हैं। इसका कारण यह है कि टेढ़े-मेढ़े रास्ते में प्रतिपादित प्रत्येक वाद का नेता बौद्धिक रूप से अपने मत का समर्थक या पोषक है—भावनात्मक रूप से नहीं। यहाँ पर वर्माजी ने टेढ़े-मेढ़े रास्ते में एक खूबी पैदा कर दी है क्योंकि 'टेढ़े मेढ़े रास्ते' का एक विशेष पैटर्न है। तिवारी परिवार का हरेक प्राणी किसी वाद का समर्थक अथवा पोषक है—केवल बौद्धिक रूप से, भावात्मक रूप से नहीं और उस हरेक प्राणी का एक प्रतिरूप (counterpart) है जो शुद्ध रूप से भावात्मक है। रामनाथ तिवारी का प्रतिरूप (counterpart) मगरू मिश्र है। दयानाथ का प्रतिरूप मार्कण्डेय है उमानाथ का प्रतिरूप ब्रह्मदत्त है और प्रभानाथ का प्रतिरूप मनमोहन है। इन प्रतिरूपों की सहायता से लेखक के अन्दर वाले कलाकार ने इन वादों की कमजोरियाँ दिखलायी हैं।

वर्माजी के उपन्यास लेखन का आरम्भ समस्या-मूलक उपन्यास 'चित्रलेखा' से हुआ था। किन्तु बीच में वे सामाजिक उपन्यास रचना में रम गये। इधर 'सामर्थ्य और सीमा' (१९६२) के रूप में उन्होंने फिर से हमें एक सशक्त समस्या-मूलक उपन्यास दिया है। जिस भाँति चित्रलेखा का बाह्य रूप उसकी कथात्मक पृष्ठभूमि—भारतीय होने पर भी उसकी समस्याएँ शाश्वत हैं उसी भाँति सामर्थ्य और सीमा की कथात्मक पृष्ठभूमि भारतीय होते हुए भी, समस्यायें शाश्वत हैं। उन्हें हम 'भारत' की परिधि में नहीं बाँध सकते। 'चित्रलेखा' और 'सामर्थ्य और सीमा' दोनों में वर्माजी ने एक महत्वपूर्ण जीवन दर्शन दिया है। किन्तु तरुणावस्था और प्रौढ़ावस्था में जितना अन्तर होता है उतना ही अन्तर हमें 'चित्रलेखा' तथा 'सामर्थ्य और सीमा' के जीवन-दर्शन में मिलता है। चित्रलेखा वर्माजी की तरुणावस्था की एक महत्वपूर्ण कृति है और

'सामर्थ्य और सीमा' प्रौढ़ावस्था की। 'सामर्थ्य और सीमा' में वर्माजी के विचारों की परिपक्वता एवम् सूक्ष्म जीवन दृष्टि परिलक्षित हुई है। 'चित्रलेखा' में वह प्रौढ़ता नहीं है और न ही वह आ सकती थी क्योंकि तरुण लेखक में वह सम्भव नहीं। इसीलिए चित्रलेखा और सामर्थ्य और सीमा दोनों के जीवन दर्शन में अन्तर है। चित्रलेखा जहाँ जीवन और उल्लास की वाचक है, सामर्थ्य और सीमा मृत्यु और विनाश की। पहले से हमें जीवन की प्रेरणा तथा स्फूर्ति मिलती है दूसरे से अवसाद तथा विवशता। फिर भी चित्रलेखा तथा सामर्थ्य और सीमा के जीवन दर्शन परस्पर विरोधी नहीं हैं। वे एक दूसरे के पूरक हैं। "चित्रलेखा के जीवन-दर्शन की पूर्णता 'सामर्थ्य और सीमा' में आकर हुई है। यदि 'चित्रलेखा' के अनुसार जीवन कभी न बुझने वाली एक अविराम पिपासा है तो सामर्थ्य और सीमा' के अनुसार भी यौवन का पागलपन जीवन की वास्तविक मृदुलता की उपलब्धि है। अन्तर केवल इतना है कि 'चित्रलेखा' में जहाँ लेखक का विश्वास है कि जीवन एक हलचल है परिवर्तन है और हलचल तथा परिवर्तन में सुख और शान्ति का कोई स्थान नहीं वहाँ सामर्थ्य और सीमा में आकर वह सुख और तृप्ति में विश्वास करने लगता है।

चित्रलेखा जहाँ जीवन का अर्द्ध सत्य प्रकट करती है वहाँ सामर्थ्य और सीमा उसका पूर्ण सत्य। चित्रलेखा का जीवन दर्शन स्वस्थ अवश्य है पर वह पूर्ण सत्य नहीं है। तरुण कवि लेखक में जीवन के केवल उल्लास और सृजन वाले अंश को देखने की दृष्टि थी। फलतः उसका जीवन दर्शन एक पक्षीय ही रहा। किन्तु आज के प्रौढ़ लेखक के विचार एवं दृष्टि में परिपक्वता आ गयी है और उसने जीवन के दूसरे पक्षों को भी देखा है। वह जान गया है कि जीवन और निर्माण ही सत्य नहीं है मृत्यु और विनाश भी सत्य है। न जीवन ही शाश्वत है, न मृत्यु ही। जीवन मरण का चक्र तो चलता रहता है। जहाँ आदि है वहाँ अन्त अवश्यभावी है। अतएव जीवन और उल्लास चिरस्थायी नहीं हैं उनकी अन्तिम परिणति मृत्यु और विनाश है।

प्रस्तुत उपन्यास की समस्या है मनुष्य के 'सामर्थ्य और उसकी सीमा' की। मनुष्य अपने को बड़ा और सक्षम समझता है। इसी अहं एवं दर्प के बल पर वह दूसरों की प्रवृत्ति की और नियति की उपेक्षा करता रहता है। किन्तु एक सीमा आती है और जहाँ उसका यह अभिमान थोथा साबित होता है उसका अहं दर्प चकनाचूर हो जाता है और उसे असहाय एवं विवश होकर नियति के विधान का शिकार होना पड़ता है।

इस सुनिश्चित योजना को लेकर वर्माजी इस उपन्यास का ताना-बाना बुनते हैं—समस्या के विभिन्न पहलुओं पर प्रकाश डालने के लिए लगभग आठ पात्रों को लेकर कथानक का निर्माण करते हैं। सभी पात्र अपने-अपने ढंग से स्वयं को सक्षम और समर्थ समझते हैं। रतन चन्द्र मसाना देश का बहुत बड़ा पूंजीपति है और इसलिए वह समझता है कि सारी सामर्थ्य और शक्ति उसके हाथ में है। वह कहता है कि इस वर्तमान में सारी सामर्थ्य पूंजी में है और इसी दर्प एवं अहं के बल पर वह मानवता तक को पूंजी से खरीदना चाहता है। देवनारायण इंजीनियर है इसलिए उसकी दृष्टि में मनुष्य असमर्थ नहीं है। मनुष्य के पास बुद्धि है ज्ञान है, चेतना है। असमर्थ तो अचेतन और जड़ प्रकृति है। मनुष्य इसी प्रकृति पर शासन करता है। यह प्रकृति उसके वश में है। विज्ञान मानव का वह पुरुषत्व है जो प्रकृति को उसके वश में रखता है, जो प्रकृति के अनगिनती रहस्य खोलता जाता है। हमारा समस्त विकास स्वयं विज्ञान का विकास है। मैं उसी विज्ञान का प्रतिनिधि हूं। मैं पानी पत्थर आदि निर्जीव तत्वों के साथ खेलता हूं उन्हें मैं अपने वश में करता हूं। मनुष्य सक्षम और समर्थ है वह कर्ता है। इस प्रकार शक्ति सामर्थ्य और आत्म विश्वास का पागलपन देवनारायण के व्यक्तित्व में भरा पड़ा है। इसी प्रकार जीवनलाल सत्ता के मद में स्वयं को सक्षम समझता है। ज्ञानेश्वर राव पं० शिवानन्द शर्मा और मयूर को भी अपनी अपनी शक्ति और सामर्थ्य पर दर्प है। सभी पात्र समझते हैं कि उन्होंने सत्य को पा लिया है किन्तु नाहरसिंह जो लेखक के मन्तव्य का वाहक है के शब्दों में ये केवल अर्ध-सत्य को जान पाये हैं सत्य को नहीं। और यह अर्ध सत्य असत्य से बड़ा अनिष्ट भयानक है। इस सत्य को पहचान न सकने का कारण यह है कि व्यक्ति अपने अहं शक्ति और क्षमता के अभिमान में, समृद्धि और सफलता के क्षणों में अपनी सीमा और विवशता को भूल बैठता है। लेखक इन सबके झूठे अभिमान और आत्म विश्वास को बिखरते देखता है। सर्वप्रथम इनकी सामर्थ्य की खिल्ली उड़ती है जब ये सभी पात्र असहाय और निरीह रानी मानकुमारी को हस्तगत करने के लिए बाज की तरह झपटते हैं। यही नहीं जिस सामर्थ्य और शक्ति पर इन्हें इतना अटूट आत्मविश्वास था उसके बल पर वे दूसरों को तो क्या अपने तक को नहीं बचा पाते। अन्त में सभी पात्र ऐसी स्थिति में पड़ जाते हैं जहाँ उनकी सामर्थ्य और शक्ति कुछ नहीं कर पाती और वे काल के गाल में चले जाते हैं। यहीं अन्त में लेखक का अपना वक्तव्य आरम्भ होता है 'पंचतत्त्व से निर्मित इस मनुष्य ने हरएक तत्त्व से युद्ध किया है हरएक तत्त्व पर विजय पाया है...

हरएक तत्व को अपने वश मे करके उस पर शासन किया है। उसका दावा जितना बड़ा है उतना ही झूठा भी है। इन तत्व के कुछ रहस्यों को ही जान सका है वह अभी तक इन तत्वों म भी जीवन है इन तत्वों म भी चेतना है इन तत्वो म भी सभावना है। ये तत्व सौम्य होते हैं ये। तत्व क्रुद्ध होते हैं ये तत्व रचना करते हैं ये तत्व विनाश करते हैं। ये तत्व कर्ता हैं मनुष्य इन तत्वों के कर्मों का उपभोक्ता है। हमारे आदि पुरुष याचक थे वे इस प्रकृति की उपासना करते थे। वे इन तत्वो से भिक्षा माँगते थे। और इस पूजा से प्रसन्न होकर याचना से सौम्य होकर इन तत्वो ने मनुष्य को दिया भरपूर दिया। मनुष्य सम्पन्न होता गया मनुष्य शक्तिशाली बनता गया। वह भूल ही गया कि वह याचक है और फिर वह लुटेरे की भाँति प्रकृति के साथ खिलवाड करता गया। भयानक रूप से क्रुद्ध हो उठा उसका अहं और उसका ज्ञान। इस प्रकार इस वक्तव्य के माध्यम से लेखक ने भारतीय वदिक-संस्कृति की पुनर्स्थापना की है।

प्रश्न यह है कि यदि व्यक्ति की सामर्थ्य और शक्ति अर्ध सत्य मात्र है तो फिर सत्य क्या है? लेखक इस सत्य को मनुष्य के सामर्थ्य और नियति के पारस्परिक सघर्ष द्वारा उद्घाटित करने का प्रयास करता है। नियति का सबसे बड़ा प्रतीक है—प्रकृति। प्रकृति पर मनुष्य ने विजय प्राप्त करने का प्रयास किया है और इसम उसे सफलता भी प्राप्त हुई है। किंतु उसकी भी एक सीमा है जहाँ मनुष्य का सामर्थ्य विवश हो जाता है उसकी शक्ति कुंठित हो जाती है। यह सीमा है मृत्यु जो प्राणी मात्र के लिए अनिवार्य है। और यही मनुष्य को झुकना पड़ता है—नियति के सामने भी और प्रकृति के सामने भी यही सत्य है। इसी सत्य का प्रकाशन लेखक नाहरसिंह द्वारा कराता है। नाहरसिंह कहता है—झुको झुको। मनुष्य का यह भ्रम है कि वह लेता है सत्य तो यह है कि वह केवल पाता भर है। और तुममे इतनी सामर्थ्य कहाँ कि तुम ले सको। प्रकृति तो मुक्त हस्त बाँटती है धन धान्य। वह तुम्हे सदय होकर सब कुछ देती है। जब तक वह सदय है तभी तक तुम्हारी स्थापना है, तुम्हारी सम्पन्नता है अन्यथा तुम्हारा कोई अस्तित्व नही।

इस प्रकार उस नियतिवाद की स्थापना स्वय हो जाती है जिसमे मानना पड़ता है कर्त्ता कोई दूसरा ही है जो अदृश्य है हम सब तो उस कर्त्ता के साधन हैं। हमारी गति हमारी बुद्धि हमारा ज्ञान हमारी भावना इसके अपना

लेखक की कविता की पाँच पंक्तियाँ भी मनुष्य के इस सामर्थ्य दर्प पर व्यंग्य करती हैं।

अब प्रश्न यह है कि नियति के हाथ में ही सब कुछ है तो फिर हमारा यह संघर्ष क्या ? क्या वर्मा जी हमें परिस्थितियों का दास होना नहीं सिखाते ? हमारा यह प्रश्न निर्मूल सिद्ध होता है क्योंकि नियतिवाद का सबसे बड़ा समर्थक, लेखक के दृष्टिकोण का प्रतीक—नाहरसिंह स्थल-स्थल पर कहता है कि हमें परिस्थितियों का मुकाबला करना पड़ेगा। जो कुछ जैसा है, उसे वैसा स्वीकार करके उससे लड़ो। उसका बदला बाकी होगा यही तो भगवान का विधान है। हाँ अपना कर्तव्य हमें करते रहना है। और जहाँ अपने को सक्षम समझने वाले समस्त व्यक्ति परिस्थिति से लड़ नहीं पाते, वहाँ नाहरसिंह अन्त तक उनसे संघर्ष करता है। मृत्यु पर विजय पाने की भरपूर कोशिश करता है। उसका यह संघर्ष इस आनंद का सबसे बड़ा प्रतिवाद है। इस प्रकार सम्पूर्ण उपन्यास विचारोत्तेजक है। लेखक के तर्क अकाट्य हैं। इसमें प्रस्तुत जीवन-सत्य की उपेक्षा हम नहीं कर सकते इसे देशकाल की सीमा में बाँध नहीं सकते।

वर्मा जी के जिन उपन्यासों में तर्क की प्रधानता है, वे सभी विचारोत्तेजक हैं। और इस बुद्धि तत्त्व की प्रधानता लेखक के विचार तथा उसकी प्रकाशन प्रणाली में ही नहीं उसके द्वारा निर्मित पात्रों में भी है। भले ही पाठक यह अनुभव करे कि लेखक के तर्क को वह काट सकता है परन्तु जिस संदर्भ में ये तर्क प्रस्तुत किए गए हैं उसमें वे पूर्णतया युक्ति-संगत बैठते हैं। भले ही उससे अलग उस तर्क की कोई मान्यता न हो।

हास्य व्यंग्यकार के रूप में

वर्मा जी के व्यक्तित्व और लेखन दोनों में ही हास्य-व्यंग्य की एक अद्भुत झलक है। उनकी आंखों से छलकता हास्य और ओठों पर फूटती हंसी जैसे जीवन और जगत् की निस्सारता और निरर्थकता की ओर संकेत करते हैं एक कटु सत्य की अभिव्यक्ति करते हैं। हास्य और व्यंग्य करने की उनमें एक स्वाभाविक प्रवृत्ति भी है। जीवन के जिन संघर्षों से वे गुजरे हैं उनमें कोई दूसरा व्यक्ति होता तो वह टूट जाता बिखर जाता पर वर्मा जी ने वह सब हंसी में उड़ा दिया। गम्भीर-से गम्भीर बात को हास्य-व्यंग्य में उड़ा देना या हल्की फुल्की बात को गम्भीर रूप दे देना वर्मा जी की आदत बन गयी है। बाद में यही उनके लेखन-कला का एक अंग भी बन गयी।

स्वभाव में हास्य व्यंग्य की अतिशय मात्रा होने के कारण जहां भी उन्हें अवसर मिला है (उपन्यास या कहानी में) उन्होंने अपनी इस प्रवृत्ति का खूब उपयोग किया है। किन्तु यत्र-तत्र हास्य व्यंग्य का अद्भुत सृजन करने से वर्मा जी को संतोष नहीं मिला। फलत उस तृप्ति के लिए उन्होंने हास्य व्यंग्य से आद्योपान्त ओत प्रोत एक लघु उपन्यास अपने खिलौने की रचना कर ही डाली। अपने खिलौने को वर्मा जी के १९५७ तक के विभिन्न जीवनानुभवों का परिणाम ही कहा जा सकता है। सन् १९५७ तक लेखक हिन्दुस्तान के उन सभी प्रमुख नगरों में घूम फिर चुका था जो नये युग नयी सभ्यता और शिक्षा से पूर्णतया अभिभूत हो चुके थे। सन् १९३० १९३७ में वर्मा जी इलाहाबाद में रहे १९३७ १९४२ में कलकत्ता १९४२ १९४८ तक बम्बई और १९४८ १९५३ में लखनऊ और १९५३ १९५८ में दिल्ली में रहकर उसके बाद स्थायी रूप से लखनऊ में आकर रहने लगे। अपनी सूक्ष्म अवलोकन दृष्टि के फलस्वरूप व आज के जीवन के विकृत रूप को हल्के फुल्के ढङ्ग से, मर्मस्पर्शी रूप में प्रस्तुत करने में अत्यधिक सफल हुए हैं। अपने खिलौने के पात्र और घटनाओं की झांकियां हमें इसमें पूर्व की वर्मा जी की कतिपय कहानियों में मिलती हैं जिससे ऐसा प्रतीत होता है कि उन्हीं का प्रखर रूप उन्होंने प्रस्तुत उपन्यास में

उपस्थित किया है। आवारा इस थान का टिकट विजारत का नया तरीका 'प्रजण्टस, मुगलों ने सल्तनत बख्श दी' जैसी कहानियों के पात्र और घटनाएं 'अपने खिलौने' को पढ़ते समय अनायास याद आ जाते हैं।

'अपने खिलौने' का कथानक अत्यन्त संक्षिप्त है, परन्तु उसके पात्र अनेक और घटनाएं अनन्त हैं। पात्रों के परस्पर मिलन एवम् संघर्ष से कथानक को सामग्री मिली है। संयोग और आकस्मिक घटनाओं की प्रचुरता ने उपन्यास में नाटकीयता भर दी है। प्रत्येक घटना चल-चित्र के दृश्यों की भाँति घटित हुई है। समग्र उपन्यास में उत्सुकता और कुतूहल व्याप्त है। बार-बार ऐसी घटनाएं घटित हुई हैं जिनकी हमें आशा नहीं रहती। सबसे अधिक मजेदार और कुतूहलपूर्ण स्थल वह है जहाँ अशोक मीना का युवराज वीरेश्वर प्रताप की पार्टी में जाना पसन्द न करने के कारण ऐसी युक्ति खोजता रहता है, जिससे उस पार्टी का आनन्द किरकिरा हो जाय। संयोग से मीना के जूते को लेकर कृष्णन् नाराज होकर चला जाता है और संयोग से मनाने जाते हुए अशोक के हाथ में मीना का जूता चला आता है और फिर संयोग से ही उसी समय अशोक के मन में एकाएक एक मौलिक विचार आता है—मान लो यह जूता ही गायब हो जाय। तो मीना का वह हर रंग वाला शृंगार ही फीका पड़ जायगा। बिना हरे जूते के असली पन्ने का शानदार सैट, वह फल और सिल्क की जरतारी वाली हरी साड़ी, वह हरा मखमल—सभी बेकार। और यह मीना जो वीरेश्वर प्रताप के इशारे पर नाच रही है, यह मानो जो वीरेश्वर प्रताप की पार्टी में वही-वह दिखे, इसलिये अप्सरा का रूप धारण करना चाहती है उसकी पूरी तरह से किरकिरी हो जाय। कृष्णन् के बरामदे में अशोक अनिश्चित-सी मनो दशा में खड़ा रह जाता है। बाद में कुछ सोचकर वह जूता वहीं छोड़ जाता है। किन्तु संयोग की बात कि जयदेव भारती कृष्णन् को लेने उसके घर जाते हैं और जूता देख उसे उठा लाते हैं—मीना फिर खिल उठती है। अब अशोक का काम और भी अधिक कठिन हो उठता है। पाठक भी सोचता है कि अब तो पार्टी अपनी पूरी रौनक पर रहेगी कि तभी संयोग से अशोक की निगाह एक एक कार्डनिवर आइन की बोतल पर पड़ती है और उसे वह सम्पूर्ण चाय में भर देता है। कथानक में और भी अधिक तीव्रता आ जाती है। सभी मीना से दूर-दूर भागने लगते हैं और यह सब देखकर अशोक मन-ही मन प्रसन्न होता है। किन्तु अन्त में सब कुछ जान से कथानक में एक नया मोड़ आता है—मानो मानसिक रूप से असन्तुलित हो उठती है।

दूसरा कुतूहलपूर्ण स्थल वह है जब मीना और अन्नपूर्णा फिल्म प्रडयूसर और डायरेक्टर के चंगुल मे फँस जाती हैं। प्रत्येक क्षण लगता है कि अब क्या होगा। यहाँ भी संयोगो की सृष्टि कर लेखक ने अपना मार्ग सरल बना लिया है। एक ओर अशोक तथा राम प्रकाश युवराज वीरेश्वर प्रताप का हवाला देकर छूट जाते हैं दूसरी ओर दिलवर किशन भी उसी की याद करता है और मीना तथा अन्नपूर्णा का पता देता है। सारे बिखरे सूत्र एकत्र हो जाते हैं और फिर कहानी अपने ढर्रे पर चलने लगती है। किन्तु कुछ ही देर बाद वीरेश्वर प्रताप की फ्रेंच मँगेतर सामने आ जाती है। मीना तथा अशोक अन्नपूर्णा तथा रामप्रकाश एक हो जाते हैं।

उत्सुकता के अतिरिक्त कथानक म अतिशय तनाव है क्योंकि एक दूसरे के प्रतिद्वन्द्वी पात्र मौजूद हैं। मीना का मन अशोक और युवराज के बीच झूलता रहता है और अन्नपूर्णा का रामप्रकाश और युवराज के बीच। कैटा के बीच म आ जाने से तनाव और भी अधिक बढ जाता है। कैटा के चरित्र की सृष्टि लेखक ने दो उद्देश्यो से की है—एक तो वीरेश्वर प्रताप के चरित्रोद्घाटन के निमित्त दूसरे मीना और अन्नपूर्णा मे मानसिक तनाव उत्पन्न कर कथानक म उत्सुकता की सृष्टि करने के लिए। लेखक अपने उद्देश्य मे पूर्णतया सफल हुआ है। वास्तव मे उपन्यास म कथा नाम मात्र की है। वह आज के शिक्षित नवयुवक और युवतियो के बहके बहके ख्याल और आचरण का संग्रह है जिन्हें पात्रो की मानसिक तथा बाह्य क्रिया प्रतिक्रियाओ के माध्यम से कहानी के रूप म ढाल दिया गया है। वस्तुत अपने खिलौने मे हम रेखाचित्र और उपन्यास दोनो का आनन्द आता है। एक ओर इसका चरित्र चित्रण रेखाचित्र के चरित्रा कन की भाँति है दूसरी ओर इसका कथानक और घटना-क्रम उपन्यास की भाँति। दोनो अत्यन्त प्रभावशाली हैं। अत बडा नाटकीय और अप्रत्याशित है। किन्तु नाटकीय घटनाओ के रहते हुए भी उसमे भावात्मक-संवेदना वाली गति की किसी प्रकार कमी नही होने पायी है। उपन्यास की प्रत्येक घटना और प्रत्येक चरित्र हमारे मन को छूता है क्योंकि उनके द्वारा हमे आज के विशृ खलित जीवन मूल्यो से परिचित होने का अवसर मिला है।

अपने खिलौने म कोई मुख्य कथा नही है क्योंकि इसमे किसी एक पात्र को मुख्य नही कहा जा सकता। प्रत्येक पात्र का अपना महत्त्व है और इसलिए प्रत्येक स संबंधित इतिवृत्त का भी महत्त्व है। मीना को नायिका माने या अन्न पूर्णा को अशोक को नायक माने या वीरेश्वर प्रताप को यह विवादास्पद हो सकता है। किन्तु अपने खिलौने जैसे उपन्यास मे यह प्रश्न उठना ही नही

चाहिए क्योंकि इसका प्रत्येक चरित्र एक रेखाचित्र है। फिर भी हम यह नहीं कह सकते कि इसमें प्रासंगिक कथा और अप्रमुख पात्र हैं ही नहीं। वस्तुत लखनऊ वाला सारा इतिवृत्त ही प्रासंगिक है। टेढ़े-मेढ़े रास्ते में जिस भाँति इलाहाबाद के साहित्यकारों को लेकर लेखक ने स्थानीय चित्रण किया है वैसे ही प्रस्तुत उपन्यास में लखनऊ के कलाकारों को लेकर किया है। वहाँ के रेल्वे स्टेशन और काफी-हाउस का स्थानीय चित्रण बड़ा चटकीला है। वैसे मुबारक जान के बैठकखाने का चित्रण भी प्रासंगिक है। मुख्यतः अमरतिलक दम्पति, बनेरबाजी और पतंग का ऐतिहासिक महत्व दिखाकर लेखक ने लखनऊ की संस्कृति पर प्रकाश डाला है क्योंकि उनके अनुसार बटेरबाजी और कनकौवाबाजी इन दो शब्दों में यहाँ की संस्कृति की परिभाषा दी जा सकती है। तो यह सब प्रसंग स्थानीय रंग दिखाने के लिए आये हैं। किन्तु दिवाकर किशन और उसके भाई मामा वाला प्रसंग नितान्त प्रासंगिक है जो मूल-कथा से कहीं भी संयुक्त नहीं दीखता। संभवतः इसके द्वारा दिवाकर किशन के स्वभाव का उद्घाटन करना लेखक का उद्देश्य रहा है। इन दो प्रसंगों को छोड़ कर कोई भी घटना या इतिवृत्त प्रासंगिक नहीं कहा जा सकता। सभी घटनाएं और प्रसंग मुख्य-कथा के अंग हैं। यद्यपि सभी घटनाओं का पृथक अस्तित्व है। लेकिन अन्त में वे इस तरह से एक सूत्र में बंध जाती हैं कि वे स्वतंत्र नहीं दीखतीं। साराश में अपने खिलौने का कथानक सुसंगठित और रोचक है। उपन्यास लघु है, फलतः विस्तार और पूर्व निश्चित योजना को लेकर लेखक नहीं चला जैसा अपने अन्य उपन्यासों में उसने किया है।

'अपने खिलौने' के पात्रों के चरित्र भी अत्यन्त मनोरंजक साथ ही विचित्र हैं। किन्तु उनका आचरण स्वाभाविक और प्रकृति युगानुरूप तथा परिस्थिति के अनुकूल है। पात्रों की संख्या उपन्यास के आकार को देखते हुए बहुत है किन्तु किसी भी पात्र की सृष्टि निरर्थक नहीं हुई है। घटनाओं की भाँति ही पात्रों का आगमन उपन्यास के चित्रपट पर बड़े नाटकीय ढङ्ग से हुआ है। सभी पात्र एक साथ हमारे सामने नहीं आ जाते वरन् एक-एक कर, परस्पर सम्पर्क में बड़े नाटकीय ढङ्ग से आते हैं। आरम्भ में मीना तथा उसके परिवार का विस्तार ■ वर्णन करके लेखक उसे कथा का केन्द्र बिन्दु बनाता है। किन्तु इस परिवार के चारों ओर ही कथानक घूमता नहीं रह जाता। मीना के सम्पर्क में अन्य लोगों का आना दिखाकर लेखक आज की विकृत संस्कृति के विभिन्न रूप दिखाता है। यह विकृत मनोवृत्ति केवल मात्र युवक-युवतियों में ही नहीं उनके माँ-बाप में भी पायी जाती है। कहना तो यह चाहिए कि इन्हीं के कारण नयी पीढ़ी को

बहकने का अवसर मिलता है। नाम सम्मान तथा स्वार्थ के लिए मीना की माँ ज्ञानेश्वरी और पिता जयदेव भारती मीना की अनुचित बातों का भी समर्थन करते हैं। जब युवराज वीरेश्वर प्रताप मीना के नाम से कन्या भारती की चम्पा देते हैं तो ज्ञानेश्वरी देवी यह कहकर उसे प्रोत्साहन देती है कि युवराज ने तुम्हारे नाम से चम्पा देकर कौन सी बुराई कर दी ? मेरे बच्चे की तरह है। इन सब बातों से मीना के चरित्र-पतन को बढ़ावा मिलता है। इसी प्रकार ज्ञानेश्वरी देवी अशोक से कीमती पन्ने का सेट खरीदवा कर मीना को पहनाती हैं।

मीना की मन स्थिति को क्षण-क्षण में बदलने वाले दो कारण हैं—एक रुपये पैसे की चकाचौंध दूसरे प्रेम की मृगतृष्णा। मीना कभी देखती है कि युवराज से विवाह करने पर उसे मान सम्मान मिलेगा तो,वह उस ओर मुड़ जाती है। किन्तु युवराज को अन्य लड़कियों की ओर आकर्षित देखकर उस ओर से उदासीन हो अशोक पर प्रेम दृष्टि डालती है। फलत उसके प्रेम के आलम्बन सदैव बदलते रहते हैं। उसके जीवन में ऐसे क्षण बार-बार आते हैं। इसलिए उसके प्रेम में स्थायित्व नहीं है। उसकी प्रवृत्ति में चपलता उतनी अधिक नहीं जितनी दूसरों से ऊँची दीखने की अदम्य लालसा। उसके विचारों और आचरण में बचकानापन है। किन्तु उसे वह आधुनिक सभ्यता की विशेषता समझती है। अन्नपूर्णा भी इसी श्रेणी की स्त्री है। मीना और अन्नपूर्णा की मनोवृत्ति में अधिक अंतर नहीं है। जो कुछ अंतर दीखता है वह दोनों की परिस्थिति और आयु के अंतर के कारण है। अन्नपूर्णा के पास अपार धनराशि है। फलत धन नहीं प्रेम की मृगतृष्णा उसके मन को डाँवाडोल किये रहती है। विधवा युवती की अतृप्त आकांक्षाएं अपनी तृप्ति का मार्ग ढूँढती रहती है। अन्नपूर्णा के प्रेम के आलम्बन भी दो हैं—युवराज और रामप्रकाश। युवराज से निराश होकर अन्नपूर्णा रामप्रकाश का सहारा लेती है। किन्तु रामप्रकाश के प्रति अन्नपूर्णा का व्यवहार वैसा नहीं है जैसा मीना का अशोक के प्रति है। किन्तु ये दोनों ही नारी चरित्रहीन नहीं हैं। दोनों के चरित्र मर्यादित हैं।

अशोक एक सीधा सादा युवक है। मीना से वह इतना अधिक प्यार करता है कि हर समय उसके इशारे पर नाचने को तैयार रहता है। उसके आचरण की विचित्रता एकनिष्ठ प्रेम की प्रतिक्रिया ही है। मीना से वह इतना प्यार करता है कि किसी के प्रति उसका झुकाव वह सहन नहीं कर पाता। इसी कारण वह युवराज से चिढ़ता है। उसकी यह ईर्ष्या अत्यंत स्वाभाविक है और युवराज की

चित्रण का निषेध करने पर भी अशोक वास्तव में आज के युग का फ्रस्ट्रेटेड युवक है। अशोक की कला साधना व्यावसायिक है। यही नहीं ऊँचे आदर्शों की बात करने वाला अशोक प्रच्छन्न शराबी है। इसके विपरीत रामप्रकाश सरल प्रवृत्ति का युवक है। उसका व्यक्तित्व आडम्बरहीन और आज के युग की कुंठाओं से मुक्त है। उसके मन में जो कुछ है, उसे प्रकट करने में वह किसी प्रकार का दुराव छिपाव नहीं करता। वह स्वार्थी है अवश्य किन्तु अपने स्वार्थ के लिए वह दूसरों को किसी प्रकार की क्षति नहीं पहुँचाता। युवराज वीरेश्वर प्रताप शाही पीढ़ी के अवशेष हैं जिनकी रियासत चली गयी, पर जिनके स्वभाव की उच्छृंखलता आश्रय देने की परोपकारवृत्ति और शान शौकत ज्यों की-त्यों बनी हुई है।

निलवर किशन जब्बी का चरित्र बड़ा अनोखा है। प्राय उसने विदूषक का काम किया है। वैसे अपने खिलौने के किसी भी पात्र में व्यक्तित्व नाम की कोई चीज नहीं है। घटनावश या परिस्थिति-वश वे आचरण करते हैं। थोड़ा बहुत पेट खोलना तो सभी पात्रों की प्रवृत्ति है। जहाँ परिस्थिति उनका साथ नहीं देती, वे झूठ का सहारा लेते हैं। 'अपने खिलौने' पढ़ते हुए कभी कभी लगता है कि इसके पात्र कल्पित हैं। किन्तु प्रत्येक पात्र की प्रवृत्ति इतनी युगानुरूप और आचरण इतना परिस्थिति अनुकूल है कि उन्हें हम अयथार्थ नहीं कह सकते। ऐसे चरित्र हम समाज में रोज देखने को मिलते हैं। विशेषतः आज का उच्चमध्यवर्गीय और उच्चवर्गीय समाज इस प्रकार की कमजोरियों से बुरी तरह ग्रस्त है।

जैसा कि हम पहले लिखित कर चुके हैं इस उपन्यास को न तो हम विशुद्ध रेखा चित्र कह सकते हैं और न विशुद्ध उपन्यास। क्योंकि एक ओर इसमें रेखा चित्र जैसा चरित्र चित्रण है, तो दूसरी ओर उपन्यास का कथानक और घटना क्रम। यही नहीं प्रस्तुत उपन्यास नाटक की भी विशेषताओं से युक्त है। कहानी का आरम्भ, विकास, चरम-सीमा और परिसमाप्ति जिस प्रकार हुई है उसमें नाटक वाले तत्व सन्निहित हैं। इसी प्रकार जितना भी चरित्र चित्रण हुआ है वह कथोपकथन और पात्रों के आचरण एवं व्यवहार के माध्यम से हुआ है। प्रारम्भ के कतिपय पृष्ठों को छोड़कर, जिनमें लेखक ने मीना का रेखाचित्र खींचा है लेखक चरित्र या कथानक के बारे में अपनी ओर से कुछ नहीं कहता। यह रेखाचित्र वाला अंश बड़ा रोचक है और वह लेखक के विनोदी स्वभाव की अभिव्यक्ति करता है। इस अंश में मीना के व्यक्तित्व का बाह्य चित्रण मात्र हुआ है उसके व्यक्तित्व का आंतरिक पक्ष बाद में उसकी रुचियाँ

आचरण और दूसरे के साथ के व्यवहार म उभरता है । इसी भाँति अन्य चरित्रा के सम्बन्ध में भी हुआ है । पात्रा की भाषा भी पात्रानुकूल और भावचान की है । लोक प्रचलित उर्दू फारसी तथा अग्रेजी शब्दा का प्रयोग यथेष्ट हुआ है ।

अपने खिलौने का मूल उद्देश्य हास्य और व्यग्य की सृष्टि करना है । हास्य की उत्पत्ति दो प्रकार से होती है—एक तो स्वय हास्यास्पद पात्रा को लेकर दूसरे पात्रा को हास्यास्पद स्थिति म डालकर । पहले प्रकार का हास्य साधारण होता है । उसका सृजन भी लेखक के लिए सरल होता है । किन्तु दूसरे प्रकार के हास्य निर्माण में लेखक को अत्यन्त सतर्क रहना पडता है क्योंकि बिना हास्यास्पद चरित्रों के ही उसे हास्य विनोद की सामग्री प्रस्तुत करनी होती है । अपने खिलौने का हास्य इसी प्रकार का है । प्रस्तुत उपन्यास में एक भी पात्र हास्यास्पद नही है फिर भी सपूर्ण रचना हास्य से ओत प्रोत है । यह उपन्यास वर्माजी की विशिष्ट कला निपुणता का परिचायक है । उन्होने अप्रत्याशित घटनाओ और परिस्थितियो के सहारे हास्य का सृजन किया है । हास्य के साथ ही इसमें व्यग्य भी प्रच्छन्न है । साधारण दृष्टि से देखने पर जो विशुद्ध हास्य ही प्रतीत होता है बारीकी स देखने पर उसमे एक ऐसा व्यग्य प्रच्छन्न है जो हमारे मन और आस्था को हिला देता है ।

अपने खिलौने के लगभग सभी पात्र उच्चवर्गीय सुशिक्षित और शहरी हैं । इसमें उच्चमध्यवर्गीय समाज के सभी स्तर और सभी प्रकार के लोगो का चित्रण हुआ है । वर्मा जी की प्रखर प्रतिभा ने आई सी० एस० आफीसर मत्री सङ्गीतज्ञ कलाकार शायर फिल्मी कलाकार (निर्देशक प्राड्यूसर) आधुनिक नारी सभी पर व्यग्य किया है । किन्तु यह व्यग्य समाज-सुधारक या उपदेशक का नही है और न लेखक ने इसम किसी गम्भीर जीवन-दर्शन की स्थापना करने का प्रयत्न ही किया है । केवल लेखक ने इन पात्रा को उनके यथार्थ रूप म प्रस्तुत कर उनकी कमजोरियो और बुराइयो को इस ढङ्ग से प्रदर्शित किया है कि उनकी वास्तविक स्थिति हास्यास्पद लगे । वस्तुत इस वर्ग के लोगो ने जीवन को बडा सस्ता समझ रखा है—खिलौने के समान—और उससे वे खिलवाड करते हैं । यही इस वर्ग की हास्यास्पद स्थिति है । इस लेखक ने हास्य व्यग्य मिश्रित शैली द्वारा प्रस्तुत कर पाठको को एक विचित्र प्रकार का अनुभूति कराया है । ऊपर से जगमगाते इस समाज के खोखलेपन पर पाठको को हसी भी आती है और वितृष्णा भी होती है ।

प्रारम्भ म ही लेखक हास्य-व्यग्य द्वारा आधुनिक युवती पर प्रहार करता है । मीना सास्कृतिक एव सामाजिक समारोहो की शोभा के रूप म दिखती है ।

इन समारोहों में प्रखर तथा आकर्षक व्यक्तित्व को दिखने वाली माला का वास्तविक व्यक्तित्व कितना खोखला और थोथा है, यह हमें आरम्भ से ही विदित लगता है। एक बार अंश में नगर मीना के जिस व्यक्तित्व का रेखा चित्र खींचता है दो में जाकर पाठक को उसके सर्वथा विपरीत रूप के दर्शन होते हैं। पार्टी में एकमात्र वही वह दिखे इसके लिए वह अनाप शनाप खर्च ही नहीं करती, उधार भी चढ़ा लेती है। समाज में ऊंचा उठने की मृग-तृष्णा उसे इतना अधिक उद्वस्त देती है कि वह फिल्म में काम करने को तैयार हो जाती है। स्वार्थी वह इतनी अधिक है कि कभी वह अशोक पर प्यार जताती है कभी युवराज पर। अन्नपूर्णा भी विकृत आधुनिक नारी है। दोनों की हास्यास्पद स्थिति में डालकर लेखक ने अनेक बार उन पर व्यंग्य किया है। अन्नपूर्णा सभा सोसायटी में जाना इसलिए पसन्द करती है क्योंकि वहां उसका अतृप्त मन पुरुष वर्ग के सम्पर्क में आकर, सन्तोष का अनुभव करता है। इसके लिए वह दूसरों के सामने झूठ बोलकर, यह दिखाकर कि इनमें उसे कोई दिलचस्पी नहीं है, लोगों पर एहसान लादने के लिए वह इनमें भाग ले रही है वह अपनी मनोविकृति को छिपाने की असफल कोशिश करती है।

प्रदर्शनी भवन का वातावरण बड़ा हास्यास्पद और व्यंग्य पूर्ण है। एक तो चित्रकला प्रदर्शनी का उद्घाटन गृहमन्त्री से कराना स्वयं हास्यजनक है, जिसपर उनका अनर्गल भाषण उससे भी अधिक हास्यास्पद है। गृहमन्त्री भाषण देकर अपनी विद्वता दिखाना चाहते हैं पर भाषण के एक एक वाक्य में उनका अज्ञान और बुद्धि-हीनता प्रकट होता है। न तो उनके वाक्यों में किसी प्रकार का तारतम्य है और न कथनों में कोई तथ्य। इस भाषण का एक अंश उद्धृत करना ही पर्याप्त होगा 'इन कलाओं में जो चित्रकला है, वह बड़ी महत्वपूर्ण कला है। हमारे देश में यह कला बहुत अधिक विकसित हो चुकी है आज से हजारों वर्ष पहले जब लोग चित्रकला के नाम पर जानवरों और चिड़ियों की भाग्य लकीर बनाते थे, हमारे देश में महान् कला का सृजन हो रहा था। अजंता के चित्र—दुनिया में चित्रकला का इतना उत्कृष्ट नमूना कहीं नहीं मिलता। मैं तो अजन्ता के चित्रों पर मुग्ध हूं। केवल उन चित्रों को देखने के लिए अभी तक पांच बार अजन्ता हो आया हूं।' वस्तुतः प्रदर्शनी भवन का समस्त वातावरण हास्य और व्यंग्य की सामग्री प्रस्तुत करता है। लेखक ने दर्शकों को जिस भांति चित्रों की प्रशंसा करते दिखलाया है और वे चित्र जिस प्रकार चित्रित हैं उनके मैच एकत्र करने में अन्नपूर्णा और राम प्रकाश जिस भांति व्यस्त रहते

हैं, चित्रों को खरीदने के लिए फल और सब्जी खरीदने वाली भीड़ के समान लोग एकत्र हो जाते हैं—इस सारे दृश्य में हास्य और व्यग्य की झलक है।

लखनऊ के साहित्यिक वातावरण का भी वर्मा जी ने बड़ा हास्योत्पादक चित्रण किया है। वहाँ के काफी हाउस के वातावरण, कवि नाटककार रेडियो व्यवस्थापक किसी को वर्मा जी ने नहीं छोड़ा है। उनके इस चित्रण में अतिशयोक्ति नहीं है वरन् यथार्थ की स्पष्ट झलक है। वस्तुत यह समुदाय भी अनेक प्रकार की कमजोरियों से ग्रस्त है। सुधाकर जी का ऐतिहासिक चीजों का सग्रह करने के नाम पर पतग का सग्रह और बटेरबाजी का प्रदर्शन भी कम हास्यास्पद नहीं है। बेवकूफ बनने वाले बटलर दम्पति पर भी हम हंसी आये बिना नहीं रहती।

अपने खिलौने का हास्य-व्यग्य पात्रों में भी है और परिस्थितियों में भी। हास्यप्रद चरित्र न होते हुए भी पात्रों को जिस ढङ्ग से प्रस्तुत किया है वह हास्यप्रद है और जिन परिस्थितियों में चित्रित किया है वह भी हास्यपूर्ण है। जूता लेकर जयदेव भारती के घर कृष्णन् के साथ जो काण्ड हो जाता है वह हास्यजनक साथ ही व्यग्यपूर्ण है वाकई बड़ा खूबसूरत जूता है क्या कृष्णन्। और भारती ने जूता कृष्णन् की गोद में रख दिया।

कृष्णन् में ब्राह्मणत्व के सस्कार पूरी तरह से मौजूद थे। वैसे आई सी एस० और भारत सरकार का एक मत्री होने के नाते वह समाज में जर्क-बर्क दिखता था लेकिन घर में वह रोज सुबह दो घण्टा पूजा करता था। कमरे में नगे पैर और लुगी पहनकर रहता था और पाटे पर बैठ कर तथा केले के पत्ते पर परसवा कर साबा रसम और दही के साथ खाता था तथा इडली डोसा का नाश्ता करता था। उसे अपनी गोद में जूता रखा जाना अच्छा नहीं लगा यह स्पष्ट था। एक अजीब तरह की कड़ुआहट अपने मुह पर लाकर उसने कहा—जूता जूता है। मजबूरी से पहना जाता है। अगर न पहना जाता तो और भी अच्छा था। यह कहकर वह उठ खड़ा हुआ और जूता जमीन पर खिसक गया।

ज्ञानेश्वरी ने मुस्कराते हुए कहा— आपको जूता में कोई रुचि नहीं मालूम होती कृष्णन् साहब। कृष्णन् ने उत्तर दिया— मैं ब्राह्मण मिसेज भारती चमार नहीं हू। हमारे कुल में आज तक किसी ने जूता नहीं पहना। यह तो अपवित्र होता है।

जयदेव भारती को अपनी गलती का पता चला। उन्होंने कहा अरे कृष्णन् मैं भूल ही गया था कि तुम ब्राह्मण हो। माफ करना जो मैंने तुम्हें जूता

छुआ लिया। बस तुम जूता पहने हुए हो इसलिए तुम्हें आपत्ति नहीं होनी चाहिए।

जयदेव की इस क्षमा-याचना से कृष्णन् और भी कठोर हो गया पिघलना तो दूर रहा— 'हाँ जूता मैं पहने हूं, लेकिन मैं पैर में पहने हूं। और इस नौकर ने पहना लिया था। मैंने अपने हाथ से इसे नहीं छुआ। तुमने तो जूता मेरी गाय में रख दिया मुझे स्नान करना पड़ेगा।

इसके बाद कृष्णन् का जयन्त के घर में क्रोध के मारे भाग जाना और अशोक का उसका पीछा करना सभी हास्यपूर्ण है। अतएव वर्मा जी का हास्य व्यंग्य परिस्थिति एवं घटनाओं में है। यह लेखक के अद्भुत कला-कौशल का परिचायक है कि बिना हास्यास्पद चरित्र के, केवल अप्रत्याशित घटनाओं और परिस्थितियों की सयोजना से उसने अद्भुत हास्य विनोद-युक्त व्यंग्य की सृष्टि कर ली है। इस पर भी यह कि केवल प्रारम्भ के कतिपय पृष्ठों को छोड़कर सारा हास्य-व्यंग्य पात्रों के परस्पर वार्तालाप और क्रिया-कलापों द्वारा अभिव्यंजित हुआ है। किशोर किशन जरमी और प्रोफेसर कमल अपने खिलाने के सबसे अधिक हास्योत्पादक चरित्र हैं। इनके उपस्थित होते ही कुछ ऐसी स्थिति उत्पन्न हो जाती है कुछ ऐसी बात हो उठती है कि पाठक के मन में बरबस हास्य-वृत्ति का उन्मेष होने लगता है। इनके चलने फिरने बोलने-चालने यहाँ तक कि इनकी प्रत्येक हरकत तथा वाक्य में पाठक को हास्य की सामग्री मिल जाती है। गम्भीर परिस्थिति में भी किशोर किशन जरमी के शेर और लतीफे वातावरण को हल्का और स्थिति को मनोरंजक बना देते हैं। रामप्रकाश भी हास्य-विनोद उत्पन्न करने वाला पात्र है। किन्तु जैसा कि पहले भी संकेत किया जा चुका है अशोक वीरेश्वर प्रताप जयदेव भारती कुन्ती, कृष्णन्, सुधाकर, स्वच्छन्द की मीना ज्ञानेश्वरी अन्नपूर्णा और बैरा आदि हास्य के साथ लेखक के व्यंग्य के भी लक्ष्य हैं। सुसंस्कृत शिक्षित अशोक का मीना का जूता लेकर भागना उस पर कार्नलियन आयल छिड़कना, शराब पीकर रामप्रकाश के साथ प्लेटफार्म पर मारपीट करना आदि अयत्न बकवाने और हास्यजनक आचरण हैं। मीना अन्नपूर्णा और बैरा जैसी सुसंस्कृत स्त्रियों का अमान्य प्रमाण स्त्रियों की भीड़ लड़ना झगड़ना तथा अन्य विचित्र आचरण हास्य-व्यंग्य की सृष्टि करते हैं।

इस उपन्यास की एक विशेषता यह भी है कि हास्य-व्यंग्य से ओत प्रोत होने पर भी, इसके किसी पात्र के प्रति पाठक की संवेदना विच्छिन्न नहीं होने पाती है। लेखक के हास्य-व्यंग्य में कटुता नहीं है। कदाचित्, इसीलिए यदि

इसका कोई चरित्र हमारी सहानुभूति का पात्र नहीं है तो वह घृणा का पात्र भी नहीं है। इसका कारण यह है कि समाज के अनुसार चरित्रों की कमजोरियाँ संस्कारजन्य एवं परिस्थितिजन्य हैं। नये युग के वातावरण ने उन्हें हास्यास्पद स्थिति में लाकर खड़ा किया है। यही कारण है कि अपने सिलौटी के सभी पात्र कल्पित होते हुए भी यथार्थ हैं। समाज में ऐसे चरित्रों की कमी नहीं है।

सब मिलाकर हिन्दी में अर्वाचीन ऐसा हास्य व्यंग्यपूर्ण उपन्यास मिलना दुर्लभ है। इसका एक भी पृष्ठ ऐसा नहीं है जो रोचकता से परिपूर्ण न हो। निश्चय ही वर्मा जी के उपन्यासों में सबसे सशक्त और अभिव्यंजनापूर्ण शैली इसी की है। अपनी ओर से इसमें लेखक ने नाममात्र को कहा है। किन्तु जहाँ भी जो कुछ कहा है वह अत्यंत रोचक और हास्य व्यंग्यपूर्ण है। जूते को लेकर वर्मा जी ने कैसा हास्य-व्यंग्य उत्पन्न किया है यह इस उदाहरण से स्पष्ट है "विभिन्न समाजों और विभिन्न संस्कृतियों में जूते के विभिन्न स्थान हैं और अपने इस ऋषि मुनियों के पवित्र देश में जूते को बड़ा हीन समझते हैं आप निहायत फटा हुआ जूता पहनकर शानदार से शानदार पार्टी में हो आइये और कोई आपकी तरफ उंगली तक नहीं उठायेगा और सच तो यह कि समझदार लोग नया जूता और साबुत जूता पहन कर महफिलों में और बारातों में जाते ही नहीं क्योंकि वहां जूता चोरी हो जाने का खतरा है हमारे समाज में जूते का महत्त्व सिर्फ मारपीट में है। और मारपीट में जितना घिसा हुआ जितना फटा हुआ जूता हो उतना ही अच्छा माना जाता है। जूतेबाजी में लोगों का उद्देश्य चोट पहुँचाना उतना नहीं होता जितना इज्जत उतारना होता है। वैसे कुछ जालिम किस्म के राजा रईस जूते से इज्जत उतारने के साथ-साथ चोट पहुँचाने का काम भी लेते थे लेकिन इस काम के लिए एक खास तौर के मजबूत जूते बनवाते थे और उन जूतों को इस तरह तेल पिलाते थे कि बस पूछिए मत यानी आप उसका अंदाज नहीं लगा सकते। बहरहाल इतना कह देना काफी होगा कि हमारी संस्कृति और परम्परा में जूते का बहुत निम्न स्थान माना जाता है। लेकिन अंग्रेजी संस्कृति में जूते का स्थान बहुत ऊंचा है। दावत तवाजा सभा-सम्मेलनों नाच गाना सभी जगह आपको जूता पहन कर जाना पड़ता है। रोज सुबह लोग-बाग जैसे देवता पर फूल चढ़ाते हैं ठीक उसी तरह जूते पर पालिश करते हैं। इस कदर चमकाते हैं कि उसमें मुख दिख जाय क्योंकि लोगों की नजर सबसे पहले आपके जूता पर ही पड़ती है जूता देखकर आप किसी भी व्यक्ति का समाज में स्थान बता सकते हैं। जूते के माध्यम से

विभिन्न देशों और कालों की सभ्यता-संस्कृति का अंकन वर्मा जी जैसे कलाकार की ही क्षमता का काम है।

वर्मा जी के स्वभाव का कुतूहलापन्न विनोदी प्रकृति उनकी अभिव्यक्ति में जगह-जगह प्रकट हुई है। एक उदाहरण प्रस्तुत है 'इतना कह देने के बाद मोना के रूप की बात और रह जाती है। वैसे मैं न जाने कितनी लड़कियों को निसंकोच रूपवती कहकर उन्हें प्रसन्न कर चुका हूँ इसीलिए मोना की अद्वितीय सुन्दरता कह कर मैं उन लड़कियों को नाराज करने का दुःसाहस तो न करूँगा लेकिन—जो हाँ और मेरा मतलब वो समझ ही गये होंगे। दूध का-सा सफेद रंग और उस पर चेहरा नाक नाक लम्बा-लम्बा माथा गोल और लम्बे के बीच में, जो गोल चेहरा पसन्द करने वालों को गोल दिखे और लम्बा चेहरा पसन्द करने वालों को लम्बा दिखे। आँखें बड़ी-बड़ी कुछ खोई हुई-सी और कुछ भाई हुई-सी या तो कहीं ठहरे ही नहीं और अगर कहीं ठहर जायें तो जिस पर ठहरे, उसका काम तमाम। चेहरे पर स्वास्थ्य की एक लालिमा जो चेहरे पर गुलाबीपन की झलक पैदा कर देती है। अक्सर लोगों को शक हो जाता है कि उस चेहरे पर लिपाई हुई है। जी, पेण्ट के लिए हिन्दी में लिपाई शब्द का प्रमाण हो सकता है क्योंकि लेप लगाने की प्रथा हमारे यहाँ प्राचीन काल में भी थी लेकिन लोगों का ख्याल गलत है। चेहरे पर लिपाई-पुताई पढ़ी-लिखी लड़कियाँ नहीं करतीं—ऐसा मुझे एक पढ़ी लिखी लड़की ने ही बतलाया है, वैसे कुछ अन्य लोगों का अनुभव इससे विपरीत भी हो सकता है।

अभिप्राय यह कि वर्मा जी की वर्णनात्मक शैली, चरित्रांकन शैली और कथन शैली तीनों में हास्य-व्यंग्य का पुट है। गम्भीर स्थिति तक के अंकन में उनकी हास्य-वृत्ति छिप नहीं पाती है। यही कारण है कि 'अपने खिलौने' का कोई स्थल सरसता और रोचकता से हीन नहीं है। जीवन की कटुता को इतने हल्के फुल्के ढंग से उड़ा देना या दूसरे शब्दों में परोक्ष में उसका अनुभव करा देने में यह उपन्यास पूर्ण सफल हुआ है। हिन्दी में ऐसी कृतियों की बहुत आवश्यकता है जो आज के त्रस्त और नीरस जीवन को कम से कम कुछ क्षणों के लिए [illegible] सरसता और उल्लास प्रदान कर सके।

सामर्थ्य और सीमा जहाँ विचार प्रधान उपन्यास है, वहाँ यह एक तीखा व्यंग्य में भी ओत प्रोत है। इस व्यंग्य में हास्य का पुट कम है इस कारण इसका हास्य बुद्धि तत्व की बोझिलता से दब सा गया है। इसलिए इस उपन्यास में हमें वर्मा जी का व्यंग्यकार वाला रूप ही मिलता है हास्य-व्यंग्यकार का नहीं।

विशुद्ध कथाकार के रूप म

किसी समस्या का प्रस्तुतीकरण या हास्य व्यंग्य का सृजन भले ही वर्मा जी की कृतियों म बहुलता से मिलता हो परन्तु उनका मूल उद्देश्य कहानी कहना हो रहा है। यह अवश्य है कि बौद्धिकता की प्रधानता तथा हास्य व्यंग्य की अतिशयता ने उनकी कुछ कृतियों को विशाल कथानी म नाटक रूप दे दिया है यह इस लिए कि इनम उल्लिखित तत्व तथा कहानी वाला तत्व सतुलित नहीं हो पाये हैं। कहीं लेखक की तर्क वादी प्रवृत्ति ने प्रमुखता पा ली है तो कहीं उनकी हास्य व्यंग्य की प्रवृत्ति ने। पर वर्मा जी के ये ही उपन्यास सबसे अधिक लोकप्रिय हुए हैं जिनमें कहानी वाला अंश अधिक है। इन उपन्यासों म पाठक उसके विषय पात्र और स्थितियों से अपना तादात्म्य स्थापित कर लेता है। उपन्यास कहानी पढ़ते समय पाठक अपनी बुद्धि अवश्य सजग रखता है पर यह कभी नहीं चाहता कि वह बुद्धि के तर्क वितर्क म उलझ जाय। आखिरी दाव भूले बिसरे चित्र तथा रेखा म हमे वर्मा जी का विशुद्ध कथाकार वाला रूप मिलता है।

एक सफल उपन्यास म जो गुण होने चाहिए वे सभी हम आखिरी दाव म मिलते हैं। टेढ़े मेढ़े रास्ते ,जैसे बृहद् उपन्यास के बाद आखिरी दाँव एक साधारण आकार का उपन्यास लिखता है। किन्तु यह उपन्यास वर्मा जी की श्रेष्ठ कृतियों में से एक है। वस्तु विन्यास की सुचारुता इतिवृत्त की रोचकता तथा बाह्य एव आन्तरिक द्वन्द्व की तीव्रता—सभी कुछ इसमे मौजूद है। उपन्यास के कथा विकास म नाटकीयता अवश्य है किन्तु वह तभी तक प्रतीत होती है, जब तक हम फिल्म जगत् की दुनिया से परिचित नहीं होते। जैसा कि हम अन्यत्र उल्लेख कर चुके हैं १६४२ १६४८ के बीच की अवधि म वर्मा जी बम्बई म रहे और फिल्मी-दुनिया से उनका गहरा सम्बन्ध रहा। वहाँ उन्होंने एक नया समाज देखा एक विशिष्ट प्रवृत्ति के लोग देखे। आखिरी दाँव उनके उन्हीं विचित्र अनुभवों का संकलन है। इसीलिए आखिरी दाव की कहानी म सच्चाई है फिल्मी दुनिया का यथार्थ है।

अपने प्रत्येक उपन्यास में वर्मा जी ने नारी का एक विशेष रूप उद्घाटित किया है। 'चित्रलेखा' की चित्रलेखा नर्तकी होते हुए भी सम्मान योग्य नारी है। 'तीन वर्ष' में प्रभा समाज की सम्मानित नारी होते हुए भी वेश्या सरोज से बहुत नीची है। समाज की उपेक्षित नारियों को वर्मा जी ने बहुत ऊँचा स्थान दिया है। 'आखिरी दाँव' की चमेली जो घर के आभूषण और रुपये चुराकर गाँव के छैला के साथ भाग जाती है, समाज की दृष्टि में भले ही पतित हो पर लेखक ने उसे जिस परिस्थितिवश ऐसा करने को विवश दिखाया है, यदि उस पर हम ध्यान दें, तो उसे हम पतित नारी की संज्ञा नहीं दे सकते। 'आखिरी दाँव' की चमेली का जीवन कथा को पढ़कर एकाएक हमें प्रेमचंद के सेवासदन (१९१७) की नायिका सुमन की याद आ जाती है। सुमन भी परिस्थितियों से विवश होकर वेश्या का जीवन बिताती है। 'आखिरी दाँव' के लेखन काल में लिखे यशपाल के मनुष्य के रूप (१९४९) की नायिका सोमा भी कई अर्थों में चमेली के चरित्र से साम्य रखती है। ससुराल वालों द्वारा सतायी सोमा अंत में फिल्म-जगत की शरण लेती है। किन्तु उसमें एक प्रकार की कटुता आ जाती है, जो हमें 'आखिरी दाँव' की चमेली में नहीं मिलती। किन परिस्थितियों में पड़कर चमेली का चरित्र पतन और चरित्र विकास होता है इसका विश्लेषण यथास्थान किया गया है।

एक ओर 'आखिरी दाँव' जहाँ घटना प्रधान उपन्यास कहा जा सकता है वहाँ दूसरी ओर हम इसे चरित्र प्रधान उपन्यास भी कह सकते हैं। इसमें घटनाओं के माध्यम से पात्रों की क्रिया प्रतिक्रिया द्वारा चरित्रोद्घाटन हुआ है। दूसरे शब्दों में पात्रों का चरित्रोद्घाटन घटनाओं के माध्यम से हुआ है, तो घटनाओं का निर्माण समाज के द्वारा। इस प्रकार उपन्यास के ये तीनों तत्व एक दूसरे से इस प्रकार गुँथे हुए हैं कि इनमें से किसी को भी पृथक करके नहीं देख सकते। प्रारम्भ में ही एक के बाद एक घटना घटित होता चला जाता है और उसमें कुछ ऐसा समाज होता है कि पात्रों को विशिष्ट परिस्थिति में पड़कर कुछ ऐसा करने को विवश होना पड़ता है, जिसके कारण उनका जीवन क्रम ही बदल जाता है। घटनावश एक संयोगवश अनायास ही पात्र एक दूसरे के सम्पर्क में आ जाते हैं। रामेश्वर के जीवन में एक ऐसी घटना होती है जिसके फलस्वरूप उसे गाँव छोड़कर बम्बई भागना पड़ता है। अपने स्वभाव के कारण या विधि के विधान से रामेश्वर उस दिन जुआ खेलने चला जाता है और फिर दुर्भाग्य उसके सिर पर ऐसा सवार होता है कि वह धीरे धीरे सब कुछ हार बैठता है, जमीन-जायदाद सभी कुछ। और फिर मुक्त बंधनहीन होकर वह

अपने गाँव से नाता तोड़ बम्बई की ओर दौड़ पड़ता है। दूसरी ओर चमेली के जीवन में भी कुछ ऐसा घटता है कि उसे भी बम्बई की ओर दौड़ना पड़ता है। संयोग से चमेली जिसके साथ भागती है उससे उसकी नहीं पटती और वह उससे छुटकारा पाने के लिए पुलिस का सहारा लेना चाहती है किन्तु पुलिस भी वहाँ ऐसी स्त्री को आसानी से छोड़ने वाली है। संयोग से रामेश्वर घटना-स्थल पर पहुँच जाता है और वह चमेली को पुलिस के चंगुल से बचा लाता है। यहाँ पाठक एकाएक चौंक उठता है और उसकी समझ में आ जाता है कि यह सब लेखक की पूर्व निश्चित योजना है जिसके निमित्त वह इन दोनों को एक स्थल पर लाकर मिला देता है और उनके जीवन-सूत्रों को एक में गूंथ देता है। यहीं कथा के दो बिखरे हुए सूत्र एक स्थल पर आकर मिल जाते हैं और फिर वे कभी अलग नहीं होते। इन दोनों पात्रों को एक जगह बनाये रखने के लिए लेखक कुछ ऐसी स्थितियों का निर्माण करता है जिससे ये पात्र अलग नहीं हो पाते। एक के-बाद एक कुछ ऐसे संयोग आ पड़ते हैं कि चमेली रामेश्वर को छोड़कर नहीं जाने पाती और फिर जीवन पर्यन्त उसी की बनी रहती है। जिस रात को चमेली और रामेश्वर की भेंट होती है उस रात को संयोग से मूसलाधार पानी गिरता है और रामेश्वर भीग जाता है। जिस व्यक्ति ने उसके लिए इतनी ममता दिखलायी है उसे वह ऐसी हालत में छोड़कर कैसे जा सकती है। और पहले अनिच्छा से बाद में इच्छा से वे दोनों एक-दूसरे के निकट आते जाते हैं। रामेश्वर के जीवन में अनायास ही एक बहुत बड़ा परिवर्तन हो गया। उसने यह कल्पना तक न की थी कि इस उम्र में उसे गृहस्थी जमानी पड़ेगी। उसके जीवन में रस आ गया प्राण आ गया। वह अब किसी को अपना कह सकता था, उसे कोई अपना मानने वाला भी दुनिया में था। और चमेली को ऐसा लगा कि उसे एक नयी दुनिया मिली जो वास्तव में स्वर्ग है। जीवन में प्रथम बार उसे वास्तविक प्रेम ममता मिली। उसकी मुरझायी हुई आत्मा खिल उठी उसकी पथराई हुई आँखों में चमक आ गयी। उसके पास गहने नहीं थे उसके पास कपड़े नहीं थे पर उसे इनका अभाव मालूम ही नहीं होता था उसके पास इन सबसे बढ़कर एक निधि थी—प्रेम।

इस प्रकार संयोग और परिस्थितियों के सहारे चरित्र विकास दिखाकर लेखक कथा अग्रसर करता है। कथा में जैसे ही गतिरोध आने को होता है कि लेखक फिर कुछ ऐसा संयोग और परिस्थिति पैदा कर देता है कि कथा फिर से आगे बढ़ने लगती है। लेखक को चमेली को फिल्म जगत में खींचना था इसलिए वह फिल्म कम्पनी में काम करने वाली राधा के सम्पर्क में उसे लाता

है। राधा बीमार पड जाती है और चमेली उसकी सेवा शुश्रूषा करके उसकी घनिष्ट मित्र बन जाती है। यहाँ कथानक म शिथिल गतिरोध आ जाता है कि लेखक फिर एसी स्थितियों का निमाण कर देता है जिससे कथा को अग्रसर होने का अवसर मिल जाता है। किन्तु कहा-कहा आगामी घटनाओं की पूव सूचना देकर लेखक ने अच्छा नहा किया, क्योंकि उससे कुतूहल समाप्त हो गया है। राधा अपने यहा नवरात्रि के उत्सव का आयोजन क्यो करती है, उसकी ओर लेखक यह कहकर पहले से ही सूचना दे देता है कि 'राधा का बाजार अब प्राय उजड चुका था—राधा यह अच्छी तरह समझ गयी थी अब उस दूसरे ढग से अपना बाजार जमाना था। राधा के पुराने ग्राहक तो मौजूद थे पर उन ग्राहकों को नये माल की आवश्यकता थी। नये माल को एकत्रित करने के लिए राधा ने जगमोहन की सहायता से यह जाल बुना था। इस उत्सव, इस राग रग के भीतर जो भयानक कुरूपता छिपी हुई थी उसका न चमेली को पता था और न उस उत्सव में भाग लेने वाले किसी अन्य स्त्री-पुरुष को। इस प्रकार पाठक ऐसे क्षण की प्रतीक्षा करने लगता है जिसमे चमेली इस चगुल म फँसेगी। किन्तु पहले ही दाँव पर से चमेली साफ निकल जाती है। अब लेखक दूसरा परिस्थिति का निर्माण कर फिर से उसे फिल्म-जगत म लाने का प्रयास करता है। इस बार वह एक ओर चमेली के मनोविज्ञान को कुरेद कर उसमे मानसिक द्वन्द्व उत्पन्न करता है और दूसरी ओर नवीन स्थितियों का निमाण करता है। राधा की ऐश्वय भरी जिन्दगी देख उसम भी वसा जीवन बिताने की लालसा जाग्रत हो उठती है। 'उस दिन शाम के समय जब चमेली घर पहुँची, वह बहुत थकी हुई थी। उसने चूल्हे पर खाना चढ़ा दिया और फिर वह बिस्तर पर लेट गयी। उसने अपनी उस छोटी-सी कोठरी को देखा, जो शायद कई साल से नहा पुती थी, और जिसकी छत तथा दीवारें धुए से काली हो रही थी। उसने अपने फटे बिस्तर को देखा उसने रामेश्वर के टूटे हुए टीन के ट्रक को देखा, और उसके प्राणो म एक अजीब तरह की पीडा भर गयी। वह सोचने लगी, क्या यही जिन्दगी है? दुनियाँ म इतनी चीज हैं लेकिन वे सब भर किस काम की? ऊँचे-ऊँचे आलीशान मकान, अच्छे-अच्छे रेशमी और जरी के कपडे, बेशकीमती गाने, हीरे मोती के गहने। लेकिन यह सब चीजें मेरे लिए नहा हैं। आखिर कौन सा पाप किया है मैंने? जो पाप करता है वह फलता-फूलता है उसके पास महल है उसके पास सुख है। शिवकुमार इतनी दौलत लुटा हाथ मुक्त रहा है। राधा मौज से रहती है अच्छा खाती है अच्छा पहनती है।' यह अन्तद्वन्द्व चमेली तक ही सीमित नहा रहता। अपनी यह लालसा

वह रामेश्वर पर प्रकट कर उसम भी लसपती बनो की अम्य कामना जाग्रत कर दती है। 'ऊपर से यह दिखता था जैसे रामेश्वर ने उस रात चमेली के मकान बदलने के प्रस्ताव को टाल दिया लकिन उस दिन से रामेश्वर क अन्दर भी एक प्रकार की हलचल पैदा हो गई। चमेली ने ठीक ही कहा था कि यह जिन्दगी भी कोई जिदगी है। रामेश्वर अपने जीवन पर सोचता था। और उस क्रोध आता था। अभी तक उसे सताप था क्योंकि वह अकेला था। उसे केवल अपने सुख का ख्याल था और पुरुष होने के नाते कठोर जीवन म उसे आनन्द मिलता था। लकिन अब तो स्थिति बदल गयी थी वह अकेला न था उस पर अवलम्बित और उसका आश्रित एक और भी होड़ था और वह कोई फूल था सा कोमल था। उसका सुखी बनाना हर तरह से उसकी तकलीफो को दूर करना रामेश्वर का कर्तव्य था। और इस अतद्वन्द्व के फलस्वरूप वह जूआ के दूसरे रूप सट्टेबाजी और रेस कोर्स म भी हाथ डालने लगता है। चमेली को फिल्म जगत म लाने के उद्देश्य से लेखक रामेश्वर को हराता चला जाता है और स्थिति ऐसी आ पड़ती है कि या तो चमेली फिल्म कम्पनी म काम करे या फिर रामेश्वर को हमेशा के लिए खो दे। राजा के चगुल से चमेली निकल भागी था किन्तु विधाता के इस दाव स वह नहीं बच पाती और रामेश्वर को बचाने के लिए उसे फिल्म कम्पनी म नौकरी करनी ही पड़ती है। लेखक अपने उद्देश्य मे सफल होता है और फिर वह बड़े मनोयोग से फिल्मी-दुनिया के चित्र खीचता है। यहाँ हमारा परिचय नये नये पात्रो स होता है जो फिल्म-जगत के टिपिकल व्यक्ति हैं। इन लोगो की गुण्डाजी का लेखक ने अच्छा चित्र खीचा है। चमेली धीरे धीरे इस जीवन की अभ्यस्त हो जाती है—बिना किसी अन्तर्द्वन्द्व के यद्यपि कभी-कभी उसे मानसिक क्लेश अवश्य होता है। यहाँ आकर चमेली और रामेश्वर के रास्ते अलग-अलग हो जाते हैं। रामेश्वर भी स्त्री की कमाई पर जीना पसन्द नहीं करता। फलत अपना अलग रोजगार आरम्भ कर देता है। जब रामेश्वर चमेली को गुफाए दिखाने ले जा रहा था तब सयोगवश उसकी भेंट बम्बई के भया लोगो से हो गयी थी। लेखक ने यह भेंट निरर्थक नहीं दिखायी थी क्योंकि बाद म रोजगार के लिए रामेश्वर को यही पेशा अपनाना पड़ता है। रामेश्वर परिस्थितियो से विवश होकर तबेले का काम नहीं करता वरन उसकी अन्त प्रेरणा उस यह काम करने को प्रवृत्त करती है। राधा और चमेली के झगड़े वाले काड स उसम पैसा कमाने की अभिलाषा और भी तीखे रूप मे प्रज्वलित हो उठती है। रामेश्वर के अन्दर जो तूफान अभी तक घिर रहा था वह फूट पड़ा मैं तुझे अभी तक सहारा नहीं दे सका

सहारा लिया है तैने मुझे। तूने मुझे जल जाने से बचाया, मुझे बचाने के लिए तुझे अपना शरीर बेचना पड़ा तूने मुझे घर बिठला कर खिलाया, तुझे लगा तार मेहनत करनी पड़ी। और मैं—एक पशु की भाँति अभी तक रहा—औरत की कमाई पर जिन्दा। मुझमें और जगमोहन में कोई भेद नहीं रह गया था। लेकिन अब यह न होगा रामेश्वर के हाथ में अभी इतना पौरुष है कि वह काम कर सके। आज मैंने देख लिया कि दुनिया में पैसा ही ताकत है—सबसे बड़ी ताकत है। पैसे के लिए इंसान को शरीर तक बेचना पड़ता है—कम-से-कम मेरी चमेली को तो अपना शरीर बेचना पड़ा है तैने अभी अपनी आत्मा नहीं बेची यह कमी रह गयी नहीं तो तू यह सब मुझसे न कहती—और शरीर तो हरेक को बेचना पड़ता है—किसी-न किसी रूप में। सुन री बिना आत्मा बेचे कोई आदमी नहीं बन सकता—तू कभी भी अमीर नहीं बन सकती, क्योंकि तू अभी आत्मा बचाए हुए है। हा-हा-हा जिन्दगी का कितना बड़ा सत्य इस रामेश्वर के हाथ लग गया। इस मानसिक संघर्ष के फलस्वरूप ही रामेश्वर पाप की कमाई करने को प्रेरित होता है।

भाग्य और नियति को वर्मा जी ने यहाँ भी महत्वपूर्ण माना है। 'चमेली ने देख लिया कि नियति के क्रम को बदला नहीं जा सकता। जो होना है वह होकर रहेगा। आदमी का बनाना बिगाड़ना वाला कोई दूसरा ही है।' चमेली और रामेश्वर के पतन का कारण उनका भाग्य ही बनता है। विधाता के विधान के कारण उनके लिए ऐसी परिस्थितियाँ बनती चली जाती हैं कि उनसे बच निकलने का कोई मार्ग अवशेष नहीं रह जाता।

इस सारे विवेचन से यह स्पष्ट है कि 'आखिरी दांव' के कथा-संगठन में संयोग और आकस्मिक घटनाओं का विशेष हाथ है। 'चित्रलेखा' में भी इन दोनों का आश्रय था। तीन वर्ष में वह कुछ कम मात्रा में रहा। किन्तु 'आखिरी दांव' में फिर लेखक को इन दोनों का सहारा लेना पड़ गया। वस्तुतः आखिरी दांव एक उद्देश्य प्रधान उपन्यास है, और इस कारण उसका सारा वस्तु विन्यास लेखक की योजना पूर्व निश्चित योजना का परिणाम है। अपने पूर्व निश्चय के अनुसार ही वह एक-के बाद एक संयोग तथा घटनाओं का समायोजन करता जाता है और उनमें पात्रों को डालकर उपन्यास का कथा-सामग्री जुटा लेता है। ये एक-के-बाद-एक के संयोग तथा घटनाएं अस्वाभाविक एवं कृत्रिम मन गये लगें पर उनमें उत्पन्न स्थितियों को हम नाटकीय नहीं कह सकते। ऐसी परिस्थितियाँ प्रायः व्यक्ति के जीवन में आती हैं जब उसे इच्छा या अनिच्छा से विवश होकर आचरण करना पड़ता है। वर्मा जी ने लिखा दुनिया

में र॰ कर इस प्रकार की मजबूरियों को देखा भोगा है और उन्ही अनुभवों को प्रस्तुत उपन्यास म उतारा है। फिल्मी-जीवन म भ्रष्टाचारो की कहानी को उन्होंने अपनी रचना म जिस खूबी स उतारा है यह कहने की आवश्यकता नही है।

भूले बिसरे चित्र में हम वर्मा जी का स्थान प्रौढ़ कथाकार के रूप म होता है। कथा की रोचकता भूले बिसरे चित्र का प्राण है। पर कुतूहल तथा उत्सुकता से अधिक उसमें पाठको का भावनात्मक संवेदना उत्पन्न करने वाला तत्व है। उसकी कहानी म पाठक ऐसा खो जाता है उसकी घटनाओ और स्थिति मे वह इतना घुल मिल जाता है कि उसे सब कुछ परिचित तथा अपने और अपने निकटतम पर गुजरता हुआ प्रतीत होता है। लेखक के चित्रण म गहनता है। इसलिए उससे प्राप्त अनुभूति मे गहराई उत्पन्न हो गयी है। कहा कही तक और वाद विवाद के छिटके बिन्दु हम देखने को मिल जाते हैं, किन्तु उससे उपन्यास क धारा प्रवाह म किसी प्रकार का व्याघात उत्पन्न हुआ हो ऐसा हमारे देखने मे नही आता। उनके द्वारा चरित्र और परिस्थिति का अधिक से अधिक स्पष्ट और सजीव बनाने का प्रयास ही हुआ है। वैसे वर्मा जी के तर्कों म एक अकाट्य सत्य निहित रहता है। जीवनगत सत्य के किसी न किसी पहलू को ये प्रकट करते हैं। किन्तु 'चित्रलेखा की भाँति भूले बिसरे चित्र का कथा विकास वाद विवाद और तर्क के माध्यम से नही हुआ है। न ही टेढे मेढे रास्ते के पात्रो की भाँति इसके पात्र किसी न किसी मत और सिद्धान्त को मानने वाले हैं।

चार पीढ़ियो के माध्यम से भूले बिसरे चित्र मे वर्मा जी ने मानव मूल्यो के संक्रमण की रूप रेखा प्रस्तुत की है। युगान्तर के फलस्वरूप नैतिक मापदण्ड और व्यक्ति के पारस्परिक सम्बन्धो मे जो भी अन्तर आया उसका सम्पूर्ण अंकन इस उपन्यास म हुआ है। उठते हुए मध्य वर्ग और सरकारी नौकरी ने मानव मूल्यो के विघटन की सामग्री प्रस्तुत कर दी थी। तत्कालीन परिस्थितियो म व्यक्ति कितना ही विवश और दयनीय हो गया था। गंगाप्रसाद का करुण अंत हम इसका बोध कराता है।

'भूले बिसरे चित्र अपने म महाकाव्य का परिवेश लिए हुए है। उसम महाकाव्य की विशालता है। वह अपने मे एक पूरा युग समेटे हुए है। इसम हम एक समूचे युग की सांस्कृतिक सामाजिक और राजनतिक झाँकी देखने को मिलती है। पहले खण्ड म हम टूटती हुई सामंतीय परम्परा के चित्र मिलते हैं। दूसरे तीसरे और चौथे खण्ड म मध्य वर्ग क बनने और पनपने की कहानी

है तथा पाचवें में मध्य वर्ग के सामाजिक मानव-मूल्यों के संक्रमण की प्रक्रिया देखने को मिलती है। सांस्कृतिक विघटन की पृष्ठ-भूमि में लेखक वर्मा सतर्कता से सामाजिक विघटन का उल्लेख करता है कि किस प्रकार समाज और परिवार में वह घटित हुआ। अधिकार और शक्ति के स्थान बदल जाते हैं और इनमें विभिन्न सामाजिक स्तर के व्यक्तियों तथा परिवार में एक भ्रान्ति और छटपटाहट पैदा हो जाती है। इस सब का अंकन वर्मा जी ने बड़ी कुशलता से किया है। सामंतीय परम्परा के ह्रास के साथ एक ओर मध्य वर्ग पनपा और दूसरी ओर पूँजीपति का अस्तित्व सामने आया। गंगाप्रसाद के माध्यम से मध्य-वर्ग के बुद्धिजीवी तथा लक्ष्मीचन्द के माध्यम से पूँजीपति के स्वरूप विकास का चित्रण हुआ है। लक्ष्मीचन्द अपनी जमीन-जायदाद बेचकर मिलें खोल लेता है। इस प्रकार वह एक बहुत बड़ा पूँजीपति बन बैठता है। पूँजीपति बनकर उसकी मान्यताएं बदल जाती हैं, उसका स्वभाव बदल जाता है। पूँजीपति बनकर वह माँ से भी ऊपरी व्यवहार रखता है। पैसा के लिए उस माली तक देता है। बड़े-से-बड़ा पूँजीपति बनने की उसकी अदम्य इच्छा उसे अनैतिक मार्ग अपनाने की प्रेरणा देती है। अपने इस अनैतिक कार्य में वह सभी को मिलाये रखता है—विभिन्न रूप में लोगों को रिश्वत देकर। ज्ञान प्रकाश ठीक ही कहता है कि वह पूँजीपति जबरदस्त मुनाफा उठाता है। उस मुनाफे का एक हिस्सा वह सरकार को देता है, ताकि सरकार से उसे हर भाँति की सुविधाएं मिलें। इस मुनाफे का छोटा-सा हिस्सा वह देता है कांग्रेस को, ताकि स्वदेशी आन्दोलन जोर पकड़े और उसका माल जोरों के साथ बिके। इस मुनाफे का छोटा-सा हिस्सा देता है गंगाप्रसाद ज्वाइंट मजिस्ट्रेट को ताकि लक्ष्मीचन्द जो लूट-खसोट, बेईमानी करता है उसके बारे में सरकारी कर्मचारी आँखें बन्द कर लें। रुपया इस युग की सबसे बड़ी कमजोरी है।

देश के साम्प्रदायिक झगड़े और स्वदेशी आन्दोलन की नब्ज लेखक ने बड़ी सूक्ष्मता से पहचानी है। हिन्दू-मुसलिम साम्प्रदायिक झगड़े किस प्रकार व्यक्तिगत स्तर पर उतर आये, अंग्रेजों ने किस प्रकार उसे प्रोत्साहन दिया इन सबकी यथार्थ झाँकी हमें यहाँ देखने को मिलती है। स्वदेशी-आन्दोलन किन कारणों से कभी तो जोर पकड़ लेता था और कभी धीमा पड़ जाता था—इसकी सफलता और असफलता के मूल में कौनसी कमजोरियाँ थीं—इसे वर्मा जी की सूक्ष्म दृष्टि ने पहचाना है। लेखक ने यह सब पात्रों के वार्तालाप तथा वाद विवाद के माध्यम से अभिव्यक्त किया है। तीसरे खण्ड का आरम्भ देश की बदलती हुई राजनैतिक स्थिति के परिचय से हुआ है जो वार्तालाप के रूप में प्रस्तुत किया

गया है। एक पात्र इस बात की सूचना देता है कि 'अब हम पूर्णरूप से गुलाम हो गये। इग्लैंड का बादशाह दिल्ली में अपना दरबार करने आ रहा है हिन्दुस्तान के राजे महाराजे अपना सिर झुकाएँगे, उसको नजरें देंगे उसका आधिपत्य स्वीकार करेंगे।

इसके पश्चात् ज्ञानप्रकाश गंगाप्रसाद तथा मिस्टर प्रिंसिपल के वार्तालाप के माध्यम से उभर उठते हुए स्वदेशी-आन्दोलन के रूप से हमारा परिचय कराता है। ब्रिटिश सरकार को सहयोग मिला स्वयं भारतीयों से बुद्धिजीवी मध्यवर्ग और जमींदारों से। क्योंकि अंग्रेजों ने अपने स्वार्थ के साथ इनका भी स्वार्थ बाँध दिया था। स्वदेशी-आन्दोलन पनपता तो किस प्रकार? माना कि सिख पंजाबियों के बल पर पहले महायुद्ध की जीत अंग्रेजों के हाथ लगी। किन्तु जालियाँवाला बाग के हत्याकाण्ड में ये ही लोग भेड़ बकरियों की तरह मार गये। देश से बाहर जो लोग शेर बने रहे वे अपने ही देश में बकरी कैसे बन गये? इसके मूल में कई कारण थे। एक ओर तो इनके पास हथियार नहीं थे दूसरी ओर हिन्दू-मुसलमान भेद के कारण इनमें आपसी एकता का अभाव रहा। ये निहत्थे लोग ईंट पत्थरों के बल पर किस प्रकार गोलियों की बौछार का मुकाबला कर सकते थे। किन्तु जहाँ हिन्दुस्तान में एकता आयी बुद्धिजीवियों ने विदेशी सरकार को सहयोग देना बन्द कर दिया। वहीं इस स्वतंत्रता संग्राम ने जोर पकड़ लिया। गंगाप्रसाद के पुत्र नवलकिशोर के आते आते हम स्वदेशी आन्दोलन का यह रूप दिखने लगता है। असहयोग आन्दोलन की बड़ी गहरी झाँकी हम भूले बिसरे चित्र में देखने को मिलती है। विदेशी माल की होली सत्याग्रह आन्दोलन स्त्रियों का उसमें सहयोग देने का उत्साह आदि हमारे सामने गत भारत के भूले बिसरे दिन को फिर से साकार कर देता है।

इस प्रकार भूले बिसरे चित्र महाकाव्य की कथा सामग्री वाली विशालता चित्रण की गहनता और चरित्र निरूपण की गरिमा लिए हुए हैं। उसे हम एपिक इन प्रोज (Epic in Prose) की संज्ञा दे सकते हैं। नायक के रूप में इसमें कोई एक नायक नहीं है यद्यपि ज्वालाप्रसाद आरम्भ से अन्त तक वर्तमान रहता है। कथा संचालन में उसका हाथ केवल दूसरे खण्ड तक रहता है। तीसरे और चौथे खण्ड में गंगाप्रसाद अपने पिता से अपने हाथ में कथा सूत्र ले लेता है और फिर उसी के चारों ओर सम्पूर्ण कथा घूमती है। अंतिम खण्ड में यद्यपि ज्वालाप्रसाद तथा गंगाप्रसाद दोनों ही वर्तमान हैं किन्तु गंगाप्रसाद के पुत्र नवल की स्वेच्छा से परिचालित गतिविधियाँ ही इस खण्ड की कथा का निर्माण करती हैं। ज्वालाप्रसाद चाहते हुए भी नवल के कार्यक्रम में कोई परिवर्तन नहीं ला

में अनावश्यक कथा विस्तार, अप्रमुख और प्रासंगिक कथा एवं घटनाओं के विवाद की बात आप-ही-आप समाप्त हो जाती है। उपन्यास के एक-एक पात्र छोटी से छोटी घटना और प्रसंग का अपना महत्त्व है। प्रत्येक समाज के किसी न किसी अंग से हमारा परिचय कराता है। उपन्यास का आरम्भ जिस प्रसंग से होता है वह केवल मुंशी शिवलाल का झूठे इस्तगासे लिखकर नाबिनाराजन से सम्बन्धित नहीं है। इसमें भी ठाकुर और बनिये का वही संघर्ष दिखलायी पड़ता है, जो ठाकुर बरजोर सिंह और प्रभुदयाल में आगे चलकर हुआ है। विविधता प्रस्तुत करने के निमित्त लेखक ने एक ओर नीचे स्तर के ठाकुर और बनिए की लड़ाई दिखलायी है और दूसरी ओर ऊँचे स्तर के ठाकुर और बनिए की। दंभ और अभिमान—इन दोनों स्तर के लोगों में है। मुंशी शिवलाल जब इस्तगासा में झूठ लिख देता है कि मुसम्मी भैरूलाल ने फिदवी की बुरी तरह मरम्मत की और कुन्नी बनाई तो ठाकुर मुरारसिंह भड़क उठता है "यू का अनाप-सनाप लिख दान्हेव मुन्सी जी? ऊ सार बनिया की का मजाल कि हम ठाँय के पटकी और हमार कुन्नी बनाए। हम तुमका बतावा ना कि हम जो उनिका ठाँय के पटका तो उनेर हाथ टूटिगा। घर में पड़ा कराह रहा है।'

मुंशी रामसहाय के यहाँ का ब्राह्मणों और चमारों वाला कांड एक ओर ब्राह्मणों के थोथे अभिमान की अभिव्यक्ति करता है तो दूसरी ओर तत्कालीन भारतीय समाज में फैले अंधविश्वास का बोध कराता है। इसी प्रकार छिनकी और उसके परिवार का चित्रण लेखक ने भारतीय समाज के एक महत्त्वपूर्ण अंग निम्नवर्ग का चित्रण करने के निमित्त किया है। किस प्रकार यह वर्ग अपने मालिकों के प्रति वफादार हुआ करता था और मालिक के परिवार में उनका क्या महत्त्वपूर्ण स्थान था—छिनकी, घसीटे और भीखू के माध्यम से लेखक ने इससे हमारा परिचय कराया है। त्रिवेणी संगम पर छिनकी और मुंशी शिवलाल की छुआछूत वाली घटना में समाज में फैले तत्सम्बन्धी अंधविश्वास को प्रकट होने का अवसर मिला है।

जहाँ तक गंगाप्रसाद और उससे सम्बन्धित इतिवृत्त का प्रश्न है, वह गंगाप्रसाद के चारों ओर ही घूमा है। किन्तु उन कथानक की सृष्टि करने में लेखक का उद्देश्य गंगाप्रसाद के व्यक्तित्व का चित्रण करना उतना अधिक नहीं है जितना भारतीय समाज की उखड़ती और गिरती परंपरा तथा वैभव के अवशेष दिखलाने से है। राजघराना के मिटते हुए अवशेष लाल रिपुदमनसिंह महाराजा और महारानी विजयपुर की विलासिता, कामुकता और षड्यन्त्र का चित्रण साभिप्राय है, यद्यपि इसका विस्तार आवश्यकता से कुछ अधिक ही हो

गया है। लाल रिपुमनसिंह के माध्यम से लेखक ने राजघरानों के उठते हुए प्रबुद्ध नवयुवक का अंकन किया है। अपने वर्ग की बुराइयों से वह परिचित है। गंगाप्रसाद के सामने अपने वर्ग की यथार्थ स्थिति और मनोविकृति का उद्घाटन करते हुए वह कहता है— परिस्थितियाँ मनुष्य को बनाती बिगाड़ती हैं। यह ऐश्वर्य और भोग विलास का जीवन जहाँ कोई चिन्ता नहीं कोई श्रम नहीं कोई जिम्मेदारी नहीं—इस जीवन में मनुष्य बड़ी जल्दी बहकता है। जहाँ धन है वहाँ धन ही देवता बन जाया करता है क्योंकि धन में शक्ति केंद्रित हो चुकी है। यह दुर्भाग्य है बाबू गंगाप्रसाद कि मैं ऐसे कुल में पैदा हुआ जहाँ चिन्ताओं के अभाव में विकृतियों का साम्राज्य है।

साम्प्रदायिक झगड़ों से सम्बन्धित इतिवृत्त के माध्यम से तत्सम्बन्धी झगड़ों का विकृत रूप हमारे सामने यथार्थ बनकर आया है। स्वामी जटिलानन्द अल्लामा बहशी फरहतुल्ला असीरजा और मनका का निर्माण कर लेखक ने जिस कथानक की सृष्टि की है उससे तद्युगीन साम्प्रदायिक झगड़े गहरे रंग के साथ चित्रित हुए हैं। इसके अतिरिक्त इनसे गंगाप्रसाद के जीवन और पद का सीधा संघर्ष हुआ है। मलका तथा सत्यव्रत शर्मा वाले इतिवृत्त का निर्माण भी इसी उद्देश्य से हुआ है।

ज्ञान प्रकाश वाले इतिवृत्त के साथ समूचा स्वतन्त्रता-आन्दोलन चलता है। इसके माध्यम से स्वदेशी आन्दोलन की हलचल और गतिविधि मुखर हुई है। ज्ञानप्रकाश की गतिविधियों की क्रिया प्रतिक्रिया गंगाप्रसाद नवलकिशोर और विद्या पर बड़े तीव्र रूप में होती है। गंगाप्रसाद तो केवल एक उत्तेजना अनुभव कर रह जाता है किंतु नवल और विद्या के ऊपर इसका इतना अधिक प्रभाव पड़ता है कि उससे उनकी जीवन धारा ही बदल जाती है।

जहाँ तक प्रेमशंकर वाले इतिवृत्त का प्रश्न है उसके माध्यम से लेखक ने क्रान्तिकारियों की गतिविधियों की एक क्षीण रूपरेखा प्रस्तुत की है। विन्देश्वरी प्रसाद सिद्धेश्वरी तथा बाबू कामता नाथ के द्वारा लेखक ने समाज के स्वार्थी और लालची समुदाय से हमारा परिचय कराया है। इनके सामने भावना का कोई मूल्य नहीं है। बेईमानी शठ और फरेब इनके स्वभाव के अंग बन चुके हैं।

समाज को नायक मानकर लिखे जाने वाले उपन्यास भूले बिसरे चित्र का कथा विस्तार कितना अधिक है यह इसके परिवेश में निहित अनेक पात्रों विविध घटनाओं और प्रसंगों से स्पष्ट हो जाता है। इतनी विपुल कथा सामग्री वाले उपन्यास का वस्तु विन्यास कहीं शिथिल न हो जाए ऐसी संभावना

ग्रन्थ बना रहता है। किन्तु वर्मा जी में विन्यास कथा को बड़ी दक्षता से बांधने की कला प्रारम्भ से ही थी जिसका परिमार्जित रूप हम 'टेढ़े-मेढ़े रास्ते' में देख चुके हैं। फिर भी 'टेढ़े-मेढ़े रास्ते' का इतिवृत्त कहीं-न-कहीं तो सीमित है। 'भूले-बिसरे चित्र' में वह सीमा कहीं नहीं है। समाज की सीमा कहाँ तक है इसका कोई निश्चित रूप रखा हुआ नहीं बना सकते। तो फिर सम्पूर्ण समाज को लेकर लिखे जाने वाले उपन्यास को हम किन्हीं सीमा रेखाओं तक सीमित रखें यह कैसे सम्भव हो सकता है? वर्मा जी के सामने यह प्रश्न निश्चित रूप से रहा होगा। इसलिए उनके मस्तिष्क में उपन्यास की एक पूर्व-निश्चित रूप-रेखा अवश्य रही होगी। अन्यथा उपन्यास का सुसंगठित वस्तु विन्यास सम्भव ही न होता। समाज के किन पहलुओं पर उन्हें प्रकाश डालना है, इसका निर्धारण उन्होंने पहले ही कर लिया होगा। तो क्या स्थितियाँ परिस्थिति और पात्रों का चित्रण किस रूप में और किस क्रम से होगा इसकी भी पूर्व निश्चित योजना उन्होंने बना ली थी? वैसे प्रत्येक लेखक इस प्रकार की धुंधली रूप रेखा अपने मस्तिष्क में बना लेता है और वर्मा जी में तो यह आदत पुरानी है। किन्तु इससे उपन्यास के वस्तु विन्यास में कृत्रिमता आ गयी है या उसका कथा विकास अस्वाभाविक गति से हुआ है ऐसा हम नहीं कह सकते। विशेषतः भूले बिसरे चित्र के सम्बन्ध में तो हम ऐसी धारणा किसी प्रकार नहीं बना पाते। इसके वस्तु-सौष्ठव की सबसे बड़ी विशेषता यही है कि स्थितियाँ परिस्थिति निर्माण और घटनाओं की संयोजना, सभी कुछ स्वाभाविक रूप में और स्वाभाविक गति से हुई है। इसका कारण यह है कि वर्मा जी ने जो कुछ चित्रित किया है वह स्वाभाविक है भारत का यथार्थ झाँकी है। फलतः पाठकों को इस प्रकार का किंचित मात्र आभास नहीं होता कि लेखक कोई पूर्व निश्चित योजना लेकर चला है।

संयोग तथा घटनाओं की नियोजना वर्मा जी ने प्रस्तुत उपन्यास में आवश्यकतानुसार की है। विशेष कर संयोग निर्माण की पूर्व निश्चित योजना का क्षणिक आभास हमें पहले से हो ही जाता है। खण्ड तीन में तो संयोग तथा घटनाएं इतनी अधिक हैं कि उनकी कृत्रिमता पाठकों से छिप नहीं पाती। संयोग वश ट्रेन में लाल रिपुदमनसिंह, राधाकिशन और सन्तो से गंगाप्रसाद की भेंट और फिर बाद में उस भेंट का निकटतम सम्पर्क में बदल जाना सभी कुछ कृत्रिम स्थिति तथा वातावरण की सृष्टि करते हैं। यहाँ पर लेखक का उद्देश्य स्पष्ट रूप में प्रकट हो उठा है जो किसी भाँति प्रशंसनीय नहीं कहा जा सकता। इस प्रकार की कृत्रिमता उपन्यास की अन्य घटनाओं में नहीं पायी जाती है।

गाव के झगडे जमीन्दारो को मरफिते राज घराना का ऐश्वय, स्वदेशी आन्दोलन के क्रियात्मक रूप का चित्रण इतना सजीव एव साकार बनकर आया है कि हम लेखक की चित्रण शली और दृश्य विधान की कला सराहना की दाद देनी पडती है।

कथा की रोचकता भूले बिसरे चित्र का प्राण है। पर कुतूहल तथा उत्सुकता से अधिक उसमे पाठको का भावनात्मक संवेदना उत्पन्न करने वाला तत्व है। उसकी कहानी मे पाठक ऐसा खो जाता है उसकी घटनाओ और स्थिति मे वह इतना घुल मिल जाता है कि उस सब कुछ परिचित और अपने तथा अपने निकटतम पर गुजरता हुआ प्रतीत होता है। लेखक के चित्रण मे गहनता है। इसलिए उससे प्राप्त अनुभूति मे गहराई उत्पन्न हो गयी है। कही-कही तक तथा वाद विवाद के छिटके बिन्दु हमे देखने को मिल जाते हैं किन्तु उससे कथा के धारा प्रवाह मे कोई व्यवधान आया हो ऐसे स्थल हमें देखने को नही मिलते। उनके द्वारा चरित्र और परिस्थितियो को अधिक से अधिक स्पष्ट और सजीव होने का अवसर मिला है। वैसे वर्मा जी के तर्कों मे एक अकाट्य सत्य निहित रहता है। जीवन सत्य के किसी-न किसी पहलू को वह प्रकट करता है। किन्तु चित्रलेखा की भाँति 'भूले बिसरे चित्र' का कथा विकास वादविवाद और तक के माध्यम से नही हुआ। न ही टेढे मेढे रास्ते के पात्रो की भाँति इसके पात्र किसी-न किसी मत और सिद्धान्त को मानने वाले हैं जिससे उनका वाद विवाद बौद्धिक स्तर का बन गया हो। पात्रो के तक व्यावहारिक हैं और उनमें प्रतिदिन का जीवन सत्य प्रकट हुआ है।

रेखा (१९६४) में भूले बिसरे चित्र-सा कथा विस्तार नही है—एक सीमित इतिवृत्त और गिने-चुने पात्रो को लेकर उसका कथा-सङ्गठन हुआ है। उपन्यास मे एक समस्या है और उस समस्या को उभारने के लिए लेखक रोचक कथा का निर्माण करता है। चित्रलेखा और तीन वर्ष की भाँति रेखा की रचना भी काम समस्या को लेकर हुई है। उपन्यास का आरम्भ नायिका रेखा के परिचय से कर जैसे लेखक समस्या से हमारा परिचय कराता है। यह परिचय काफी लम्बा है और उसे हम रेखा और प्रोफेसर प्रभाशंकर के विवाह तक मान सकते हैं। विवाह के पश्चात् कथा का आरम्भ होता है और फिर विकास बडी तीव्र गति से होता चला जाता है। अपनी काम-कुण्ठा को लेकर रेखा अनेक पुरुषो से शारीरिक सम्बन्ध स्थापित करती है। प्रत्येक बार शारीरिक भूख शान्त हो जाने के पश्चात वह पश्चाताप करती है और निश्चय करती है कि वह केवल मात्र अपने प्रोफेसर अपने देवता की होकर रहेगी।

परन्तु प्रत्येक बार वह अपने संकल्प से डिग जाता है। प्रत्येक बार रेखा का एक-सा आचरण एकरसता उत्पन्न करता है। उसमें विविधता नहीं है। किन्तु फिर भी उसमें कुतूहल और रोचकता पर्याप्त [redacted] और ``नारी'' के प्रस्तुतीकरण की मौलिक कला भावनात्मक संवेदना उत्पन्न करने में सफल हुई है।

कथा में धारा प्रवाह है और प्रासंगिक कथाएं नहीं के बराबर हैं। मानवता रत्ना चावला, शीरीं चावला से सम्बन्धित इतिवृत्त भी रेखा की मनोग्रंथि खोलने में सहायक हुए हैं। मानवता के विवाह पर डाक्टर योगेन्द्रनाथ मिश्र रेखा का मनोग्रंथि को चार वाक्यों में ही खोल देते हैं आपकी सखी मानवती वही गलती कर रही हैं जो आपने दो-तीन साल पहले की थी और इसलिए मानवती के प्रति आपके अन्दर एक संवेदना है लेकिन उस संवेदना के साथ एक प्रकार की खुशी भी है आपके अन्दर। रेखा का चेतन मन जिस सत्य को स्वीकार नहीं करता, उसका मनोविश्लेषण डाक्टर योगेन्द्रनाथ कुछ ही शब्दों में कर देते हैं। इसी भाँति शीरीं चावला की सगाई वाला इतिवृत्त सोद्देश्य है। इस सारे उत्सव में रेखा की मनःस्थिति कुछ विचित्र-सी रहती है। समवयस्का का विवाह उसके मन में ईर्ष्या उत्पन्न कर देता है क्योंकि स्वयं वह इससे वंचित रही है। बाद में जब वह निरंजन को स्वयं पा जाती है, तो उसे असीम आनन्द आता है 'और रेखा कितनी प्रसन्न थी। उसने निरंजन को रत्ना से छीन लिया था हमेशा के लिए वह जानती थी। उसने शीरीं की जान नहीं बचाई शीरीं के लिए वह निरंजन को रत्ना के जाल से निकाल लाई। लेकिन इस सब में उसकी भावना भी कुछ है उसके शरीर की भूख का ही इस सब में प्रमुख स्थान है—रेखा अपने उन्माद में इसका अनुभव नहीं कर पा रही थी।

'रेखा' वर्मा जी की सोद्देश्य रचना है, किन्तु उसके कथानक और चरित्रों में किसी भाँति की कृत्रिमता नहीं आने पायी है। कथा अपने स्वाभाविक ढङ्ग से अग्रसर होती है। घटनाओं की स्थिति इसमें नहीं के बराबर है। वर्मा जी ने उपन्यास-लेखन के अपने जीवन में सम्भवतः यह अनुभव किया कि घटनाएं चमत्कार उत्पन्न करने में भले ही सहायक हों भावनात्मक संवेदना वाला अंश उनमें बहुत कम होता है। घटनाओं के स्थान पर रेखा में संयोग अधिक है और इन संयोगों की नियोजना की है लेखक ने नवीन पात्रों को प्रकाश में लाकर। जब कभी कथा प्रवाह अवरुद्ध हो जाता है एक पुरुष से रेखा की शारीरिक भूख शान्त हो जाती है और प्रायश्चित्त स्वरूप वह उस व्यक्ति से विच्छेद कर प्रभाशंकर की सेवा में लीन हो जाती है तो लेखक एक

नये पात्र को उसके जीवन में लाकर कथा प्रवाह को गति प्रदान करता है। सबसे पहले उसके जीवन में सोमेश्वर आता है फिर मसूरी में अचानक निरजन से उसका परिचय हो जाता है। उसके साथ उसका शारीरिक सम्बन्ध रहता है। किन्तु जब प्रोफेसर को इसका पता लग जाता है तो रेखा उनसे क्षमा-याचना कर सयम का जीवन बिताने लगती है। अब कथानक की गति एकदम धीमी हो जाती है क्योंकि रेखा के जीवन में सूनापन और उदासी के अतिरिक्त कुछ नही रहता। रेखा के पिछले तीन-चार महीने बड़े सयम के साथ बीते। इस सयम में उसे सुख मिला सतोष मिला लेकिन सुख और सतोष में भी तो एकरसता है जो ऊबा देने वाली होती है। यह एकरसता अब उसके प्राणों को अखरने लगी थी। यह एकरसता धीरे धीरे रेखा में एक तरह की वितृष्णा का रूप ग्रहण कर रही थी। निस्तब्ध और शान्त वातावरण का अस्तित्व जैसे उसे काटने को दौड़ रहा था। और इस एकरसता को दूर करने के उद्देश्य से जब लेखक शशिकान्त से रेखा का परिचय कराता है तो फिर से रेखा में शारीरिक भूख जाग उठती है। फिर तो इसके बाद उसके जीवन में और भी अनेक पुरुष आते हैं।

इन आकस्मिक सयोगों के साथ मानसिक सघर्ष को जोड़कर लेखक अपने चित्रण में स्वाभाविकता लाया है। उपन्यास में कथा प्रवाह की तीव्रतम गति प्रभाशकर के बीमार पड़ जाने से आती है क्योंकि तभी रेखा को प्रोफेसर की निरीहता और बेबसी का अनुभव होता है यह मनुष्य कितना असहाय है कितना निरीह है कितना दयनीय है। रेखा को ऐसा लगा प्रभाशकर का सारा अहम् उनकी समस्त हिंसा—ये सब नियति के एक झटके में टूट गये हैं। उसके सामने एक असमर्थ और टूटा हुआ आदमी पड़ा था। और इस ममत्व के कारण वह प्रोफेसर को छोड़कर नहीं जा पाती। बीच-बीच में जब कभी वह प्रोफेसर की कटुता को नहीं सह पाती तो फिर से उसमें मानसिक सघर्ष होने लगता है। फलत प्रोफेसर की देख भाल के लिए दवकी की व्यवस्था कर वह योगेन्द्र नाथ के साथ जाने का निश्चय कर लेती है। इस क्षण उसका हृदय-आन्दोलन बड़ा तीव्र हो उठा है। प्रभाशकर की मनोव्यथा उससे सहन नहीं हो पाती। प्रभाशकर जब कहते हैं मैं बुरी तरह टूट गया हूँ रेखा! फिर से बन सकूँगा इसकी कोई आशा नहीं। ... मैं अपनी निराशाओं और असफलताओं से निराश हो गया हूँ और अपने ऊपर से अपना अधिकार खो बैठा हूँ। तुम मेरी बातों का बुरा न मानना। मेरे कोई नहीं है एक तुम्हें छोड़कर एक तुम्हारा ही सहारा है मुझे।

ता रेखा को अनुभव हुआ था कि एक टूटा हुआ आत्मा उसके सामने लगा हुआ है—कितना निरीह और कितना दयनीय। इस आत्मी को मृत्यु के मुख में और बेसहारा छोड़कर वह जा रही है। वह प्रभाशंकर का ही नहीं अपना आत्मा की हत्या करने पर तुल गयी। फलत वह अपने संकल्प पर दृढ़ नहीं रह पाती। वह योगेन्द्रनाथ से साथ जाने के लिए मना कर देती है। किन्तु फिर प्रभाशंकर का आत्मकेंद्रित और स्वार्थी के रूप में देख, वह समस्त साहस के साथ योगेन्द्रनाथ के साथ जाने के लिए निकल पड़ती है। पर नियति उसके साथ खिलवाड़ करती है और वह नहीं जाने पाती। योगेन्द्रनाथ चला जाता है उसे छोड़कर प्रभाशंकर चले जाते हैं उसे छोड़कर और मानसिक सतुलन भी उसका साथ छोड़ देता है। वह पागल हो उठती है। इस प्रकार उपन्यास की चरम सीमा बड़े भावनात्मक बिन्दु पर आता है। यही उपन्यास का सबसे आकर्षक स्थल है। इस प्रकार 'रेखा' का कथा मनुष्य उतना महत्त्वपूर्ण नहीं है जितना कथा का प्रस्तुतीकरण। विषय और अभिव्यक्ति दोनों ही दृष्टि से रेखा एक मौलिक कृति है।

❂

द्वितीय खंड

• प्रमुख उपन्यास

चित्रलेखा

'चित्रलेखा' वर्मा जी का पहला सफल उपन्यास है। इससे पूर्व 'पतन' में उन्होंने उपन्यास-लेखन में प्रवेश अवश्य किया था, पर स्वयं वर्मा जी उसे एक प्रयोग मात्र मानते हैं और अपना पहला उपन्यास 'चित्रलेखा' को ही मानते हैं। 'चित्रलेखा' से पूर्व वर्मा जी कवि की हैसियत से ही जाने-माने जाते थे। वे छायावाद के प्रमुख प्रवर्तकों में से थे। पर गद्य के विकास और पद्य के ह्रास ने उन्हें उपन्यास लिखने को प्रेरित किया। इसके अतिरिक्त अर्थजनित जीवन संघर्ष के फलस्वरूप उन्हें जीविकोपार्जन की चिन्ता ने भी घेर लिया और उन्हें यह अनुभव हुआ कि कविता उनकी आजीविका की समस्या नहीं सुलझा सकती।[1] परिस्थितियों से विवश होकर या अपनी स्वाभाविक प्रवृत्ति जैसे भी हो वर्मा जी ने 'चित्रलेखा' के साथ कथा-क्षेत्र में जो प्रवेश किया, तो फिर वे हमेशा के लिए इसी क्षेत्र के हो गये। और 'चित्रलेखा' को पाकर हिन्दी साहित्य-समाज ने अनुभव किया कि कवि वर्मा के अन्दर एक कथाकार सोया पड़ा था, जो उनकी तरुणावस्था के साथ एकाएक जाग उठा।

पर छायावाद का प्रमुख कवि कविता का कितना मोह छोड़ पाता या छोड़ पाया। यह विवाद रहित है कि उनकी 'चित्रलेखा' उपन्यास होते हुए भी गद्य में एक छायावादी कविता ही है। 'चित्रलेखा' का प्रत्येक अवयव छायावादी कविता के आवरण से ढँका है। भाषा शैली, वर्णन, वार्तालाप, तर्क आदि तो कवित्वमय हैं ही पात्र, घटनाओं और परिस्थिति को ग्रहण करने की उनकी अनुभूति तक कवित्वमय और भावपूर्ण है। किसी बात को प्रस्तुत करने की शैली किसी बात को कहने का ढंग हमें एक गद्यकार से नहीं कवि से परिचित कराता है

धड़कते हुए मदिरा के पात्र को चित्रलेखा के मुख से लगाते हुए बीजगुप्त ने कहा—'चित्रलेखा, जानती हो जीवन का सुख क्या है?'

---

१ 'रंगों से मोह' की प्रस्तावना

चित्रलेखा की अधखुली आँखों में मतवालापन था और उसके अरुण कपोलों में उल्लास था। यौवन की उमंग में सौन्दर्य विहार कर रहा था। आलिंगनपाश में वासना हँस रही थी। चित्रलेखा ने मदिरा का घूट पिया—इसके बाद मुस्करायी। एक क्षण के लिए उसके अधरों ने बीजगुप्त के अधरों से मौन भाषा में कुछ बात की फिर धीरे से उसने उत्तर दिया—मस्ती।

पात्रों के वार्तालाप और वाद विवाद तो कवित्वमय भाषा में हैं ही भावों का प्रस्तुतीकरण भी काव्यमय है। कुमारगिरि की कुटी में बीजगुप्त और चित्रलेखा अतिथि के रूप में आकर विश्राम करते हैं तो कुमारगिरि स्त्री को इसलिए निर्विवादता है क्योंकि उसके अनुसार स्त्री अंधकार है मोह है माया है और वासना है। चित्रलेखा कुमारगिरि के इन विचारों से तिलमिला उठती है और इसका उत्तर वह ऐसी तीखी पर कवित्वमय भाषा में देती है कि योगी तिलमिला उठता है।

उसने कुमारगिरि के वाक्य समाप्त होने पर उनके सामने अपना मस्तक नमाकर कहा—प्रकाश पर लुब्ध पतंग को अंधकार का प्रणाम है।

वाक्य तीर की तरह पैना तथा मातक था। स्वर संगीत की भाँति कोमल सौंदय में कवित्व था वासना की मस्ती में अहंकार।

चित्रलेखा की वस्तु उसे उपन्यास का रूप प्रदान करती है तो उसकी अभिव्यक्ति उसे कविता का। उसकी एक एक पंक्ति में कवि बोलता है

महासागर के शान्त वक्षस्थल पर भयानक बवण्डर उठने के पहले एक घोर निस्तब्धता छा जाती है। उस समय वायुमंडल उत्तेजित हो उठता है और सारा वायुमंडल भावी क्रांति की आशंका से शून्य-सा हो जाता है।

और उसके बाद ? वायु के प्रचण्ड झोंके—लहरों का ताण्डव नर्तन तथा विप्लव गायन।

आकाश के वक्षस्थल पर ज्वालामुखी के फटने के पहले एक घोर दबी हुई अशान्ति फैल जाती है उसका नीला रंग धूमिल हो जाता है और विनाश के भय से सारा आकाश मण्डल वायु से रिक्त हो जाता है।

और उसके बाद ? अग्नि के शोले और विनाश।

स्पष्टतया चित्रलेखा में वर्मा जी अपनी कवि प्रकृति नहीं छोड़ पाये। छोड़ तो वे आज तक नहीं पाये हैं पर उस समय उन पर इसका प्रभाव अधिक ही था। तब तक की कविता के माध्यम से व्यक्त करने का अपना ढंग उन्होंने

अपना लिया था। 'चित्रलेखा' के लेखन से कुछ ही समय पूर्व उन्होंने वकालत पास की थी। पर व्यवसाय के क्षेत्र में वो व इसका उपयोग नहीं कर पाये, साहित्य में इससे उन्होंने तर्क के माध्यम से किसी बात को कहने विषय को प्रस्तुत करने की अपनी एक शैली बना ली। तर्क के माध्यम से लेखक सच झूठ अच्छे बुरे मत का सशक्त प्रतिपादन करता है। इससे एक प्रकार का चमत्कार उत्पन्न हो जाता है। झूठ को भी इस तरह प्रतिपादित करना कि वह सच लगे—तर्क की विशुद्ध परिभाषा है। 'चित्रलेखा' में इस प्रकार का चमत्कार जगह-जगह है। पर इसमें तर्क की यह प्रक्रिया ध्वंसात्मक न होकर रचनात्मक है। समाज विरोधी तत्वों का प्रतिपादन लेखक तर्क द्वारा नहीं करता। तर्क के द्वारा वह केवल एक चमत्कार उत्पन्न करता है, और उस चमत्कार से पाठक चमत्कृत हो भी जाता है। बीजगुप्त और चित्रलेखा का एक वार्तालाप प्रस्तुत है

बीजगुप्त ने धीरे से कहा—आज हम लोगों के परिचय के बाद पहला अवसर उपस्थित हुआ है, जब चित्रलेखा बीजगुप्त से अपनी बात छिपा रही है। चित्रलेखा का हृदय बदल गया है, इसका बीजगुप्त को कुछ क्षीण आभास हो रहा है।

इस परिवर्तनशील संसार में किसी भी चीज का बदला जाना अस्वाभाविक नहीं है।

बीजगुप्त स्तब्ध-सा रह गया। इस उत्तर के लिए वह तैयार न था। क्या कहा इस परिवर्तनशील संसार में किसी भी चीज का बदला जाना अस्वाभाविक नहीं है? तो फिर यह समझ लूँ कि चित्रलेखा का प्रेम बदल सकता है?

नहीं बीजगुप्त का अनुमान मिथ्या है। चित्रलेखा का प्रेम सागर की भाँति गम्भीर है, उसका बदलना असम्भव-सा है पर साथ ही मैं यह मानती हूँ और उसको ठीक भी समझती हूँ कि प्रेम परिवर्तनशील है। प्रकृति का नियम परिवर्तन है प्रेम उसी प्रकृति का एक भाव है। प्रकृति का नियम प्रेम पर भी लागू हो सकता है।

यह होते हुए भी चित्रलेखा ने जो कुछ कहा, वह किसी अंश तक सत्य था—इसको बीजगुप्त ने अनुभव किया। बात सत्य थी, कहने का अवसर उपयुक्त था और बात का प्रसंग भी समयोचित था।

चित्रलेखा तुम भूलती हो। प्रेम का सम्बन्ध आत्मा से है, प्रकृति से नहीं। जिस वस्तु का प्रकृति से सम्बन्ध है वह वासना है, क्योंकि वासना का सम्बन्ध शरीर से है। वासना का लक्ष्य वह शरीर है, जिस पर प्रकृति ने कृपा करके

उसका मन्दिर बनाया है। प्रेम आत्मा से होता है शरीर से नहीं। परिवर्तन प्रकृति का नियम है आत्मा का नहीं। आत्मा का सम्बन्ध अमर है।

चित्रलेखा हम पत्नी— आत्मा का सम्बन्ध अमर है। कभी विचित्र बात कह रहे हो बीजगुप्त। जो जन्म लेता है वह मरता है यदि कोई अमर है तो अजन्मा भी है। जहाँ सृष्टि है वहाँ प्रलय भी रहेगा। आत्मा अजन्मा है इस लिए अमर है पर प्रेम अजन्मा नहीं। किसी व्यक्ति से प्रेम होता है तो उस स्थान पर प्रेम जन्म लेता है। सम्बन्ध होना ही उस सम्बन्ध का जन्म लेना है। वह सम्बन्ध अनन्त नहीं है कभी-न-कभी उस सम्बन्ध का अन्त होगा ही। प्रेम और वासना में भेद केवल इतना ही है कि वासना पागलपन है जो क्षणिक है और इसीलिए वासना पागलपन के साथ ही दूर हो जाती है और प्रेम गम्भीर है। उसका अस्तित्व शीघ्र नहीं मिटता। आत्मा का सम्बन्ध अनादि नहीं है बीजगुप्त।

बीजगुप्त ने देखा कि चित्रलेखा की तर्कना शक्ति बहुत बढ़ गयी है। बीजगुप्त ही चित्रलेखा के तर्कों से चमत्कृत नहीं होता पाठक भी उससे चमत्कृत हो उठता है। और इस प्रकार के चमत्कार के कारण चित्रलेखा में एक सशक्त जीवन दर्शन निहित है। कवित्व तर्क और दर्शन के संयुक्त चमत्कार ने चित्रलेखा में एक अनोखा भावनात्मक वातावरण पैदा कर दिया है। यही चित्रलेखा की सबसे बड़ी विशेषता है।

चित्रलेखा स्वच्छन्द प्रकृति के तरुण कवि की रंगीन कल्पना की कलात्मक अभिव्यक्ति है पर उसमें एक सशक्त जीवन दर्शन भी निहित है। यह जीवन दर्शन उन्हें किसी अनुभव या अध्ययन मनन से प्राप्त नहीं हुआ वरन् उसे संस्कार के रूप में प्राप्त हुआ है। अनुभूति से सामान्य भारतीय उसे पा जाता है या दूसरे शब्दों में उसे यह संस्कार के रूप में मिलता है। हिन्दू-परम्परा में निवृत्ति और प्रवृत्ति मार्ग दर्शन की दो धाराओं के रूप में मिलता है। निवृत्ति तपस्या साधना और सन्यास पर बल देती है तो प्रवृत्ति कर्म पर। प्रवृत्ति मार्ग की भी दो धाराएं हैं—एक गीता का कर्मवाद और दूसरा चार्वाक का भोगवाद। चित्रलेखा में लेखक का जीवन-दर्शन जहाँ कर्म पर बल देता है वहाँ भोग के प्रति भी उसकी अपार आस्था है। किन्तु वह चार्वाक के भोगवाद से सर्वथा भिन्न है। चार्वाक के भोगवाद में अच्छे बुरे सत्-असत् का कोई भेद नहीं है। वह जीवन के भौतिक सुखों पर बल देता है। वर्मा जी भौतिक सुखों का महत्त्व तो देते हैं पर वे उनके उदात्तीकरण को भी आवश्यक बतलाते हैं। इस जीवन दर्शन का प्रतिपादन लेखक ने बीजगुप्त के माध्यम से किया है। वह जीवन का भरपूर आनन्द उठाता है। वह

जीवन जाता है, उससे भागता नहीं है। वह पूर्णतः भोगवादी है। लेखक के शब्दों में 'बीजगुप्त भोगी है, उसके हृदय में यौवन की उमंग है और आँखों में मादकता की लाली। उसकी अट्टालिकाओं में भोग-विलास नाचा करते हैं, रत्न-जटित मदिरा के पात्रों में ही उसके जीवन का सारा सुख है, वैभव और उल्लास की तरंगों में वह केलि करता है, ऐश्वर्य की उसके पास कमी नहीं है। उसमें सौंदर्य है और उसके हृदय में संसार की समस्त वासनाओं का निवास। उसके द्वार पर मातंग झूमा करते हैं, उसके भवन में सौन्दर्य के मद से मतवाली नर्तकियों का नृत्य हुआ करता है। ईश्वर पर उसे विश्वास नहीं, शायद उसने कभी ईश्वर के विषय में सोचा तक नहीं है। और स्वर्ग तथा नरक की उसे कोई चिन्ता नहीं। आमोद प्रमोद ही उसके जीवन का साधन है और लक्ष्य भी है।' स्पष्टतया बीजगुप्त भोगी है, पर पतित नहीं है। उसने जीवन से सहयोग कर लिया है, अपनी भावना का उदात्तीकरण कर लिया है।

नियतिवाद वर्मा जी के जीवन-दर्शन का एक भाग है। पर उनका नियतिवाद परिस्थितियों का दास होना नहीं सिखाता, उसमें कर्म का विशेष महत्त्व है। 'मनुष्य स्वतन्त्र विचारवाला प्राणी होते हुए भी परिस्थितियों का दास है। मनुष्य की विजय वहीं सम्भव है, जहाँ वह परिस्थितियों के चक्र में पड़कर उसी के साथ चक्कर न खाए, वरन् अपने कर्तव्य-अकर्तव्य का विचार रखते हुए उस पर विजय पाये।

चित्रलेखा के माध्यम से वर्माजी ने प्रेम के क्षेत्र में भी एक नवीन मान्यता स्थापित की है। इस क्षेत्र में उन्होंने व्यक्ति-स्वातन्त्र्य की माँग की है। बीजगुप्त के माध्यम से उन्होंने स्वच्छन्द प्रेम की महत्ता का प्रतिपादन किया है। बीजगुप्त स्वच्छन्द प्रेम में विश्वास करता है और वह इसे विवाह से कम पवित्र नहीं मानता। 'प्रेम एक-दूसरे में भेदभाव नहीं देखता, प्रेम दो हृदयों की अभिलाषा का द्योतक है।' इसलिए समाज की दृष्टि में अविवाहित होते हुए भी वह अपने को विवाहित समझता है।

जहाँ तक 'चित्रलेखा' के कला-पक्ष का सम्बन्ध है, इसकी कथा परम्परागत त्रिकोण बनाकर चलती है। एक युवती और उससे प्रेम करने वाले दो युवक। पर इसका निरूपण, प्रस्तुतीकरण और अभिव्यक्ति इसे नवीनता प्रदान करती है। उपन्यास एक अत्यन्त रोमांटिक कथानक को लेकर चलता है और इसकी अभिव्यक्ति में कमनीयता और अनोखा माधुर्य है, जो पाठक को बरबस स्वप्निल वातावरण में ला देता है। चित्रलेखा तरुण कवि की आत्मा का संगीत है। आत्मा का संगीत ही नहीं, चित्रलेखा में जीवन की कविता है। जीवन का

माधुर्य और प्राणों का उल्लास है जीने की प्रेरणा है। अपनी कवि-मय कल्पना को साकार करने के लिए ही लेखक ने वर्तमान समाज के कठोर यथार्थ से बचकर ऐतिहासिक पृष्ठभूमि का आँचल पकड़ा है। यहां चित्रलेखा की अद्भुत सफलता दिखती है। एक रोमानी वातावरण की सृष्टि कर लेखक ने वर्तमान समस्या को वर्तमान मनोविज्ञान के परिप्रेक्ष्य में वर्तमान तर्कों के द्वारा युगानुरूप ढंग से सुलझाया है। अतः नाममात्र की ऐतिहासिकता के अतिरिक्त चित्रलेखा में सभी कुछ वर्तमान का है। ऐतिहासिक पृष्ठभूमि अपनाने से लेखक काल्पनिक पात्रों और काल्पनिक परिस्थितियों को यथार्थ रूप देकर उनमें मनमाने जीवन दर्शन का प्रतिपादन कर सका है। चित्रलेखा यथार्थ भूमि पर नहीं आदर्श की भूमि पर चलती है और इसका कारण कदाचित् वर्माजी का जीवन-दर्शन है। शाश्वत समस्या को लेकर वर्तमान की पृष्ठभूमि कुछ अधिक उपयुक्त नहीं बैठती। उसमें लेखक स्वतंत्र नहीं रह पाता। पर ऐतिहासिक पीठिका में लेखक सब कुछ कहने और चित्रण करने के लिए स्वतंत्र हो जाता है।

जहाँ तक औपन्यासिकता का सम्बन्ध है चित्रलेखा की रचना वर्मा जी ने सोद्देश्य की है। फलतः इसका इतिवृत्त कथा संगठन घटनाओं का संगठन एक पूर्व निश्चित योजना द्वारा निर्मित है। उपन्यासकार इसलिए एक रोचक कहानी की सृष्टि करता है जिससे वह पाप-पुण्य जैसी पुरातन मान्यता का निराकरण कर अपना जीवन दर्शन प्रस्तुत कर सके। फलतः अपने जीवन दर्शन की सफलता और विपरीत जीवन दर्शन की असफलता दिखाने का उसका पूर्व निश्चय उससे इस उद्देश्य के अनुरूप कथानक की रचना कराता है। निश्चित स्थितियों में रखकर वह उन चरित्रों का तो उत्थान दिखाता है जो उसके जीवन दर्शन का समर्थन करते हैं और उन चरित्रों का पतन दिखाता है जिस जीवन दर्शन में वह अनास्था रखता है। लेखक के मस्तिष्क में रचना प्रक्रिया इसी रूप में रही होगी। ऐसी अवस्था में उपन्यास के वस्तु विन्यास और चरित्रांकन में कृत्रिमता आने की पूरी पूरी संभावना थी। किन्तु चित्रलेखा का कथा प्रवाह और चरित्र चित्रण स्वाभाविक गति से हुआ है और उसमें किसी प्रकार की कृत्रिमता नहीं आने पायी है। उपन्यास का संपूर्ण कथा विकास भाव विकास के माध्यम से हुआ है। इस सफलता का कारण यह है कि वर्मा जी ने चित्रलेखा में चरित्र और परिस्थितियों (परिस्थितियाँ जो वस्तुतः घटना द्वारा सम्पन्न की गयी हैं) को एक दूसरे से उलझा कर उनकी क्रिया प्रतिक्रिया उत्पन्न की है। घटनाओं का अपने में कोई स्वतंत्र अस्तित्व नहीं है, वे किसी पात्र की चारित्रिक विशेषता का उद्घाटन करने का

माध्यम बना है। यह सब ठीक है किन्तु प्रस्तुत उपन्यास की कुछ आकस्मिक घटनाएं कम अस्वाभाविक भी लगती हैं। जंगल में रास्ता भूल जाने पर कुमार-गिरि और चित्रलेखा की भेंट अस्वाभाविक नहीं है किन्तु अपने उद्देश्य की पूर्ति के निमित्त जब लेखक बार बार इन दोनों के पारस्परिक सम्पर्क के अवसर के लिए महाराज चन्द्रगुप्त की सभा और मृत्युंजय के प्रीतिभोज-उत्सव की नियोजना करता है, तो सहसा विश्वास नहीं होता कि जीवन में इस प्रकार की घटनाएँ घटित भी हो सकती हैं। इन स्थलों पर स्पष्ट आभास होने लगता है कि लेखक ने इन घटनाओं की संयोजना पहले से ही कर रखी थी। फिर भी एक रोचक कहानी का आवरण चित्रलेखा की इन कमियों को पूर्णतया ढक लेता है।

लेखक ने उतने ही पात्रों का सृजन किया है जितने अभीष्ट सिद्धि के लिए उसे आवश्यक मालूम हुए। एक भी पात्र निरर्थक नहीं है। किन्तु प्रश्न पात्र के अनावश्यक होने का नहीं इस बात का है कि वह अन्य पात्रों और घटनाओं में घुलमिल पाया है या नहीं। बीजगुप्त कुमारगिरि और चित्रलेखा, ये तीन उपन्यास के प्रमुख पात्र हैं। यशोधरा का निर्माण भी सोद्देश्य कहा जा सकता है। श्वेतांक और विशालदेव द्रष्टा बनकर आये हैं। विशालदेव तो अन्त तक दृष्टा ही बना रहता है किन्तु श्वेतांक दूसरे पात्रों की जीवन धारा के साथ बह जाता है। इसलिए कहा जा सकता है कि चित्रलेखा में विशालदेव की स्थिति अनावश्यक है और उसकी उपस्थिति से कथानक में शिथिलता आ गया है।

पूर्व निश्चित योजना के कारण चित्रलेखा का कथानक सुगठित है। इसमें प्रासंगिक घटनाएं या कथाएं अधिक नहीं हैं। प्रसंगवश इसमें दो कथाएं आयी हैं—एक निरर्थक है और दूसरी सोद्देश्य। यशोधरा के सम्मुख बीजगुप्त ने जिस अलौकिक घटना का वर्णन किया है वह सर्वथा अनावश्यक है और कथानक में शिथिलता उत्पन्न करने का कारण बनी है। दूसरी प्रासंगिक घटना सोद्देश्य अवश्य है किन्तु वह प्रधान कथानक का सहायक नहीं कहा जा सकता। बीजगुप्त की मनःस्थिता जब चरम सीमा पर पहुँच जाती है तब लेखक यह प्रासंगिक घटना लाता है। काशी के गंगा-तट की घटना बीजगुप्त के मानसिक संघर्ष काल में उसकी उद्विग्नता को कम करने का साधन बना है, इससे अधिक इसकी उपयोगिता कुछ नहीं है।

चित्रलेखा के कथा-संगठन के सम्बन्ध में एक बात और अवशिष्ट रह जाती है। वह यह है कि जहाँ-कहीं भी कथाओं को अवसर मिला है परिच्छेद के

आरम्भ में उन्होंने एक दार्शनिक टिप्पणी जोडने के बाद मूल कथानक को पकड़ा है। इससे कथा प्रवाह में एक प्रकार का अवरोध उपस्थित हो गया हो ऐसा नहीं है क्योंकि चित्रलेखा के दार्शनिक विचार उपन्यास में घुलमिल ही नहीं गये, वे उपन्यास के आधार बन गये हैं। चित्रलेखा के विमुख हो जाने पर बीजगुप्त को जो दुख होता है उसका वर्णन सीधा न करके लेखक इस प्रकार करता है। दिन के बाद रात और रात के बाद दिन।

सुख के बाद दुख और दुख के बाद सुख।

बिना रात के दिन का कोई महत्त्व नहीं है और बिना दिन के रात्रि का कोई महत्त्व नहीं। बिना दुख के सुख का कोई महत्त्व नहीं है बिना सुख के दुख का कोई मूल्य नहीं है।

यही परिवर्तन का नियम है। संसार परिवर्तनशील [redacted]। मनुष्य उसी संसार का एक भाग है। बीजगुप्त मनुष्य था—उसने सुख देखा था उसके लिए दुख को भी जानना आवश्यक था। पर बीजगुप्त अपने दुख के भार से विचलित हो उठा। जिस बात की उसने कल्पना तक नहीं की थी वही हो गयी। उसे आश्चर्य यह था कि वह जीवित क्या है। बीजगुप्त के लिए उसका जीवन भार हो गया।

ऐसी दार्शनिक टिप्पणियों का कथानक अथवा पात्रों की मनःस्थिति से सीधा सम्बन्ध है इसलिए वे थिगली सी प्रतीत नहीं होती। ये वस्तुस्थिति को और भी अधिक उभारने और स्पष्ट करने में सहायक हुई हैं। स्थिति और मनोभावों को इतने मोहक ढंग से अभिव्यक्त करने का तरुण कवि लेखक का यह मौलिक प्रयास है।

चित्रलेखा में अनावश्यक विस्तार वाले अंश नहीं हैं। लेखक ने उतना ही कथा विस्तार किया है जितना आवश्यक है। परिस्थिति और वातावरण के भी उसी अंश का चित्रण और विवरण किया है जो पात्रों के चरित्र और उनके विकास से सीधा सम्बन्ध रखता है। उपक्रमणिका एवं उपसंहार वाले अंश भी सोद्देश्य हैं निरर्थक विस्तार के उपादान नहीं। पाप पुण्य की समस्या का प्रस्तुतीकरण प्रथम भाग में कर अन्तिम भाग में निष्कर्ष दिया गया है। इससे अधिक इन दोनों की कोई उपयोगिता नहीं है। इन दोनों अंशों को निकाल देने से भी उपन्यास के कथानक में कोई अन्तर नहीं आता। मूल कथानक का भाग भी हम इन दोनों को नहीं मान सकते। न तो ये भाग किन्हीं घटनाओं से सम्बन्धित हैं और न ही किसी पात्र के चरित्र विकास और मानसिक संघर्ष के उत्थान-पतन से। वस्तुतः चित्रलेखा और बीजगुप्त के उल्लास विलास की मादकतापूर्ण झाँकी

के साथ चित्रलेखा का आरम्भ होता है। और उनके एक दूसरे से विलग होने पर अर्थात् चित्रलेखा बीजगुप्त और कुमारगिरि में मानसिक तनाव आ जाने पर उपन्यास की चरम-सीमा आ जाती है जो अत्यन्त आकर्षक है। फिर कुमारगिरि के चारित्रिक स्खलन और बीजगुप्त के विराग से उपन्यास की परिसमाप्ति हो जाती है। इसके बाद कुछ कहने को नहीं रह जाता। इसके बाद घटनाओं और चरित्र संघर्ष में तीव्रता नहीं रह जाती। फलत: पाठक की उत्सुकता वहीं समाप्त हो जाती है। यह अवश्य है कि यदि उपसंहार वाला अंश न होता तो पाठक स्वभावत: बीजगुप्त को पुण्य-कर्त्ता और कुमारगिरि को पाप-कर्त्ता मान लेता किन्तु महाप्रभु रत्नाम्बर का अंतिम निर्णय पाठक को नवीन जीवन दृष्टि देता है। संसार में पाप कुछ भी नहीं है वह केवल मनुष्य के दृष्टिकोण की विषमता का दूसरा नाम है। प्रत्येक व्यक्ति एक विशेष प्रकार की मन प्रवृत्ति लेकर उत्पन्न होता है—प्रत्येक व्यक्ति इस संसार के रंगमंच पर अभिनय करने आता है। अपनी मन-प्रवृत्ति से प्रेरित होकर अपने पाठ को वह दुहराता है—यही मनुष्य का जीवन है। जो कुछ मनुष्य करता है वह उसके स्वभाव के अनुकूल होता है और स्वभाव प्राकृतिक है। मनुष्य अपना स्वामी नहीं है, वह परिस्थितियों का दास है—विवश है। वह कर्त्ता नहीं है वह केवल साधन है। फिर पाप और पुण्य कैसा ?

संसार में इसलिए पाप की एक परिभाषा नहीं हो सकी—और न हो सकती है। हम न पाप करते हैं और न पुण्य करते हैं हम केवल वह करते हैं जो हमें करना पड़ता है।'

'चित्रलेखा में नाटकीयता से पूर्ण घटनाओं की बहुलता है। इसकी घटनाएं भी केवल परिस्थिति उत्पन्न करने का साधन बनी हैं। विशिष्ट परिस्थितियों में डालकर व्यक्ति के मनोविज्ञान का जो दिग्दर्शन लेखक ने कराया है वही महत्त्वपूर्ण है। वातावरण और परिस्थितियाँ व्यक्ति-मात्र की मूलप्रवृत्ति और प्रकृति का उद्घाटन कर देती हैं। इस तथ्य को भगवतीचरण वर्मा जी ने यह चरित्र प्रधान उपन्यास लिखा है। एक स्थिति ऐसी भी आती है जब विलास और अनुराग से विराग और क्लान्ति हो जाती है और मन सात्विक जीवन व्यतीत करने की आकांक्षा करने लगता है। दूसरी ओर इच्छाओं पर नियंत्रण रखनेवाला ही नहीं उन्हें उत्पन्न तक न होने देने वाले व्यक्ति के जीवन में भी चरमसीमा के ऐसे क्षण आते हैं जब वह अपनी इन्द्रियों पर से नियंत्रण खो बैठता है और उसकी स्वाभाविक भावनाएँ उन्मुक्त होकर उच्छृङ्खलता की सीमा पर पहुँच जाती हैं। और यह मन ही तो है जो बहक जाता है, दा

आकर्षक बिन्दुओं के चुनाव करने में। ऐसे द्वन्द्वान्दोलन को अभिव्यक्त करने में यह उपन्यास अभूतपूर्व समर्थ हुआ है।

उपन्यास मे चित्रलेखा का मनोविज्ञान सबसे अधिक विचित्र है। ऐश्वर्य म आकठ डूबी बीजगुप्त के अनुराग से अनुरंजित होते हुए भी चित्रलेखा क्या योगी कुमारगिरि की ओर आकर्षित हुई यह एक विचित्र पहेली है। प्रथम दृष्टि म चित्रलेखा सोचती है कि वह कुमारगिरि स प्रेम करती है किन्तु कुमारगिरि क पास पहुँचने पर उस जो अनुभूति होती है, वह विचित्र है चित्रलेखा न अपने को टटोला—उसने अपने म एक विचित्र परिवर्तन पाया। वह पहले चली थी कुमारगिरि से प्रेम करने—उसने अब अनुभव किया कि वह कुमारगिरि स प्रेम न कर सकती थी, न उनकी पूजा कर सकती थी और न उनसे सीख सकती थी। नगर के अशान्तमय जीवन से यह घबरा गयी थी निर्जन की शान्ति मे सात्विकता की आभा मे विश्वास के पर्दे पर उसने सुख देखा। जीवन के आमोद प्रमाद से वह ऊब गयी थी अति सुख उसके लिए उत्पीडन हो गया था। कुमारगिरि की कुटी के प्रशान्त वातावरण मे चित्रलेखा ने सुख देखा तृप्ति देखी।

चित्रलेखा का मनोविश्लेषण उसकी मनोवृत्ति का एक पक्ष हो सकता है किन्तु उसके इस आचरण म नारी मनोविज्ञान का एक दूसरा सत्य भी निहित है। अपने सौंदय के बल से अपना स्वागत कराने वाली रूपगर्विता नारी पाटलिपुत्र का जन समुदाय जिसके पैरो पर लोटा करता था, उसके सौंदय की उपेक्षा कोई व्यक्ति कर जाय यह इस नारी को कैसे सह्य होता? सबके आकषण की केन्द्र यह नारी कैसे सुन सकती थी योगी का उपेक्षापूर्ण वाक्य कि स्त्री अधकार है मोह है माया है और वासना है। ज्ञान के आलोक म स्त्री का कोई स्थान नही। फिर महाराज चन्द्रगुप्त की सभा मे, जहाँ उसकी हँसती हुई दृष्टि की एक झलक से सामतो का उल्लास प्रतिध्वनित हो उठता हो वहाँ कुमारगिरि का अनासक्त होना चित्रलेखा मे अहं को तिलमिला देता है। और फिर उसके नृत्य की थिरकन मे प्रत्येक व्यक्ति मन्त्रमुग्ध-सा कला के सर्वोच्च प्रदशन को निरख रहा हो उस समय योगी के विघ्न से उसके नृत्य को रोक दिया जाना उसम क्रोधाग्नि जगा देता है। इसके प्रतिकार स्वरूप वह योगी की विजय को पराजय मे बदल देती है। इसके बाद चित्रलेखा का अचेतन मन योगी कुमारगिरि क मन को जीतने के लिए कटिबद्ध हो जाता है। फलत उसका चेतन मन कुमारगिरि से प्रेम करने का ढोंग रचता है। चेतन मन उसके अचेतन मन के इस व्यापार को नही समझ पाता और इसलिए चित्रलेखा समझती है कि वह

कुमारगिरि से प्रेम करने लगी है। किन्तु जब वह कुमारगिरि को जीत लेती है, तब उसकी समझ में आता है कि वह कुमारगिरि से प्रेम नहीं करती थी। कुमारगिरि के यह कहने पर कि 'नर्तकी, मैं तुमसे प्रेम करता हूँ।' वह हँस पड़ती है और कहती है 'मैं जानती हूँ कि तुम मुझसे प्रेम करते हो, पर मैं तुमसे प्रेम नहीं करती। एक क्षण के लिए मेरी इच्छा तुम पर आधिपत्य जमाने की हुई थी और मैंने उसका प्रयत्न किया। मैं सफल भी हुई पर उससे क्या? पुरुष पर आधिपत्य जमाने की इच्छा स्त्री के पुरुष से प्रेम की द्योतक नहीं है। प्रकृति ने स्त्री को शासन करने के लिए नहीं बनाया है। स्त्री शासित होने के लिए बनाई गई है, आत्म-समर्पण करने के लिए। स्त्री अपने से निर्बल मनुष्य से प्रेम नहीं कर सकती। जिस पर उसने आधिपत्य जमा लिया वह मनुष्य उसके प्रेम का अधिकारी हो ही नहीं सकता। स्त्री का क्षेत्र है आत्म-समर्पण अपने अस्तित्व को प्रेमी के अस्तित्व में मिला देना, इसीलिए स्त्री उसी मनुष्य से प्रेम कर सकती है, जो उस पर विजय पा सके, जो उस पर आधिपत्य जमा सके। योगी कुमारगिरि यहाँ पर विषमता है। पुरुष का प्रेम आधिपत्य जमाना है, स्त्री का प्रेम अपने को पुरुष के हाथ में सौंप देना है। पर यहाँ बात दूसरी है। यहाँ मैं स्वामिनी हूँ तुम दास हो। मैंने तुम पर आधिपत्य जमा लिया है, तुमने आत्म-समर्पण कर दिया है। किस बल पर तुम मेरा प्रेम चाहते हो?'

नारी के इस मनोविज्ञान को वर्मा जी ने चित्रलेखा के माध्यम से अभिव्यक्त किया है और वे इस मनोविश्लेषण में पूर्ण सफल हुए हैं। चित्रलेखा के चरित्र की असंगतियों में एक अद्भुत मनोविज्ञान निहित है। उपर्युक्त मनोविश्लेषण से स्पष्ट हो जाता है कि 'मैं तुमसे प्रेम करने आई हूँ।' कहने वाली चित्रलेखा विरक्त योगी की साधना के विफल होने पर उसकी भर्त्सना करती है यह अस्वाभाविक नहीं है। क्षणिक भावावेश में उसका कुमारगिरि को अपना शरीर सौंपना भी अस्वाभाविक नहीं है। चित्रलेखा के मानसिक द्वन्द्व ने उसके चरित्र को अत्यन्त मनोवैज्ञानिक बना दिया है। अनेक मानवीय दुर्बलताएँ रखते हुए भी वह पतित नहीं है। चित्रलेखा वेश्या न थी वह केवल नर्तकी थी— यह केवल लेखक का निर्णय नहीं—उसके चरित्र के सम्बन्ध में अन्त में पाठकों की भी यही धारणा बनती है।

चित्रलेखा इस उपन्यास की वह धुरी है जिसके चारों ओर उसका कथानक ही नहीं समस्त पात्र भी चक्कर लगाते हैं। चित्रलेखा का व्यक्तित्व बड़ा भव्य और प्रभावशाली है। लेखक के शब्दों में 'कुछ ऐसे व्यक्ति होते हैं जो दूसरों को अपनी ओर आकर्षित कर लेते हैं जो दूसरे व्यक्तित्व को आकर्षित

करके उसको दबा देते हैं और उसको अपना दास बना लेते हैं। चित्रलेखा का व्यक्तित्व भी ऐसा था। बीजगुप्त और कुमारगिरि जैसे प्रभावशाली व्यक्तियों का उत्थान पतन चित्रलेखा के द्वारा ही होता है।

योगी कुमारगिरि वस्तुतः एक कुण्ठाग्रस्त व्यक्ति है। उसकी कुंठा एकदम वही है जो जैनेन्द्र की सुनीता के हरिप्रसन्न की है। हरिप्रसन्न की कुंठा का कारण है उसकी जीवन गति का स्वाभाविक विकास न हो सकना। बचपन से ही वह अपने पिता के घर से नाता तोड़कर भाग आया और इस तरह घर उसके लिए अपरिचित हो गया। फलतः हरिप्रसन्न सदैव नारी से दूर रहा और उससे डरता रहा। नारी से वह सिकुड़ा रहता है। उसके सम्पर्क से दूर रहने की वह सदैव कोशिश करता रहता। किन्तु इस पलायनवादी युवक की यह ग्रंथि तब एकाएक छिन्नभिन्न होकर खुल पड़ती है जब वह नारी सुनीता के सम्पर्क में आता है। यही ग्रंथि कुमारगिरि में है। अन्तर केवल इतना है कि हरिप्रसन्न जहाँ क्रांतिकारी है वहाँ कुमारगिरि योगी है। किन्तु दोनों की कुंठा एक ही है। कुमारगिरि भी स्वाभाविक जीवन से पलायन करता रहा और नारी से डरता रहा। 'स्त्री अंधकार है मोह है माया है वासना है।' यह उसकी धारणा है और इसलिए वह नारी के सम्पर्क तक से बचता रहा। वासना पाप है जीवन को कलुषित बनाने का एकमात्र साधन है। इसलिए वह उन्हें उत्पन्न होने देना भी पाप समझता है। उसने अपनी इंद्रियों को वश में कर रखा है। इच्छाओं को दबाने का तो प्रश्न ही नहीं उठता क्योंकि वह इच्छा को उत्पन्न ही नहीं होने देता। किन्तु जीवन से भागे हुए इस व्यक्ति की ग्रंथि तब एकाएक खुल जाती है जब वह नर्तकी चित्रलेखा के सम्पर्क में आता है। तब उसकी धारणा बदल जाती है। वह कहता है : 'आज मैंने एक नयी बात सोची है देवि चित्रलेखा। विराग मनुष्य के लिए असम्भव है क्योंकि विराग नकारात्मक है। विराग का आधार शून्य है कुछ नहीं है। और वह चित्रलेखा को पाने के लिए झूठ तक बोलता है। ग्रंथि के खुल जाने से एक ही चोट में वह देवत्व के उच्च शिखर से गिरकर पशुवत् आचरण करता है। उसने अपनी आत्मा का हनन उस सीमा तक किया है कि फिर परिस्थिति का सामना करने की सामर्थ्य उसमें बिल्कुल नहीं रहती। विषम परिस्थिति से टकराकर एक बार में ही उसका सारा अहंकार चूर चूर हो जाता है उसकी वर्षों की साधना मिट्टी में मिल जाती है।

कुमारगिरि के इस पतन के सम्बन्ध में प्रायः लोग यह प्रश्न उठाते हैं कि कुमारगिरि का पतन दिखाकर लेखक ने भारतीय संस्कृति और अध्यात्मवाद

पर कुठाराघात किया है। किन्तु यह कथन भ्रांतिपूर्ण है। हमारे यहाँ सर्वत्र से निवृत्ति मार्ग और प्रवृत्तिमार्ग को लेकर वाद विवाद होता रहा है। भिन्न भिन्न प्रकृति के व्यक्ति इनमें से एक मार्ग को अपनाते आये हैं। अपना-अपना दृष्टिकोण है। यहाँ भी लेखक ने किसी दर्शन की खिल्ली नहीं उड़ाई है। इसके द्वारा उसने केवल अध्यात्मवाद के अति वाले स्थान पर अनास्था प्रकट की है। उससे ध्वनित लेखक का स्वर यही है कि जीवन में सन्तुलन बनाए रखने के लिए मनुष्य को अपनी भावनाओं तथा इच्छाओं से सहयोग करना आवश्यक है। यही जीवन-दर्शन वर्तमान परिस्थिति में हमारे लिए उपयोगी है, उपयुक्त है।

चित्रलेखा का नायक बीजगुप्त लेखक के जीवन-दर्शन का प्रतिनिधित्व करता है। वह उपन्यास का मन से स्वस्थ पात्र है। इसके मन में कोई कुण्ठा या ग्रंथि नहीं है क्योंकि इसका विकास जीवन की स्वाभाविक गति के साथ हुआ है। उसने जीवन से सहयोग कर लिया है। उसमें सभी मानवीय गुण और अवगुण हैं। चित्रलेखा से वह प्यार करता है उसे काम-वासना की वस्तु नहीं समझता। वह एक अत्यन्त स्वच्छ हृदय का मानव है। उसमें छल-कपट, छिपाव-दुराव की प्रवृत्ति नहीं है। एक स्थल पर वह स्वयं कहता है 'मेरे जीवन की कोई बात गुप्त नहीं है। गुप्त वे बातें रखी जाती हैं, जो अनुचित होती हैं। गुप्त रखना भय का द्योतक है और भयभीत होना मनुष्य के अपराधी होने का द्योतक है। मैं जो करता हूँ उसे उचित समझता हूँ। इसलिए उसे कभी गुप्त नहीं रखता।' स्पष्ट है बीजगुप्त की अन्तश्चेतना निर्मल है। लोक की दृष्टि में अविवाहित होते हुए भी वह अपने को विवाहित समझता है। वह कहता है 'चित्रलेखा मेरी पत्नी है यद्यपि चित्रलेखा का पाणिग्रहण मैंने शास्त्रानुसार नहीं किया है, और समाज के नियमों के अनुसार कर भी नहीं सकता हूँ फिर भी मेरा और चित्रलेखा का सम्बन्ध पति और पत्नी का-सा है। मैं प्रेम में विश्वास करता हूँ। और अन्त तक उसका प्रेम पवित्र और स्थायी बना रहता है। यशोधरा की ओर उसका आकर्षित होना प्रेमजन्य न होकर ईर्ष्याजन्य है। यह जानकर कि चित्रलेखा उसे छोड़ने के बाद प्रसन्न है वह यशोधरा से विवाह करने का निश्चय कर लेता है। किन्तु उसका यह निश्चय क्षणिक ही रह जाता है, जब वह चित्रलेखा से अलग रहने की भावना त्याग देता है। वस्तुतः बीजगुप्त का प्रेम एकनिष्ठ और शाश्वत है।

प्रेम के क्षेत्र में ही नहीं, मानवता के क्षेत्र में भी बीजगुप्त का हृदय विशाल है। व्यक्ति-स्वातन्त्र्य वह अपने लिए ही नहीं चाहता दूसरों को भी देता

है। वह जानता है कि प्रेम करने का जितना अधिकार उसे है उतना ही श्वेतांक को है। दूसरों के सुख में बाधक होना—केवल अपने सुख की आशा कायरता है नहीं नीचता। मैं अन्याय कर रहा हूँ दूसरों के साथ और स्वयं अपने साथ भी। हमारे हिस्से में सुख और दुःख दोनों ही पड़े हैं—हमारा कर्तव्य है कि हम दोनों को ही साहसपूर्वक भोगें। अतएव बीजगुप्त जिस जीवन-दर्शन का लक्ष्य चलता है वह अत्यन्त स्वस्थ है। वह परिस्थितियों का दास नहीं है परिस्थितियों पर विजय प्राप्त करने की सामर्थ्य भी रखता है। इसी स्वस्थ दृष्टिकोण का परिणाम है कि बीजगुप्त का आचरण कभी उच्छृंखल नहीं होने पाता।

कुमारगिरि और बीजगुप्त जैसे विरोधी प्रवृत्ति के पुरुषों के कारण चित्रलेखा के पात्रों में उत्कट मानसिक तनाव उत्पन्न हो गया है। चित्रलेखा इन दोनों विरोधी वृत्ति वाले व्यक्तियों के सम्पर्क में आती है और ये व्यक्ति चित्रलेखा के प्रभावशाली व्यक्तित्व के सम्पर्क में। फलतः इन तीनों में संघर्ष और हृदयान्दोलन के अनेक क्षण आते हैं जिनसे इनके जीवन में उतार-चढ़ाव के नये मोड़ आप ही आप आ जाते हैं। इस मानसिक तनाव और संघर्ष को वर्मा जी ने अभूतपूर्व कौशल से चित्रित किया है। इससे उनकी मानव मन को परखने की सूक्ष्म अन्तर्दृष्टि का पता चलता है।

चित्रलेखा में लेखक ने आन्तरिक संघर्ष के क्षण वहाँ उपस्थित किये हैं जहाँ दो विरोधी वस्तु या मार्ग में से एक को छोड़ दूसरे को ग्रहण करने का प्रश्न उठता है। सबसे पहले चित्रलेखा में मानसिक संघर्ष आरम्भ होता है और वही अन्य पात्रों में भी आन्तरिक तनाव उत्पन्न करने का साधन बनता है। अन्तर्मन की जिस मनोवृत्ति के कारण चित्रलेखा कुमारगिरि की ओर आकर्षित होती है उसका उल्लेख ऊपर किया जा चुका है। मन की उस असाधारण अस्वगति के कारण वह कुमारगिरि से प्रेम अवश्य करने लगती है किन्तु बीजगुप्त का प्रेम उसे अपने इस निर्णय से बार-बार विचलित करता है। 'कुमारगिरि की कुटी में पहुँच जाने के बाद भी एक बार उसकी इच्छा हुई कि वह उठ खड़ी हो और बीजगुप्त के साथ चल दे पर वह एकाएक रुक गई। वह बहुत दूर चली आयी थी उसका पीछे जाना असम्भव था।

प्रत्येक व्यक्ति के जीवन में कभी-कभी ऐसे क्षण आते हैं जब वह दूसरों को ही धोखा नहीं देता अपने से भी आत्म प्रवंचना करता है। चित्रलेखा कई बार ऐसी परिस्थितियों से गुजरती है। चित्रलेखा कुमारगिरि से प्रेम करने लग गयी इस बार अपने प्रेम के आधार—बीजगुप्त के उपस्थित रहते हुए।

इसलिए चित्रलेखा को कुमारगिरि के पास जाने का साहस नहीं हुआ था। पर मृत्युंजय के भवन के उत्सव की बात ने उसे साहस दिया, साहस के साथ मनुष्यता को धोखा देने का एक बहाना भी दिया, उसने मन में कहा 'बीजगुप्त को सुखी बनाना मेरा कर्तव्य है उसे मुक्त कर देना ही मेरा महान् त्याग होगा और उसके जीवन को सार्थक बनाना होगा। मुझे बीजगुप्त को छोड़ ही देना पड़ेगा सदा के लिए छोड़ देना पड़ेगा।' किन्तु जब उसे कुमारगिरि का प्रेम मिल जाता है तब भी उसे सन्ताप नहीं होता और फिर से बीजगुप्त को पाना चाहती है। यहाँ फिर से एक बार उसमें मानसिक संघर्ष के क्षण आते हैं और नाव और अंठे पशु वासना के कोड़े सह कर वह कुमारगिरि को भी छोड़कर चली आती है।

नारी का कुमारगिरि और बीजगुप्त के जीवन में आना एक बवण्डर उपस्थित कर देता है। संसार से विरक्त और आत्मा का हनन करने वाला योगी कुमारगिरि इन्द्रियों का दास बन जाता है। चित्रलेखा को अपने सामने पाकर सहसा वह साकार की पूजा करने लग जाता है। यहाँ लेखक ने कुमारगिरि का मानसिक संघर्ष नहीं दिखलाया और यह उचित है क्योंकि ऐसी प्रतिक्रियाएँ सहसा हुआ करती हैं।

किन्तु चित्रलेखा के इस कथन से कि 'गुरुदेव, आप मार्गच्युत हो रहे हैं—आप अपनी साधना से विरत हो रहे हैं।' कुमारगिरि के हाथ का बन्धन टूट गया। वह चौंक कर पीछे हट गये। उनकी आँखों का पागलपन एक क्षण में ही लोप हो गया। उनका मुख पीला पड़ गया—'अरे, मैं क्या कर रहा था ' कुमारगिरि कह उठे—'मुझे क्षमा करना देवि, इस आचरण के बाद ही उनमें मानसिक संघर्ष के क्षण आते हैं। कुमारगिरि कुटी से बाहर निकल कर खुले मैदान में घूमने लगे। कुछ देर पहले उनका शरीर जल रहा था अब उनका मस्तिष्क जल रहा था। पहली जलन में सुख था दूसरी जलन में दुःख था। अपने कार्य-क्षेत्र से और अपनी साधना से वे बुरी तरह से गिर रहे थे। अपनी निर्बलता पर विजय पाना उनका कर्तव्य था।

सामने गहरा अन्धकार था। पीछे पाटलिपुत्र के दीपक टिमटिमा रहे थे। कुमारगिरि के पैर उस अन्धकार की ओर उठ गये—'नहीं मेरे लिए अपने को रोकना असम्भव है गिरना अनिवार्य है। अपने को बचाना ही होगा।' वे यह कह उठे। वे उस समय तक अपनी कुटी से काफी दूर निकल आये थे।

एकाएक उनके अन्दर से किसी ने कहा—'क्या तुम कायर नहीं हो?

उन्होंने पूछा—'क्यों ?

उत्तर मिला—तुम कहाँ जा रहे हो ? अपनी निर्बलता पर विजय पाना ही तो सबसे बड़ी साधना है। जब तक तुम स्वयं अपने को जीत नहीं लेते, तब तक तुम अपूर्ण हो, इसीलिए तो चित्रलेखा तुम्हारे पास आयी है कि तुम अपने पर विजय पाओ। क्या तुम चित्रलेखा से भय खाते हो ? निर्बलता तुम में ही है उसे दूर करो। साधना तुम्हारे पास ही है, तुम जाते कहाँ हो ?

कुमारगिरि रुक गये।

तो फिर ऐसा ही सही— उन्होंने धीरे से कहा और वे अपनी कुटी की ओर लौट पड़े।

यह निश्चय कर वे अपना हृत्यान्दोलन रोकना चाहते हैं। किन्तु उन्हें सफलता नहीं मिलती। इस बीच कुमारगिरि ने अपने को संयत रखा किंचित कमजोरी का भी प्रदर्शन उन्होंने न होने दिया। कुछ दिनों के लिए उनका यह विचार हो गया कि वे चित्रलेखा को अपने पास रखते हुए भी विषय-वासना को दूर रखें पर यह भावना स्थायी न रह सकी। एक बार जो आग प्रज्ज्वलित हो चुकी थी वह आहुति माँग रही थी। कुमारगिरि अपने निश्चय पर दृढ़ न रह सके। और कुमारगिरि का मानसिक संघर्ष एक बार फिर उत्तेजित हो उठता है कुमारगिरि को चित्रलेखा के व्यवहार से अधिक आश्चर्य अपने व्यवहार पर हुआ। उसने चित्रलेखा को अपने से दूर रखने का भरसक प्रयत्न किया था। फिर उसने क्यों चित्रलेखा को स्वीकार कर लिया था ? क्या इसलिए कि वह अपने अविश्वास को दूर करना चाहता था ? कुमारगिरि का क्षेत्र विजय का था—पराजय की भावना उसके लिए नयी थी। शायद कुमारगिरि को अपनी कमजोरी का पता था—उसी कमजोरी को दूर करने के लिए ही उसने चित्रलेखा को स्वीकार किया था। उसने प्रयोग किया वह असफल रहा। असफलता भी कितनी भयानक थी ? वह अपने से तो हारा ही वह हारा एक साधारण नर्तकी से—स्वयं अपने से पराजित होने पर उसे दुःख था पर उस दुःख की भावना को नर्तकी से पराजित होने पर क्रोध की भावना ने दबा लिया। कुमारगिरि कह उठा—नहीं नर्तकी चित्रलेखा को वश में करना ही होगा। पर किस प्रकार ?

और यह मानसिक संघर्ष एक दूसरी करवट लेता है। वह नीच आचरण पर उतर आता है। चित्रलेखा को बीजगुप्त की ओर से विमुख कर उसे स्वयं पाने के लिए उससे झूठ बोलता है।

इस प्रकार कुमारगिरि का मानसिक संघर्ष बड़ा स्वाभाविक है। बीजगुप्त में मानसिक द्वन्द्व की सम्भावनाएं कम हैं, इसलिए लेखक को उसका हृदय-विश्लेषण का अवसर भी कम मिला है। बीजगुप्त का द्वन्द्व जो कुछ हुआ है वह यशोधरा और चित्रलेखा को लेकर हुआ है। किन्तु इस द्वन्द्व की सम्भावनाएं भी कम हो जाती हैं, श्वेतांक के यशोधरा की ओर आकर्षण और चित्रलेखा के प्रति बीजगुप्त के अक्षुण्ण प्रेम के कारण। वस्तुतः बीजगुप्त एक फ्लैट (Flat) चरित्र है, जो अप्रत्याशित आचरण कर ही नहीं सकता।

जहाँ तक चरित्र चित्रण शैली का प्रश्न है चित्रलेखा में तत्सम्बन्धी प्रौढ़ता नहीं है। चरित्रों से पाठकों का प्रथम परिचय वर्माजी इतने विस्तार से करा देते हैं कि फिर उनके सम्बन्ध में कुछ और जानना अवशेष नहीं रह जाता। रत्नाम्बर विशालदेव और श्वेतांक को कुमारगिरि तथा बीजगुप्त का परिचय देते हुए उनके चरित्रों की तमाम विशेषताएं एक बार में ही बता देते हैं। पर फिर भी लेखक को जैसे इससे सन्तोष नहीं होता और वह अपनी ओर से भी उनका विस्तृत परिचय दे बैठता है। कुमारगिरि के व्यक्तित्व का अनावश्यक परिचय देकर लेखक ने विषय की पुनरावृत्ति ही नहीं की पाठकों की उत्सुकता भी समाप्त कर दी है। रत्नाम्बर एक बार पहले कह ही चुके होते हैं कि 'कुमारगिरि योगी है उसका दावा है कि उसने संसार की समस्त वासनाओं पर विजय पा ली है। संसार से उसको विरक्ति है और अपने मतानुसार उसने सुख को भी जान लिया है, उसमें तेज है और प्रताप है उसमें शारीरिक बल है और आत्मिक बल है। जैसा कि लोगों का कहना है उसने ममत्व को वशीभूत कर लिया है। कुमारगिरि युवा है पर यौवन और विराग ने मिलकर उसमें एक अलौकिक शक्ति उत्पन्न कर दी है। संयम उसका साधन है और स्वर्ग उसका लक्ष्य।' तब लेखक की अपनी ओर से यह बखान की क्या आवश्यकता रह जाती है कि 'कुमारगिरि योगी था। हाँ, क्योंकि उसने संसार छोड़ दिया था।
और शब्दों के हेर-फेर के साथ यह डेढ़ पृष्ठों में फिर वही दुहराता है। कदाचित् भावुक कवि-लेखक शब्दों का इन्द्रजाल बुनने का लोभ संवरण नहीं कर पाता।

फिर भी कहीं-कहीं पात्र के जीवन का परिचयात्मक विवरण उसके मनोविज्ञान को समझने में सहायक सिद्ध हुआ है। चित्रलेखा के विगत-जीवन का लगभग ढाई पृष्ठों का विवरण हमें उसके चरित्र की असंगति और मनोग्रंथि को समझने में सहायता पहुँचाता है। इसी प्रकार जहाँ-कहीं वर्माजी ने पात्रों का

मानसिक सघर्ष दिखाने के लिए उनके मनोविकार और मनोदशाओ का अपनी ओर से विश्लेषण किया है वहाँ चरित्र चित्रण मे गरिमा आ गयी है ।

जहाँ कही पात्रो को आत्म विश्लेषण का अवसर मिला है वहाँ उन्होने उसे सच्चाई से अभिव्यक्त किया है । विशेषत चित्रलेखा और बीजगुप्त के आत्म विश्लेषण बडे महत्वपूर्ण हैं । बीजगुप्त के जीवन से चित्रलेखा एकाएक चली जाती है तब उसकी मन स्थिति किस प्रकार की हो जाती है उसे वह स्वय व्यक्त करता है बीजगुप्त को अपने ऊपर आश्चर्य हुआ । वह बिना अपनी इच्छा के जाने हुए यशोधरा की ओर आकर्षित होता जा रहा था—और सम्भवत वह यशोधरा को अपना भी लेता यदि उस दिन श्वेताक की भुग्नाकित भावनाओ ने उसको सावधान न कर दिया होता ।

वह काशी आया था अपने दु ख को भूलने के लिए अपनी हलचल को दूर करने के लिए । पाटलिपुत्र म रहकर चित्रलेखा के निकट रहकर अपने ऐश्वय की परिस्थितियो म रहकर उसके हृदय का घाव अच्छा नही हो सकता था पाटलिपुत्र म उसने यही सोचा था । यही सोचकर वह वहाँ से निकला था— विराग की भावना उसे वहा खीच लायी थी । एक लक्ष्यहीन पथिक की भाँति वह घर के बाहर निकल पडा था ।

लक्ष्यहीन पथिक ? बीजगुप्त की विचारधारा बदल गयी । बीजगुप्त ने फिर सोचना आरम्भ किया— मैं कल पाटलिपुत्र चल रहा हू । क्या ? वह सोचने लगा— चित्रलेखा स मिलने के लिए चित्रलेखा को अपने यहाँ खीच लाने के लिए । उसे अपने ऊपर विश्वास था वह जानता था कि यदि वह हठ करे तो चित्रलेखा उसका विरोध न करेगी— नही चित्रलेखा के पास अब न जाऊगा, क्या जाऊ ? क्या मैंने चित्रलेखा का छोडा है ? नही चित्रलेखा ने मुझे छोडा है । यह क्या ? सम्भवत यही विधि का विधान है । मुझे अपना कर्तव्य करना चाहिए—मेरा कर्तव्य क्या है मैं पैदा हुआ हू कर्म करने के लिए । मेरा कर्तव्य है कि मैं गार्हस्थ्य जीवन व्यतीत करू सम्भवत चित्रलेखा मेरे जीवन स इसीलिए चली गयी है । विवाह करूँ—एक बार गृहस्थी का अनुभव करू । और विवाह के योग्य पात्री भी है यशोधरा । सौदय मे चित्रलेखा स यशोधरा किसी भी अश म कम नही है । फिर यशोधरा ही सही । पर क्या सभव है ? मैं एक बार यशोधरा को अस्वीकार कर चुका हू । नही—असम्भव । अब यशोधरा स विवाह की बात नही सोच सकता बहुत विलम्ब हो गया है—बहुत विलम्ब हो गया । चित्रलेखा बस चित्रलेखा ही मेरे जीवन म है ।

कथोपकथनों के माध्यम से दूसरे पात्रों द्वारा भी लेखक ने चरित्र की मनोवृत्ति और आचरण का विश्लेषण कराया है। कुमारगिरि चित्रलेखा की मनःस्थिति का उद्घाटन करता है और चित्रलेखा कुमारगिरि के 'मनोविकारों' का। चित्रलेखा जब कुमारगिरि के पास आ जाती है और स्वयं से आत्म-छलना करते कहती है कि मैं विराग का जीवन बिताने आयी हूँ तब कुमारगिरि उसके यथार्थ मनोभावों का प्रकाशन यह कह कर करा लेते हैं कि नर्तकी सच कहना। मैं तुमसे झूठ नहीं बोला हूँ, कहता हूँ कि सच कहना, तुम यहाँ क्यों आयी हो? क्या वास्तव में तुम ज्ञान प्राप्त करना चाहती हो?

चित्रलेखा की दृष्टि नत हुई। उसने कुमारगिरि की ओर देखा उसके नेत्र कुमारगिरि के नेत्रों से मिल गये। उसने शान्त भाव से उत्तर दिया—योगी। अपनी विजय और पराजय की अवहेलना करके एक बार तुम मुझसे सच बोले थे। मैं भी तुमसे सच ही कहूँगा—मैं तुमसे प्रेम करने आयी हूँ।

चित्रपट और चरित्र दोनों के सुन्दर चित्रलेखा में कहीं पर बराबर हैं। संवादों में कोई न कोई उद्देश्य अवश्य निहित है। या तो वे चरित्र प्रकाशन में सहायक हुए हैं या फिर स्थिति चित्रण में। अनेक स्थलों पर उन्होंने कथा के सूत्रों को गति भी प्रदान की है। तर्क और दर्शन से बोझिल होने पर भी संवादों में रोचकता की कमी नहीं है। यशोधरा और बीजगुप्त के वार्तालाप बड़े सरल और दर्शन से मुक्त होने पर भी कितने रोचक हैं। यशोधरा ने हाथ में फूल ले बीजगुप्त को बुलाया—'आर्य बीजगुप्त देखो—प्रकृति के इस सुन्दर रूप को तो देखो। यहाँ कितना उल्लास है कितनी शान्ति है, और कितना सौन्दर्य है। सारे जगत् की चिन्ता तृष्णा और अभिमान के नारकीय कोलाहल से दूर अति दूर यहाँ पर निष्कलंक जीवन तितलियों के रंगीन परों के साथ अठखेलियाँ कर रहा है।

बीजगुप्त पास आ गया। वह यशोधरा के पास में खड़ा हो गया। उसने एक बार अपने चारों ओर देखा—'देवि यशोधरा मुझे तो प्रकृति में कोई सुन्दरता दिखलायी नहीं देती।

'प्रकृति में आपको कोई सुन्दरता नहीं दिखलाई देती? यशोधरा ने आश्चर्य चकित नेत्रों से बीजगुप्त को देखा—'आर्य बीजगुप्त क्या आप सत्य कह रहे हैं या हँसी कर रहे हैं?' 'हँसी नहीं कर रहा हूँ देवि। मैं सत्य कह रहा हूँ। तुम कह रही हो कि प्रकृति सुन्दर है, मुझे प्रकृति कुरूप दिखलायी देती है।

यशोधरा बीजगुप्त की बात मानने को तैयार न थी—आर्य बीजगुप्त देखो। यह दूर्वादल कितना कोमल है, कितना सुन्दर है। मेरी तो इच्छा होती

है कि मैं यही इस दूर्वान्ल पर रहूँ यहां बैठूँ और इसी पर विश्राम करूँ। 'हाँ प्रकृति अपूण है। प्रकृति मे अपूण होने के कारण ही मनुष्य ने कृत्रिमता की शरण ली है। दूर्वान्ल कोमल है सुन्दर है पर उसम नमी है, उसम कीडे मकोडे मिल हैं। इसलिए मनुष्य ने मखमल के गद्दे बनवाए हैं प्रकृति मनुष्य की सुविधा नही देखती इसीलिए वह अपूर्ण है।'

चित्रलेखा के कथा प्रवाह का गति देने में उसकी भाषा का महत्त्वपूण याग है। भाषा मे चित्रात्मकता और कवित्व की मात्रा इतनी अधिक है कि पाठक उस धारा प्रवाह म बहता चला जाता है। पाठक की भावात्मक सवेदना भाषा की सरसता से उभरती चली गयी है। इसीलिए चित्रलेखा में उसके कथा सग ठन की कतिपय कमियो को देखते हुए हम अनुभव होता है कि लखक कथा बुनने या कथा निर्माण म इतना निपुण नही है जितना कथा कहने म। कथा कहने का उसका ढग निराला है।

अन्त म चित्रलेखा के सम्बन्ध मे एक बात अवशेष रह जाती है। वह यह कि जहाँ चित्रलेखा का विषय उसकी समस्या का समाधान उसका कला-सौष्ठव आधुनिकता तथा नवीनता लिए हुए है वहाँ उसके अन्त के प्रति पाठक शकालु हो उठता है। ऐसा प्रतीत होता है कि लेखक की दृष्टि अत्यन्त आधुनिक होते हुए भी उसके सस्कार पुरातन हैं जिसके फलस्वरूप चित्रलेखा 'सु और कु' की निश्चित परिधि से बच नही पायी है। पाप और पुण्य का निराकरण करते हुए भी जैसे लेखक भारतीय कर्मवाद को अपनाकर इन दोना की प्रतिष्ठा बनी रहने देता है। माना कि बीजगुप्त को उसने पापी नहा ठहराया माना कि कुमारगिरि का पतन परिस्थिति वश होने के कारण पाप नही है, फिर भी जैसे कृति म एक स्वर ऐसा है जिसे लेखक पाठकों से छिपा नही पाता। अच्छे कर्म का अच्छा फल दिखाकर लखक अनायास ही अपने निराकरण वाली वस्तु को पुन स्थापित कर देता है। क्या यह आवश्यक है कि बीजगुप्त को चित्रलखा फिर से मिल ही जानी चाहिए ? या अपने परिताप और प्रायश्चित्त की ज्वाला मे जलकर चित्रलखा का चरित्र निखर हो आये और बीजगुप्त उसे क्षमा कर दें ? न तो यह अन्त उपन्यास के कथानक के स्वाभाविक विकास से प्राप्त होता है और न विषय वस्तु के वास्तविक समाधान स। यह लखक की अपनी दृष्टि का परिणाम है जिससे यह सिद्ध हो जाता है कि लेखक बहुर्चाचित आदर्शवाद से बच नहा पाया है।

तीन वर्ष (१९३६)

चित्रलेखा की ख्याति ने वर्मा जी को फिर उपन्यास लेखन में लगाया। लखनऊ आकर अब वे एक दूसरे समाज से परिचित होते जा रहे थे। वहाँ का विद्यार्थी-समाज उनके सामने था। उनकी प्रकृति, विशेषताओं और विकृतियों से वे अब तक बहुत कुछ परिचित हो चुके थे। दूसरे स्वयं भी उस विद्यार्थी-समाज का भाग होने और आर्थिक संघर्ष में पड़ जाने के कारण इस समाज से उनका भावनात्मक लगाव भी हो गया था। फलतः उपन्यास रचना के लिए अब उन्हें ऐतिहासिक पृष्ठभूमि नहीं ढूँढ़नी पड़ी। यद्यपि विषय वही 'चित्रलेखा' वाला रहा किन्तु अब उन्होंने उसके विभिन्न पहलुओं को ले लिया। चित्रलेखा की भाँति तीन वर्ष की समस्या विशुद्ध दार्शनिक न होकर व्यावहारिक भी है। इसलिए समस्या अधिक सुलझी हुई है। इसके अतिरिक्त चित्रलेखा में लेखक जिस आस्था में डूबा हुआ था तीन वर्ष में उसकी आस्था कम हो गया। दूसरे शब्दों में लेखक में अनास्था का भाव आ गया।

समस्या को आकर्षक ढंग से प्रस्तुत करने के लिए लेखक ने बड़ा सुन्दर कथानक निर्मित किया है। जिस प्रकार रोचक इतिवृत्त की संयोजना वर्मा जी ने चित्रलेखा में की थी, वैसी ही रोचकता हमें तीन वर्ष में मिलती है। समस्या को दो के माध्यम से तुलनात्मक रूप में रखने की जो उनकी प्रवृत्ति रही है जिससे उनका अभिप्राय अधिक से अधिक स्पष्ट हो सके। तीन वर्ष में उन्होंने ऐसा ही प्रयास किया है। यद्यपि वाद विवाद की रहा, पर उसकी प्रखरता इसमें 'चित्रलेखा' से कम है। प्रस्तुत उपन्यास में समस्या को अधिक उभारने के लिए उन्होंने दो विपरीत स्तर के और विरोधी प्रकृति के पात्रों को रखा है। एक ओर अजित जैसा पात्र है जो उच्चवर्ग का व्यक्ति है और ... शिक्षा के बल-बूते पर शहर के ऊँचे-ऊँचे समाज का जीवन व्यतीत कर चुका है। जिसे जीवन में अमित अनुभव हुए हैं जिनसे आस्था का परम है। दूसरी ओर रमेश जैसा पात्र है जो निम्न मध्यवर्ग का व्यक्ति है और अभी-अभी गाँव या छोटे शहर से शिक्षा प्राप्त करने के लिए बड़े शहर में आया

है। वह अबोध है जिसका एक मात्र लक्ष्य विद्याअध्ययन मात्र है संसार के मनोरंजन और क्रीडाओं में जिसे कोई रुचि नहीं है। जब ये दोनों विरोधी संस्कार और सामाजिक स्तर के व्यक्ति परस्पर सम्पर्क में आते हैं तो बडी अजीब स्थिति उत्पन्न हो जाती है। अजित रमेश में संसार के भोलेपन की उसकी सरलता की और उसकी कोमलता की एक मूर्ति देखता है। हृदय की वह स्वच्छता देखता है जो सभ्यता के वातावरण में प्राय ढूढने पर नहीं मिलती। और रमेश उच्चवर्ग के स्वच्छन्द वातावरण में उसकी निश्चिन्तता में एक प्रकार का सम्मोहन अनुभव करता है जिसमें वह बरबस लिपटता चला जाता है। इस वर्ग के जीवन को देख उसमें भी महत्वाकांक्षाएं जाग्रत हो उठती हैं। फलत वह अपनी वास्तविक स्थिति को भूलकर अपनी परिधि को लाघकर उच्चवर्गीय जीवन में घुल मिल जाने का दुस्साहस करता है और अपने आचरण में वैसे ही रंग-ढंग अपना लेता है। किन्तु उसके विश्वास और संस्कार तो अपने वर्ग वाले ही रहते हैं जो उसका पीछा नहीं छोडते। फलत स्थिति बडी दुविधापूर्ण हो जाती है। वह न तो अपने वर्ग की विशेषताओं को छोड पाता है और न ही दूसरे वर्ग को पूर्णतया अपना पाता है। इसका परिणाम बडा बुरा होता है। जब उच्च वर्ग का अह उससे आकर टकराता है तो जैसे उसके जीवन में एक विस्फोट हो उठता है। उसके विश्वास चूर चूर हो जाते है उसकी आस्था हिल उठती है। और तब वह समाज के प्रति ही नहीं अपने प्रति भी कटु हो उठता है। यह आघात रमेश को लगता है—अजित द्वारा नहीं—प्रभा द्वारा जो उच्च मध्य-वर्ग की आधुनिक युवती है रमेश जिससे प्रेम करने लगा था। और यहाँ हम उच्चवर्ग के दो भिन्न प्रवृति के व्यक्तियों की तुलना करने का अवसर मिलता है। अजित अपने वर्ग की समस्त सुविधाओं हास विलास का उपभोग करते हुए भी विशाल हृदय व्यक्ति है। वह अपने वर्ग की कमजोरियों से परिचित है और इसलिए जैसे उस परिताप में ही वह रमेश को अपना मित्र बनाकर अनेक सुख-सुविधाएं देता है। किन्तु प्रभा की प्रकृति दूसरी है। वह अपने *वर्ग की जीती जागती* तस्वीर है। हास विलास ही उसका जीवन है। उसके लिए प्रेम खेल और मौज की वस्तु है इससे अधिक कुछ नहीं। इसलिए निर्धन रमेश को वह यह कहकर ठुकरा देती है कि विवाह को मैं स्त्री और पुरुष के बीच में आर्थिक सम्बन्ध के रूप में मानती हूँ। यह सुनकर विशुद्ध प्रेम के सम्बन्ध में रमेश की जो सात्विक धारणा थी वह चूर-चूर हो जाती है और वह अपना मानसिक संतुलन खो बैठता है।

प्रस्तुत उपन्यास के पूर्वार्द्ध की यही कथा है। कथानक आकर्षक है इसमें कोई सन्देह नहीं। किन्तु उपन्यास के इस भाग की अपनी कुछ कमजोरियाँ भी हैं। सबसे पहली तो यह कि इस भाग में रमेश की अपेक्षा अजित प्रमुख पात्र प्रतीत होने लगता है और हम यही आशा रखते हैं कि वही इस उपन्यास का नायक होगा। रमेश उसके सामने फीका फीका और व्यक्तित्वहीन सा लगता है। या हम यह भी कह सकते हैं कि अजित के प्रखर व्यक्तित्व के सामने रमेश का व्यक्तित्व छिप गया है। प्रभा का प्रभावशाली अजित की ओर आकर्षित न होकर, रमेश की ओर आकर्षित होना ऊपर से कुछ विचित्र सा लगता है। किन्तु यह अस्वाभाविक नहीं है। एक तो जब अजित को मालूम होता है कि रमेश प्रभा से बुरी तरह प्रेम करता है तो स्वयं उस ओर से हट जाता है। इसके अतिरिक्त प्रखर बुद्धि में रमेश सब विद्यार्थियों से आगे है इसलिए प्रभा का उसकी ओर आकर्षित होना अस्वाभाविक नहीं है। फिर कदाचित् प्रभा के अन्तर्मन में रमेश की ओर आकर्षित होते समय यह बात भी उठी होगी कि जहाँ अजित उसे अपने इशारे पर नचायगा वहाँ रमेश उसके इशारे पर नाचेगा।

किन्तु प्रभा का रमेश की ओर आकर्षित होना ही रमेश को महत्त्व देने के लिए पर्याप्त नहीं है। वस्तुतः प्रथम खण्ड तक हम यह निश्चय नहीं कर पाते कि उपन्यास का नायक अजित है या रमेश। लेखक कथानक तक में रमेश को प्रमुखता देने में असमर्थ रहा है। सम्पूर्ण कथानक रमेश के चारों ओर नहीं, अजित के साथ-साथ घूमता है। पहले खंड के आठवें नवें और दसवें परिच्छेद की कथा का केन्द्र अजित ही है रमेश नहीं। अजित और लीला की प्रणय-क्रीडा को प्रश्रय देने के निमित्त ही लेखक प्रभा के जन्मदिन का उत्सव और सुन्दरनी रात में अजित, लीला और अविनाश का भ्रमण दिखाता है। लेखक के संकेत तथा अजित एवं रमेश की परस्पर बातचीत से यह अवश्य प्रतिभासित होता है कि रमेश और प्रभा में प्रेम का आदान प्रदान हो रहा है किन्तु इसका कोई एक भी चित्र हमारे सामने नहीं आता जैसा अजित और लीला की गति विधि का चित्र मिलता है। रमेश का लज्जाशील स्वभाव इसका एक कारण अवश्य है।

दान वर्ष के प्रथम खंड में विद्यार्थी जीवन, यूनिवर्सिटी कालेज की हलचलें बड़ी यथार्थ और मनोरम हैं। लेखक ने स्वयं यह जीवन बिताया है। कदाचित् वह उपन्यास के पात्रों के सम्पर्क में भी रहा है। फलतः उसके चित्रण और वर्णन में सच्चाई है। वर्णन में स्थानीय रंग भरकर तो उसने उपन्यास का आकर्षण और भी अधिक बढ़ा लिया है। कई स्थलों पर उसने 'जुलाई' के प्रथम सप्ताह में यूनिवर्सिटी खुलने के दिन का उत्साह से वर्णन किया है 'जिन्हें

कुछ लोग प्रयाग का यूनिवर्सिटी एरिया कहते पर जन साधारण मे जो मुम्फोर्ड कटरा और कर्नलगज के नाम से प्रसिद्ध है मार्च से दो महीने बिल्कुल उजाड रहते हैं। इस स्थान पर चहल-पहल और इसका जीवन विद्यार्थियो के कारण है।

जुलाई के प्रथम सप्ताह मे ही फिर से इस स्थान पर कुछ-कुछ जीवन का स्पन्दन मालूम होने लगता है। दुकानदारो के चेहरे पर कुछ रूप आ जाता है सडको पर हंसी के ठहाके उठने लगते हैं और साथ ही प्रयाग की भयानक गर्मी मे भी वर्षा के कारण कमी आने लगती है।

विद्यार्थियो के परस्पर वार्तालाप और उनकी बातचीत के विषय तथा हास्टल जीवन की गति विधि मे छात्र विद्यार्थी जीवन मुखर हो उठा है। विशेषता यह है कि विद्यार्थियो की परस्पर बातचीत स्वाभाविक होने पर भी निरुद्देश्य नही है। प्रसगवश बातचीत का जो विषय उठ खडा होता है वह अजित या रमेश के चरित्र प्रकाशन का अवसर देता है। प्यार और पुण्य प्रेम और विवाह के सम्बन्ध मे दोनो के विचार क्या हैं और इन धारणाओ की प्रेरणा से वे कैसा आचरण करेगे या करते हैं यह व्यक्त हो जाता है। इसके लिए वर्मा जी बडा सुदर प्रसङ्ग रखते हैं जिसमे बातचीत मे कृत्रिमता न आ जाय। प्रेम और विवाह के सम्बन्ध मे रमेश के विचार जानने के लिए लेखक कृष्णानन्द नामक विद्यार्थी की सगाई का प्रसङ्ग उठाता है। वह अपने पिता द्वारा चुनी हुई लडकी से विवाह करे ने या नहा इस समस्या को लेकर वह रमेश और अजित के पास आता है और तब रमेश कहता है कि प्रेम ईश्वरीय है—प्रेम ही जीवन है दो आत्माओ का बन्धन है। प्रेम मे ही ससार स्थित है प्रेम आदि है प्रेम अनन्त है। प्रेम ही मनुष्य का प्राण है। और फिर अजित से यह पूछवाकर कि रमेश ! क्या तुम वास्तव मे प्रभा से प्रेम करते हो ? लेखक यह भी उद्घाटित कर देता है कि रमेश प्रभा से प्रेम करता है।

किन्तु तीन वर्ष मे एक स्थल पर वार्तालाप वाद विवाद और भाषण के रूप मे हो जाने के कारण अस्वाभाविक हो गया है। कृष्णमूर्ति का भाषण सुनने के बाद विद्यार्थियो मे वाद विवाद उठना स्वाभाविक है किन्तु उस विवाद को आठ पृष्ठो मे लम्बा बनाकर लेखक ने नीरसता का सृजन ही किया है। यह स्थल उपन्यास के कथानक मे शिथिलता उत्पन्न करने का कारण बना है।

तथापि इस बात का अस्वीकार नहीं किया जा सकता कि प्रस्तुत उपन्यास के पहले खड के कथानक की गति अत्यन्त तीव्र है। इसके कथानक मे नवीनता

एक कुतूहल व्याप्त है। किन्तु उपन्यास के दूसरे खंड में लेखक किसी प्रकार की मौलिकता नहीं दे पाता है। यह खंड पूर्णतया शरत्चन्द्र के 'देवदास' के उत्तरार्ध वाले भाग पर आधारित है। प्रेम में निराश हो देवदास की भाँति ही रमेश शराबी और वेश्यागामी बन जाता है। असफल प्रेम की प्रतिक्रिया-स्वरूप देवदास और रमेश अपना अपना मानसिक सन्तुलन खो बैठते हैं। अन्तर केवल इतना है कि जहाँ देवदास स्वयं अपने इस परिणाम का उत्तरदायी है वहाँ रमेश की परिस्थितियाँ उसकी दुर्गति की उत्तरदायी हैं। जहाँ देवदास की प्रेमिका पारो प्यार, त्याग और ममता की मूर्ति है वहाँ रमेश की प्रेमिका धन की गुलाम है। इस अन्तर के अतिरिक्त देवदास और तीन वर्ष के इस खंड वाले कथानक में कोई भिन्नता नहीं है। देवदास जिस भाँति वेश्या चन्द्रमुखी का अपमान और अवहेलना करता है ठीक उसी आशय के वाक्य कहकर रमेश वेश्या सरोज को दुत्कारता है। क्रमशः देवदास को चन्द्रमुखी प्यार करने लगती है वैसे ही सरोज रमेश को प्यार करने लगती है। देवदास के अन्त के दिनों काल में जिस भाँति चन्द्रमुखी के लिए प्यार उमड़ने लगता है रमेश के हृदय में भी ऐसा ही कुछ होता है। दोनों की कहानी के अन्त भले ही भिन्न भिन्न हों, किन्तु उनके बीच वाले इतिवृत्त में किंचित मात्र भी अन्तर नहीं है। यह अवश्य है कि 'देवदास' के अन्त में जहाँ मन पारो के प्रति श्रद्धा से भर उठता है वहीं 'तीन-वर्ष' में उसके विरुद्ध घृणा होता है। इसका कारण यह है कि देवदास की पारो ग्राम की निश्छल हृदया युवती है तीन वर्ष की प्रभा आधुनिक सभ्यता में पली आधुनिक नवयुवती जिसमें अपने वातावरण की तमाम विकृतियाँ मौजूद हैं। इतना साम्य होने पर भी 'देवदास' और 'तीन वर्ष' की अवस्था में अन्तर है। तीन वर्ष में मौलिकता अवश्य है किन्तु वह 'देवदास' की मन प्राणों को छू जाने वाली संवेदना उत्पन्न नहीं कर पाता। जहाँ तक कथा संगठन का प्रश्न है पहले खण्ड की अपेक्षा दूसरे खण्ड का कथा-संगठन अधिक कसा हुआ है। पहले खण्ड में आये अजित और अखिलेश वाले प्रसङ्ग सर्वथा अनावश्यक भले ही नहीं कहे जा सकते हों किन्तु अजित की गप्पबाजी में मनगढ़न्त चीता पकड़ने का उपक्रम करना और मगर को मारने की कहानी कहना तथा अखिलेश का शेर का शिकार करने की कहानी सुनाना रोचक भले ही हों कथानक में वे आवश्यक नहीं है। किन्तु उपन्यास के दूसरे भाग में कथानक में शिथिलता उत्पन्न करने वाली बातों का अभाव है। विनोद के साथ इनाम बिहारी और बनवारी की हरकतों के प्रति रमेश की प्रति-क्रियात्मक-आचरण व्यर्थ नहीं है उसके चरित्र उद्घाटन का साधन बना है।

आवारा, शराबी और वेश्यागामी समूह का चित्रण करने म वर्मा जी अत्यन्त सफल हुए हैं। इससे इस वातावरण का यथाथ चित्र हमारे सामने आया है। देवदास म इस वातावरण का चित्रण करने के प्रति सजग उदासीन रहा है। तीन वष म इस चित्रण स सजीवता और स्वाभाविकता उत्पन्न हुई है।

तीन वष क आदि और अन्त वाले भाग अत्यन्त आकषक हैं। कथानक लेखक क मस्तिष्क म निश्चय ही सुनियोजित है फिर भी सम्पूण कथा का विकास अपना-स्वाभाविक गति स हुआ है। पात्रा क आचरण की क्रिया प्रति क्रिया ने कथा विकास को अग्रसर किया है। जहाँ तक वस्तु विन्यास का प्रश्न है उसम यथष्ट कसाव है। अनावश्यक इतिवृत्त और पात्रा का निर्माण जहाँ तक हो सका है लेखक ने नही किया है। वह स्थिति के उसी अश का चित्रण करता है जो कथानक तथा किसी पात्र से सीधा सम्बन्ध रखता है। सयोग तथा आकस्मिक घटनाओ का सहारा इसम भी उसने यथा-सम्भव लिया है। किन्तु इसके सयोग और घटनाए वैसी नाटकीयता लिए हुए नहा है जैसी चित्रलेखा और बाद के उपन्यास आखिरी दाँव मे है। इनमे कृत्रिमता का बोध हम किसी प्रकार नहा होता।

तीन वष मे यह बात सबसे अधिक खटकती है कि रमेश शहरी वातावरण और उच्च वग की सभ्यता मे इतनी जल्दी घुलमिल जाता है जैसे वह सदैव से उसका आदी रहा हो। क्या इसके लिए उसका बाह्य और आतरिक सघष दिखाना अपेक्षित नहा है। नित्य विधिवत पूजा-पाठ और निरामिष भोजन करने वाला सीधा-सादा युवक कैसे एकाएक अण्डा गोश्त खाने लगता है इस लेखक ने बड साधारण ढग स अजित की हसी म उडा दिया है।

रमेश ने चाय पाते हुए केक की तश्तरी की तरफ इशारा करके पूछा

यह क्या है ?

मिठाई। हिन्दुस्तानी नहा बल्कि अग्रेजी मिठाई। लेकिन मुझे बडी अच्छी लगती है।

रमेश न फिर पूछा यह किसने बनाया ?

'मेरे कुक ने

रमेश ने केक आरम्भ किया। अच्छी बनी है इसे क्या कहते हैं ?'

इसे केक कहते हैं।

'यही वेन है। रमश का मानो विच्छू ने डक मार लिया हो, वह में तो अंडे भी पड़ते हैं ?

हाँ इसमें हज क्या है ?

रमश उठ खड़ा हुआ। 'आपने मुझे पहिले हो क्यों नहीं बतलाया ? आपने मुझे अंडा खिलाकर मेरा धर्म ले लिया। आप तो विलायत में भ्रष्ट हो चुके हैं, लेकिन मुझे आपको बतला देना चाहिए था।

अण्डे खाने से क्या धर्म भी जाता है ? अजित कुमार ने आश्चर्य से पूछा। पर एक क्षण में ही आश्चर्य दूर हो गया आँखों में शरारत की चमक आ गई तो फिर गाय का मूत्र और गोबर पी लेना अच्छा। इस बार उसने सामने की ओर मुख किया वह छोड़ दी। यह काश्मीर की नयी तश्तरी थी गाना।

रमश ने चाय का प्याला रख दिया कहा मैं आपके यहाँ कुछ भी न खाऊँगा।

अजित कुमार ने खड़े होकर रमश की ठोडी पर हाथ लगाते हुए कहा भाई गलती हो गई, माफी माँगता हूँ। अब तो खाओ, देखो इतना नाराज न हो।'

रमश बैठ गया, उसने आमलेट खाना आरम्भ किया। यह बड़ा अच्छी तरकारी है इसका नाम क्या है ?

इस प्रकार अपनी अज्ञानता और बेवकूफी से पड़कर रमश यह सब खाना खाता जाता है। लड़कियों से बैठकर घण्टों बातचीत करना, सिनेमा देखना और सिविल लाइन्स के चक्कर लगाने का भी वह एक ही दिन में ऐसा अभ्यस्त हो जाता है, जैसे बचपन से वह वैसा जीवन बिताता आया हो। माना कि अजित की जबरदस्ती के सामने उसकी कुछ नहीं चल पाता। अजित [illegible] एक ऐसा आकर्षण है, ऐसा सम्मोहन है कि उसकी ओर वह बरबस खिंच जाता है। किन्तु उसके दिल मानसिक संघर्ष न उठना सर्वथा अस्वाभाविक है। यह सच ही हो कि यह स्वच्छन्द जीवन और वातावरण रमश को आकर्षक लगता है और इसलिए वह उसे अपनाता चला जाता है। अन्त में वह इस जीवन का इतना अभ्यस्त हो जाता है कि अपनी वास्तविक स्थिति तक उसे याद नहीं रहती। उसके बाहरी आचार-विचार एकदम बदल जाते हैं, किन्तु उसकी आत्मा नहीं बदलती। और एकनिष्ठ प्रेम पर विश्वास करने वाला वह भोला भाला नव युवक प्रभा से प्रेम-याचना कर बैठता है। किन्तु आशा के विपरीत जब वह प्रभा

स अपमानित होता है तो उसका सारा उन्माद जाता रहता है। रमेश की इस मानसिक प्रतिक्रिया और इससे उत्पन्न असंतुलित आचरण का लेखक ने बड़ा सफल चित्रण किया है। तीन वर्ष बाद यह स्थल सबसे अधिक सजीव है। प्रभा की ओर से निराश होकर उसे अजित पर क्रोध आता है जिसने उसे नये वातावरण में डाल कर उसका अभ्यस्त बना दिया। वह अजित की जेब में पिस्तौल निकाल उसे मारने के लिए झपटपड़ता है और कर्कश स्वर में कहता है अजित तुम मनुष्य नहीं हो शैतान हो। मैं इस समय पागल हो गया हूँ और जानते हो मेरे पागलपन का उत्तरदायित्व तुम पर है। तुम मेरे जीवन में क्या आये ?

रमेश का स्वर आवेश से काँपने लगा।

मैं सुखी था—अज्ञान के अन्धकार में और विश्वास की गोद में पल रहा था मेरे जीवन में शान्ति थी। मैं जिस समाज में था वह अच्छा था। तुमने मुझे उससे क्यों निकाला—तुमने मुझे एक सुन्दर स्वर्ग के समान समाज से निकालकर इस नरक के तुल्य समाज में क्यों डाल दिया जहाँ लोग पशुओं से गए बीते हैं धन का पिचाश जहाँ सब को गुलाम बनाए हुए है। तुम्हारा यह अभिशापित समाज तुम्हारी यह अभिशापित संस्कृति मुझे न चाहिए थी, मनुष्यता से निकाल कर तुमने मुझे पशुता में क्यों डाल दिया ? जानते हो अजित तुमने मेरे विश्वासों को चूर चूर कर दिया मेरी आत्मा का तुमने गला घोट दिया—यह सब तुमने किया। तुमने मेरा मानसिक हत्या की है यदि अब तुम मेरे सामने से नहीं चले जाते तो मैं तुम्हारी शारीरिक हत्या कर दूंगा।

और उसके मन की यह प्रतिक्रिया यहीं समाप्त नहीं हो जाती। कानपुर जाकर भी उसे शान्ति नहीं मिलती। उसके जीवन का यह अनुभव उसे बताता है कि दुनिया में पैसे का ही साम्राज्य है प्रत्येक व्यक्ति को पैसे की गुलामी करनी पड़ती है। ऐसी हालत में अपने व्यक्तित्व को बनाए रखना अपने को पीड़ित करना है दुखी होना है। फिर वह अपने अतीत को पूरी तरह भुला देता है। वह अपनी इच्छा से अपने को गिराकर पशुवत् आचरण करने का प्रयास करता है। इसके लिए उसे शराब पीनी पड़ती है जिससे वह अपनी मनुष्यता को भूल सके और नरक के कीड़ा के साथ बिना ग्लानि के विचर सके। वह अपना पतन अपने हाथों करता है स्वाभिमानवश अहम्मन्यतावश। प्रेम पर से उसका विश्वास उठ जाता है और जब सरोज कहती है कि वह उससे प्रेम करती है तो उसके मन की कोमल रेखाएं लोप हो जाती हैं और उसके जीवन की कटुता एवं भयानक तथा कर्कश व्यंग्य बनकर उबल पड़ती है प्रेम !

सरोज ! दुनिया में प्रेम है कहाँ ? जो कुछ है वह पैसा है। पैसा सब कुछ खरीद सकता है—मनुष्य की आत्मा तक। तुम इसे क्या जानती हो ? रुपया ही शक्ति है रुपया ही मुक्ति है। और प्रेम—एक कामना है। और इसलिए 'प्रेम ही जीवन है' कहने वाला रमेश अनास्थावादी बन जाता है और सरोज के सच्चे प्यार को ठुकराकर चला जाता है। क्योंकि जो ठोकर खा चुका है उसमें प्रेम को पहचानने की क्षमता नहीं रह जाती। रमेश के इस सारे आचरण में मनोवैज्ञानिकता और स्वाभाविकता है।

लेखक ने अजित का सृजन रमेश के लिए परिस्थिति उत्पन्न करने के साधन के रूप में किया है। किन्तु उसका अपना व्यक्तित्व है, जो रमेश से कहीं अधिक आकर्षक है। उसका आचरण अन्य ढंग का है किन्तु हृदय की स्वच्छता और निश्छलता उसके व्यक्तित्व का सबसे अधिक आकर्षक गुण है। उसकी मान्यताएँ स्पष्ट और विचार सुलझे हुए हैं। विभिन्न देशों और विभिन्न स्तर के व्यक्तियों के सम्पर्क में आकर उसने जीवन का व्यावहारिक ज्ञान प्राप्त कर लिया है और इसलिए उसे स्वस्थ जीवन जीना आता है। लेखक के शब्दों में अजितकुमार ने संसार देखा था, अच्छाइयों और बुराइयों दोनों का अनुभव के बाद अनुभव एक दूसरे के विपरीत अजित कुमार किसी अंश में इन अनुभवों के प्रति उदासीन हो गया था। पर उसकी उदासीनता असभ्यता भी न थी उसकी उदासीनता का एक दार्शनिक रूप था। अजित कुमार जानता था वह जीवन को पहचानता था, और पहचानने के साथ ही उसे अपनाना भी जानता था। उसका प्रत्येक क्षण उसके लिए नया था, प्रत्येक क्षण में उसकी उत्सुकता उमड़ी पड़ती थी प्रत्येक क्षण में नया अनुराग और नया जीवन था।

अजित का व्यक्तित्व बड़ा प्रभावशाली है किन्तु उसके चरित्र की एक असंगति हमें बार-बार खटकती है। वह भीतर से कुछ और है और बाहर से कुछ और। उसके व्यक्तित्व के दो रूप हैं—एक आन्तरिक, दूसरा बाह्य। उसका आन्तरिक व्यक्तित्व पुरातन भारतीय-संस्कृति का उपासक है और बाह्य पाश्चात्य-सभ्यता के रंग में रंगा हुआ। हृदय से वह पुरातन भारतीय आदर्शों को उचित मानता है, किन्तु वह बाहर से उच्छृंखल आचरण करता है। वह स्वच्छन्द प्रेम पर विश्वास नहीं करता। वह कहता है पर जिसे हम प्रेम कहते हैं वह विवाह के बाद की बात है उसके पहले का रूप। दूसरी ओर वह माला से प्रणय चेष्टाएँ करता है और कहता है कि मैं तुमसे प्रेम करता हूँ मन ही मन मौज और खेल के लिए प्रेम करता हो। किन्तु क्या यह उसके स्वभाव और आचरण की असंगति नहीं है ? यदि नहीं वह स्त्री का सम्मान

समझता है गुलाम समझता है क्योंकि वह पुरुष से दुर्बल है। इसलिए स्त्री पुरुष के समान अधिकार पर वह विश्वास नहीं करता। उपर्युक्त विचारों के होते हुए भी वह प्रभा और लीला के साथ स्वच्छन्द विचरण करता है। यह भी उसके चरित्र की असंगति है। उन्मुक्त स्वभाव के जिस अजित को युवतियों से बातें करने में मनोरंजन होता हो, वह विवाह जैसे संयत विधान को कैसे मान सकता है? और रमेश के साथ तो जैसे वह अभिभावक बनकर आता है। इसलिए कुछ आलोचकों का यह आरोप ठीक प्रतीत होता है कि अजित रमेश का भाग्य निर्माता बन बैठा है।

जहां तक नारी चरित्रों का सम्बन्ध है प्रभा और सरोज के रूप में लेखक ने दो विपरीत प्रकार की स्त्रियों का चित्रण किया है। प्रभा सभ्य-समाज की सम्मानित नारी होते हुए भी वेश्या से गयी-बीती है और सरोज समाज उपेक्षित वेश्या होने पर भी प्रेम के मूल्य को जानती है। दूध का जला छांछ फूंक फूंक कर पीता है—रमेश प्रभा जैसी नारी के सम्पर्क में आकर सरोज के प्रेम की पवित्रता को नहीं समझ पाता। किन्तु बाद में उसे ज्ञात होता है कि सरोज का प्रेम रुपए पैसों से नहीं खरीदा जा सकता। उसका प्रेम रुपयों से बहुत ऊंचा है।

चरित्र चित्रण प्रणाली की दृष्टि से तीन वर्ष में भी वर्माजी पात्रों का औपचारिक परिचय देने से अपने को नहीं रोक सके हैं। रमेश और अजित का उन्होंने विस्तार से परिचयात्मक विवरण प्रस्तुत किया है। प्रभा और उसकी महेला लाला आदि का भी उन्होंने औपचारिक परिचय दिया है। इससे पाठक चरित्र के सम्बन्ध में पूर्वाग्रह से अनायास ही ग्रस्त हो उठता है। पात्रों का आन्तरिक विश्लेषण भी उसने बहुत कम मात्रा में दिखलाया है। किन्तु आत्म विश्लेषणात्मक चरित्र चित्रण भले ही न हो पर पात्रों के बाह्य और मानसिक द्वन्द्व का लेखक ने उनकी क्रिया प्रतिक्रियाओं द्वारा ही व्यक्त किया है। वहां उसे अपनी ओर से अधिक कुछ कहने की आवश्यकता नहीं हुई है। पात्रों के कथोपकथनों द्वारा चरित्रों का प्रकाशन हुआ है। यहां लेखक की अपनी ओर से टीका टिप्पणी नहीं है। कई स्थलों पर उसने दूसरे पात्रों द्वारा भी चरित्र पर प्रकाश डलवाया है। अजित रमेश और प्रभा के चरित्र की कितनी ही विशेषताओं का उद्घाटन करता है। आत्म प्रलाप के रूप में भी कतिपय स्थलों पर पात्रों की मनोदशा और मनोग्रंथि का परिचय मिला है। रमेश अपनी मानसिक प्रतिक्रिया के विषय स्वयं कहता है कि "मैं शराब इसलिए पीता हूं कि जिससे अपने को भूल सकूं अपनी बेहोशी में संसार को डुबा सकूं—खुद नरक का कीड़ा बन सकूं।

कतिपय आलोचकों ने 'तीन वर्ष' पर कुछ आरोप लगाये हैं। उनका कथन है कि 'तीन वर्ष' के पात्र स्थितियाँ और भावनाएं नितान्त अस्वाभाविक और असत्य हैं। किन्तु इस आरोप में सत्य का अल्पांश ही निहित है। वस्तुतः 'तीन वर्ष' में हमें युग-सत्य की झाँकी मिलती है। पूँजीवादी सभ्यता से पैदा हुआ सब कुछ है और उस वातावरण में पड़कर व्यक्ति पथभ्रष्ट हो जाता है यह यहाँ स्पष्ट प्रतिबिम्बित है। यह अवश्य है कि वर्मा जी ने औपचारिक परिस्थितियों में डालकर पात्रों का चरित्रोद्घाटन किया है। किन्तु औपचारिक स्थितियाँ कौन-सा रचनाकार निर्मित नहीं करता? चरित्र के आवरण को एकाएक फूट पड़ने के लिए प्रेरित करने के लिए किसी-न-किसी बाह्य या मानसिक स्थिति का निर्माण तो उसे करना ही पड़ता है। यह लेखक के कला कौशल पर निर्भर है कि वह इन स्थितियों को कहाँ तक कृत्रिम होने से बचाये रखता है। वर्मा जी ने अनौपचारिक तथा औपचारिक अनेक स्थितियों का निर्माण अवश्य किया है पर वे वैसी अस्वाभाविक एवं कृत्रिम नहीं बन पायी हैं जैसा कि आलोचक उन्हें बताते हैं। इन स्थितियों में पड़कर पात्रों का चरित्र धीरे-धीरे प्रकाश में आया है। अजित रमेश तथा प्रभा का पारस्परिक परिचय औपचारिक स्थितियों से आरम्भ होता है और अन्त तक उसी रूप में बना रहता है। यह स्वाभाविक है क्योंकि संकोची स्वभाव का रमेश युवती से अनौपचारिक भेंट कर ही नहीं सकता। अजित अनौपचारिक भेंट अवश्य कर सकता था किन्तु जिस समाज में वह रहता है, उसमें औपचारिकता जीवन का अभिन्न अंग बन चुकी है। फिर यह जानते हुए कि रमेश प्रभा की ओर आकर्षित है वह उस ओर पग बढ़ा ही नहीं सकता। उपन्यास के उत्तरार्ध की सारी स्थितियाँ अनौपचारिक हैं, क्योंकि तब तक रमेश उन्मुक्त बन गया होता है।

'तीन वर्ष' एक रोचक उपन्यास है और उसका आनन्द उठाने के लिए पाठक को उस प्रकार का बौद्धिक प्रयास नहीं करना पड़ता जैसा 'चित्रलेखा' के लिए करना पड़ता है। पाठक की रुचि बनाये रखने के लिए उसमें पर्याप्त उत्सुकता, कुतूहल, मनोरंजन की सामग्री है। इसमें सामान्य पाठक की भावना पर संवेदना वाला अंश भी प्रचुर मात्रा में है। सम्पूर्ण कथानक में एक प्रवाह है जो अपने साथ पाठकों को बहा ले जाता है।

टेढ़े-मेढ़ रास्ते (१९४६)

टेढ़े मेढ़े रास्ते विशुद्ध राजनतिक उपन्यास है और तत्कालीन राजनतिक उपन्यासो मे अत्यन्त विशाल और प्रौढ़ कृति भी। प्रेमचन्द ने अपने उपन्यासो म भी राजनतिक समस्याए उठायी है पर वे सामाजिक समस्याओ की अग मात्र हैं अर्थात् दोनो समस्याए एकाकार हो गयी हैं। दूसरे शब्दो म प्रेमचन्द ने राजनतिक समस्याओ को छुआ भर है उनका गहन एव विस्तृत अकन नही किया। यशपाल के उपन्यासो को छोडकर अन्य किसी मे राजनतिक समस्या का गहन अकन नही मिलता। यशपाल ने भी एक विशिष्ट वाद को लेकर लिखा है। टेढ़े मेढ़े रास्ते इस अर्थ म अपनी विशिष्टता रखता है। तद्युगीन राजनतिक परिस्थिति का जितना यथार्थ अकन इसमे हुआ है वह अन्यत्र दुलभ है। वर्माजी ने तत्कालीन प्रत्येक राजनतिक दल की नस को पहचाना है। इसलिए वे उनकी गतिविधियो और कायक्रमो का इतना सच्चा अकन कर सके हैं जैसे उनमे उन्होने भाग लिया हो। यही नही तत्सम्बन्धी विवरण बडे साकार और रोचक बन पडे हैं। काग्रेस की मीटिंग उसके जलूस उसके कार्यकर्ताओ की गति विधिया और पारस्परिक विचार विनिमय मनोरजक होने के साथ साथ यथार्थ भी हैं। सरकार काग्रेसियो को गिरफ्तार करती जा रही है और जेल मे भरती होने के लिए लोगो की कमी पड रही है इस समस्या को कैसे हल किया जाय इस पर वर्मा जी ने कैसा चिन्तापूर्ण पर व्यावहारिक हल के साथ व्यंग्यात्मक चित्र खीचा है

हमारे सामने सवाल यह है कि क्या किया जाय। हम तैयार रहना चाहिए कि सरकार लोगो को गिरफ्तार करती जाय और लोग बराबर सामने आते चले जाय। जिस समय लोगो का आना बन्द हो जायगा हमारी हार हो जाएगी।

थोडी देर तक वहाँ मौन छा गया। सब सोच रहे थे। इस मौन को मार्कण्डेय ने भग किया लोगो को तैयार किया जाय अधिक से अधिक आदमी दफ्तरो म भरती किये जाय।

'लोगों को किस तरह तैयार किया जाय?' राजकिशोर ने पूछा।

'उन्हें रुपए देकर। उन्हें बल खाने के काम पर नौकर रखकर' मार्कण्डेय ने मुस्कराते हुए कहा।

'मैं इसका विरोध करता हूँ। किराए के आदमियों से मूवमेंट चलाना हमारी नैतिकता का पतन जाहिर करता है।' भावुकता के वश में आकर श्री रायकृष्ण बोल उठे।

मार्कण्डेय अभी तक मौन रहा था। उसने कहा 'आप बेकार भावुकता के चक्कर में पड़े हैं। जरा बातों को ठीक तरह से देखिए और उन पर ठंडे दिमाग से गौर कीजिए। अगर आपको लड़ने के लिए सिपाही नहीं मिल रहे हैं तो इसमें बातों का कोई अर्थ नहीं और न हिन्दुस्तान की नैतिकता का ही कोई सवाल है। आखिर ये जन जान बाज वालण्टियर सिपाही ही तो हैं। वेतन देकर आदमियों में से अगर सभी आदमी लड़ने के लिए आगे आ जाय, सभी मरने मिटने को तैयार हो जाय तो हम सारे विश्व विजयी हो सकते हैं। लेकिन दुनिया में कहीं भी यह सम्भव नहीं। अगर वेतन देकर आदमियों से वेतन की आशा छोड़कर काम करने और लड़ने को मिल जाय तो बहुत बड़ी बात होगी। दुनिया के उन्नत से उन्नत राष्ट्रों में भी मुफ्त काम करने वाले नहीं मिलते। सभी जगह तनख्वाहों पर सिपाही नौकर रखे जाते हैं। और इसलिए अगर कांग्रेस मजबूरी की हालत में तनख्वाह देकर लड़ने वाले सिपाही रखती है तो इसमें हर्ज ही क्या है?'

इसी भाँति लेबर मूवमेंट, मजदूर सभाओं और क्रान्तिकारियों की मीटिंग के जो दृश्य कथाकार ने प्रस्तुत किए हैं, वे वस्तुपूर्ण हैं। [illegible] को कुछ समय के लिए जेल जाने से रोकने के लिए उमानाथ महादेव से जो अभिनय कराता है, वह हास्यास्पद होते हुए भी, उस समय की परिस्थिति के अनुकूल है। इसी प्रकार उमानाथ और उसके साथी क्रान्तिकारियों की सभाएँ और हलचल भी तत्कालीन वातावरण के अनुकूल हैं।

'टेढ़े-मेढ़े रास्ते' का कथानक अत्यन्त विशाल है। यद्यपि इसमें विस्तार की सम्भावना अधिक नहीं थी। फिर भी विषय में स्पष्टता, चरित्रांकन में सुन्दरता और सम्बद्धता लाने के लिए लेखक ने अनेक अवान्तर घटनाओं और इतिवृत्त की नियोजना कर डाली है। परन्तु इस प्रकार का सरल इतिवृत्त अपना महत्त्व रखता है। यहाँ तो यह गौरव नहीं हुआ है। यद्यपि एक-दो स्थलों पर अनावश्यक विस्तार अवश्य दिख जाता है। कथानक का विस्तार हमें प्रारम्भ

से ही दिखने लगता है। दयानाथ की बैठक में कांग्रेस के दस सदस्यों का विस्तृत वर्णन रोचक भले ही हो पर है वह अनावश्यक ही। इसके बाद आता है प्रभानाथ का कलकत्ता भ्रमण। इसमें तो लेखक ने और अनावश्यक घटनाओं और प्रसंगों की सृष्टि कर दी है। किन्तु इस विस्तार को हम किसी भी भाँति अनावश्यक और निरुद्देश्य नहीं कह सकते। प्रभानाथ को कलकत्ता पहुँचाकर वर्माजी बड़ी रुचि के साथ कलकत्ते का विस्तार-पूर्वक वर्णन करने लगते हैं। १९३७ से १९४२ तक वे कलकत्ता में रहे थे और वहाँ उन्होंने जो अनुभव प्राप्त किये उनको व्यक्त करने का मोह वे नहीं छोड़ सके। फलतः इस उपन्यास में उसका उपयुक्त अवसर उन्होंने निकाल ही लिया। कलकत्ता के स्थानीय वर्णन बड़े चटकील और सूक्ष्म हैं। अपने अनुभव के आधार पर तीन पृष्ठों में विश्लेषणात्मक शैली में लेखक ने कलकत्ते के जीवन का यथार्थ चित्रण किया है। हिन्दुस्तान के बड़े शहरों—विशेषकर औद्योगिक शहरों में उच्च, मध्य और निम्न वर्ग का सामाजिक और पारिवारिक जीवन क्या है—इससे हम यहाँ परिचय प्राप्त करते हैं। और ऐसे शहर में आकर एक नवागत को जो अनुभव प्राप्त होने चाहिए वे सब प्रभानाथ को होते हैं। यहाँ वर्माजी ने संयोगों का सहारा लिया है। भारत की गरीबी लूट खसोट बेकारी दिखाने के लिए प्रभानाथ को झकझोर देने वाली घटना एक के बाद एक संयोग-वश होती जाती है। रिक्शा वाले का दम तोड़ना बंगाली युवक की आत्महत्या प्रतिभा का बलिदान प्रभानाथ को एक नयी दुनिया दिखाते हैं जिससे अभी तक यह अबाध युवक परिचित न था वीणा प्रतिभा वह बंगाली युवक जिसका नाम सोमेन था—और वह रिक्शा वाला। इनमें से हर एक व्यक्ति अपना व्यक्तित्व लिए हुए था हर एक व्यक्ति हिन्दुस्तान की ही नहीं मानवता की दुरावस्था पर प्रकाश डाल रहा था हर एक व्यक्ति प्रभानाथ की सोई हुई चेतना पर प्रहार कर रहा था। होटल का खाना होटल का सुख। यह सब पाशविक हंसी हंस रहे थे, मानवता का उपहास कर रहे थे। और इसी पाशविकता के वातावरण में प्रभानाथ की आत्मा मनुष्यता का मनन कर रही थी उसको समझने की कोशिश कर रही थी उसको अपनाने का संकल्प कर रही थी।

स्पष्ट है प्रभानाथ का कलकत्ता भ्रमण किसी भी अर्थ में निरुद्देश्य नहीं है। इससे उपन्यास के कथानक को प्रवाह मिला है चरित्र विकास का अवसर मिला है। उपन्यास के कई मुख्य पात्रों का परिचय भी इसी संदर्भ में हुआ है। प्रभानाथ वीणा के सम्पर्क में यहीं आता है और उसके चरित्र की मूल विशेषता

से परिचित होता है। उमानाथ और उनके साथ मार्टीमन के विचार गति विधियाँ तथा कार्यक्रमों की रूपरेखा भी यहाँ बनती है।

उपन्यास के प्रत्येक पात्र की अपनी दिशा और अपना कार्य-क्रम है। फलतः उनके कार्य-क्रमों के अनुसार कथानक एक स्थान से दूसरे स्थान पर घूमता रहता है। प्रभानाथ, उमानाथ और बाद में वीणा जब कलकत्ता छोड़कर आ जाते हैं तब कथानक फिर से वापस कलकत्ता नहीं जाता। वहाँ से आकर इन तीनों और इनके सहयोगियों का कार्यस्थल कानपुर बन जाता है। कानपुर के स्थानों पर और उन्नाव तथा उससे सम्बंधित अन्य गाँवों के चारों ओर कथा भर घूमता है। यहाँ प्रत्येक पात्र के कार्य-क्रमों का रूप क्रियात्मक रूप हमें देखने को मिलता है। दयानाथ और उनके सहयोगी कांग्रेस के मत के मूर्तिमान रूप हैं। उनमें क्रियात्मकता इतनी अधिक नहीं है जितनी सैद्धान्तिकता है। उमानाथ और प्रभानाथ के सिद्धान्त अधिक क्रियात्मक रूप धारण करते हैं। प्रभानाथ और उनके साथी सबसे अधिक क्रियाशील तथा सफल रहे हैं और अन्त तक वे निरुत्साहित नहीं होते। उमानाथ विचारों से जितना उत्साही है कार्य रूप में उसका उत्साह उतना तीव्र नहीं है। अपने सिद्धान्तों और आदर्शों के प्रचार के लिए वह साहित्य का सहारा लेने का प्रयत्न करता है और अपने सहयोगियों के साथ इलाहाबाद जा पहुँचता है। किन्तु यहाँ आकर उमानाथ के हाथ कुछ नहीं लगता। प्रश्न उठता है तो फिर वर्मा जी ने उमानाथ का इलाहाबाद भ्रमण क्यों दिखाया है? कथानक की दृष्टि से भी पचास पृष्ठों में इलाहाबाद के साहित्यिक जीवन की गतिविधि का वर्णन अनावश्यक है। ऐसा प्रतीत होता है कि लेखक अपने स्थानीय अनुभवों को कहे बिना नहीं रह सका है। यही नहीं, इलाहाबाद के साहित्यिक जीवन का जो चित्रण लेखक ने किया है वह बड़ा विचित्र और हास्यास्पद है। क्या वास्तव में १९३० के इलाहाबाद के साहित्यिक-जीवन की रूपरेखा यही थी? और थी भी तो क्या इसे भारतीय साहित्यकारों की निष्क्रियता का द्योतक मानना चाहिए? क्या तत्कालीन साहित्यिकों ने स्वाधीनता-प्रयास, समाजवादी चेतना में कोई सक्रिय सहयोग नहीं दिया था? माना कि भारतीय प्रगतिशील लेखक-संघ की स्थापना १९३६ में हुई किन्तु क्या उसके पूर्व प्रेमचन्द आदि लेखकों में तद्विषयक चेतना के चिह्न नहीं मिलते? लखनऊ में रहने वाले भगवतीचरण वर्मा, यशपाल, अमृतलाल नागर, ज्ञानचन्द जैन आदि लेखकों का चित्रण वर्मा जी ने इसमें जो किया है उसमें कहाँ तक तथ्य है? न जाने यह वर्मा जी की किस प्रतिक्रिया का परिणाम है? इतना निश्चित है कि यह

केवल हास्य उत्पादन के निमित्त प्रस्तुत नहीं किया गया। यह निरुद्देश्य नहीं माना जा सकता।

ऐसा अनावश्यक विस्तार टेढ़े मेढ़े रास्ते में कई स्थलों पर है किन्तु इनमें कोई न कोई उद्देश्य अवश्य निहित है ऐसे अधिकांश स्थलों पर हास्य एवं व्यंग्य का प्रस्फुटन हुआ है। फलत ये स्थल नीरस और ऊबा देने वाले प्रतीत नहीं हो पाते। यही नहीं ऊपर से हास्यास्पद दिखने वाले वर्णनों में बड़े तीखे व्यंग्य निहित हैं। हिल्डा और मारीसन का सिगरेट केस वाला काण्ड हास्यास्पद तथा अस्वाभाविक भले ही लगे किन्तु प्रत्यक्ष रूप से वह समाजवाद पर तीखा व्यंग्य करता है। इस काण्ड के उपरान्त हिल्डा और उमानाथ का वार्तालाप लेखक के इसी उद्देश्य की पूर्ति करता है।

कामरेड मारीसन के जाते ही हिल्डा उमानाथ पर टूट पड़ी कायर कहीं के। तुम्हारे सामने ही एक आदमी मेरा अपमान कर गया और तुम चुपचाप देखते रहे।

शांत भाव से उमानाथ ने कहा तो इसमें क्या। तुम्हारा मैं स्वामी नहीं हूँ तुम्हारा रक्षक नहीं मेरा तुम पर कोई अधिकार नहीं। वास्तविकता तो यह है कि तुम मेरे बराबर की हो अपने मानापमान का उत्तरदायित्व तुम पर है तुम स्वयं उसका बदला ले सकती थी और तुमने बदला लिया भी।

हिल्डा तड़प उठी फिर तुमने मुझसे विवाह क्या किया—तुम मेरे पति क्या हुए? कायर कहीं के। मैंने अभी तक सुना था कि हिंदुस्तानी कायर और गुलाम हैं आज मैंने अपनी आँखों देखा भी।

उमानाथ मुस्कराया देखो हिल्डा क्रोध की कोई आवश्यकता नहीं। इसके पहले हम लोगों को अपने अधिकारों को समझ लेना पड़ेगा। समाजवाद के मत में स्त्री और पुरुष समान हैं किसी का किसी के ऊपर कोई अधिकार नहीं कोई किसी का स्वामी नहीं है। पत्नी पति की संगिनी भर है वह पति की नहीं है ठीक उसी प्रकार जैसे कोई भी व्यक्ति मेरा मित्र हो सकता है। पति और पत्नी का विवाह विच्छेद किसी भी समय किसी की इच्छा से हो सकता है ठीक उसी तरह जैसे दो मित्र कभी भी अपनी मित्रता तोड़ सकते हैं। ऐसी हालत में तुम्हारा अपमान तुम्हारा सुख दुःख मेरा नहीं है और मेरा सुख दुःख तुम्हारा

हिल्डा इस तर्क को समझने के लिए तैयार नहीं थी। उमानाथ कह रहा था और वह ग्लानि के साथ यह सब सुन रही थी। उमानाथ के तर्कों को वह सहन नहीं कर सकती लेकिन उसके अन्दर वाला समाजवादी मन जिसने कार्ल मार्क्स का अध्ययन किया था जिसने लेनिनवाद को इस दुनिया का ध्रुव सत्य मान लिया था जो पुष्पा की ही भाँति भग्न और दूषित मार्ग पर जाते हुए, समाज का उद्धार करने के लिए कार्यक्षेत्र में कूद पड़ी थी जिसने दुनिया के भोग विलास को ठुकरा दिया था जो सिद्धान्तों के नशे में सराबोर थी वह समाजवादी हिल्डा इस तर्क का विरोध नहीं कर सकती थी, लेकिन उसके अन्दर वाली नारी वह नारी जो पुरुष का अवलम्ब चाहती है, जो उससे रक्षा चाहती है, जो पुरुष की छाया में रहकर उसकी गुलामी करना चाहती है जिसका जीवन सदा भाग में अंकित है वह नारी विवाह और प्रेम के इस विकृत रूप को सहन न कर सकी।

मिसेज सिम का बिल्ली और मारीमन वाला काड भी बड़ा मनोरंजक तथा व्यंग्यपूर्ण है। मिसेज सिम को लिखा मारीमन का पत्र इस उद्देश्य की पूर्ति करता है 'इस ख्याल से कि आपकी बिल्ली मरेगी आप बहुत दुःखी हो गया। इससे मुझे बहुत दुःख हुआ और इससे भी अधिक दुःख मुझे इस बात से हुआ कि आपकी नजर के सामने ही हमारा आदमी जानवरों भूख, प्यास तड़पते हैं और आप उन पर ध्यान तक नहीं देतीं जब कि एक जानवर पर आपकी इतनी ममता है।'

अन्य उपन्यासों की भाँति 'टेढ़े मेढ़े रास्ते' का कथानक भी पूर्व निश्चित है। परन्तु इस प्रकार का आभास हमें नहीं होता क्योंकि संपूर्ण कथानक का विस्तार संयोगों, आकस्मिक घटनाओं तथा पात्रों की बाह्य एवं आन्तरिक प्रतिक्रिया का परिणाम है। आकस्मिक घटनाएं इसमें अत्यन्त महत्त्वपूर्ण हैं। वर्माजी की उपन्यास-कला की यह खूबी है कि जब कथानक का प्रवाह थम जाता है तब वे आकस्मिक घटनाओं का नियोजन कर उसमें तीव्रता ला देते हैं। प्रभानाथ के जीवन में, और प्रकारान्तर से उपन्यास के चित्रपट पर एक ऐसी सनसनी पूर्ण घटना अकस्मात् हो उठती है जिससे प्रभानाथ की जीवन दिशा निश्चित हो जाती है अथवा उसका निष्क्रिय-जीवन सक्रिय हो उठता है। और इस प्रकार कथा को एक नयी गति मिलती है। वह घटना है—वीणा का एका-एक उसके सम्पर्क में आ जाना—एक विचित्र संयोग के साथ—और उसने देखा कि उसकी मोटर के सामने करीब पाँच गज की दूरी पर एक युवती पिस्तौल ताने खड़ी है। कार की स्पीड वैसे भी तेज न था—प्रभानाथ ने कार

रोक दी। युवती ने झपटकर कार की बाँई ओर वाला दरवाजा खोला और वह प्रभानाथ के बगल में बैठ गयी। उसके दाहिने हाथ वाली पिस्तौल की नली प्रभानाथ की पसलियों से लगी थी। इस प्रभावशाली क्रान्तिकारी नारी वीणा का संपर्क प्रभानाथ को भी सच्चा क्रान्तिकारी बना देता है। उपन्यास भर में सबसे रोचक और स्वाभाविक विकास प्रभानाथ वाले इतिवृत्त का ही हुआ है। दयानाथ से सम्बन्धित इतिवृत्त शिथिल और गतिहीन है। उमानाथ वाला इतिवृत्त में ऊपर से जितनी सनसनी दिखती है वास्तव में भीतर से उतना ही निष्प्राण है। *किन्तु प्रभानाथ वाले इतिवृत्त में इतनी गति और कुतूहलता है कि* पाठक उसी की प्रतीक्षा करता रहता है। यही नहीं यह इतिवृत्त सबसे अधिक प्रभावशाली भी है। प्रभानाथ का चरित्र विकास कितने सुंदर और स्वाभाविक ढंग से हुआ है इसकी व्याख्या आगे की गयी है।

संयोग और आकस्मिक घटनाएं जहाँ कथानक को आगे बढ़ाती हैं वहाँ पात्रों की मानसिक तथा बाह्य प्रतिक्रिया कथानक को तीव्रगति प्रदान करती है। दयानाथ का अपने पिता रामनाथ को यह जवाब देकर चले आने पर कि आपकी आज्ञा शिरोधाय, लेकिन यह पाँच सौ रुपया महीना गुजारे की बात—इसमें से एक पैसे की भी मुझे जरूरत नहीं। आप समझते हैं कि आप स्वामी हैं आप दाता हैं आप समर्थ हैं और मैं हीन हूँ गुलाम हूँ असमर्थ हूँ आप गलती करते हैं। मैं गरीबी में रह सकता हूँ। मुझे आपके रुपये की कोई आवश्यकता नहीं। अपने पास रखें।—सुनकर रामनाथ जिस तरह खड़े थे उसी तरह खड़े रह गये। एक क्षण वे दयानाथ को वापस बुलाने की बात सोचते हैं लेकिन दूसरे ही क्षण वे यह उठते हैं कि इतना घमण्ड तो फिर भुगते—अच्छी तरह से भुगते। वह समझता है कि मैं झुकूंगा। और वे ज़ोर से हंस पड़े। पर उनकी उस हंसी में एक अप्राकृतिक कर्कशता थी दबे हुए रुदन की अहम्मन्यता और अभिमान मिश्रित प्रतिक्रिया थी। इस प्रतिक्रिया का परिणाम यह होता है कि कांग्रेस में भाग लेने वाले सभी व्यक्तियों से वे बदला लेने पर तुल जाते हैं और वे हुक्म कर देते हैं कि उन्हें लगान न देने के जुर्म में बेदखल कर दिया जाय। इसके लिए वे पुलिस की मदद दिलाते हैं। इस प्रकार कथानक रामनाथ की मानसिक प्रतिक्रिया के फलस्वरूप आगे बढ़ता है। कांग्रेस वालों का मुकदमा करने के लिए वे स्पेशल मजिस्ट्रेट बना दिये जाते हैं और वे लोगों को कड़ी सजाएं देते हैं। इसके प्रतिक्रियास्वरूप कौशल्या गर्ल्स स्कूल की हेडमिस्ट्रेस इस्तीफा दे देती है जिसके स्थान पर वीणा आती है। वीणा के आ जाने से कथानक फिर आगे बढ़ता है।

अन्य पात्रों की भी मानसिक अथवा बाह्य प्रतिक्रिया कथानक को किसी न किसी रूप में सामने रखती है। विशेषकर मनमोहन की आन्तरिक प्रतिक्रिया कथानक में जो तीव्रता ला देती है उससे उपन्यास में एक विशेष तनाव और कुतूहल पैदा हो जाता है। रामनाथ तिवारी के बल प्रयोग के कारण परमेश्वर की मृत्यु हो जाने से मनमोहन के मन में तीव्र प्रतिक्रिया होती है जिसके फलस्वरूप वह मैनेजर रामसिंह की हत्या कर बैठता है। रामनाथ के दिल पर इसकी गहरी चोट पड़ती है क्योंकि प्रकारान्तर से यह वार रामसिंह पर नहीं उन्हीं पर किया गया है। फलतः वे उन सभी आदमियों को कुचल देना चाहते हैं, जो उनके सामने सिर उठाते हैं और इस उपद्रव से रामनाथ को बचाने के लिए झगड़ू मिश्र अपने प्राण दे देते हैं।

'टेढ़े-मेढ़े रास्ते' का कथानक अत्यन्त विशाल है। फिर इसके प्रमुख पात्रों की संख्या भी कम नहीं है। तथा किसी भी पात्र की कथा कम महत्वपूर्ण नहीं है। लेखक को सभी के जीवन-वृत्त आन्तरिक एवं बाह्य प्रतिक्रिया तथा क्रिया कलापों का चित्रण गहनता से करना है। लेखक का यह कार्य इस उपन्यास में कठिन इसलिए हो गया है क्योंकि प्रत्येक पात्र की विचारधारा और दिशा अलग-अलग है। इसलिए प्रायः हुआ यह है कि जब वह एक पात्र के जीवन और गतिविधि का अंकन करने लगता है तो दूसरे पात्र से सम्बन्धित कथानक बहुत देर के लिए छूट जाता है। उपन्यास का प्रारम्भ होता है दयानाथ वाले इतिवृत्त से और वह तीन परिच्छेदों में चलता है। उसके बाद प्रभानाथ, उमानाथ और दयानाथ तीनों का इतिवृत्त घुलमिल गया है। किन्तु जब लेखक उमानाथ को इलाहाबाद भेज देता है तब एक बार फिर से सारा कथानक एक पात्र तक सीमित हो जाता है। अन्य पात्रों को लेखक एक दम भूल जाता है। आगे भी कथानक के सम्बन्ध में ऐसे कई स्थल आये हैं। इस उपन्यास में कथा-संगठन की त्रुटि भी कही जा सकती है। इस त्रुटि को दूर करने का सम्भवतः लेखक के पास कोई उपाय नहीं था। जहाँ प्रत्येक पात्र का अपना अलग रास्ता हो वहाँ सुसंगठित कथानक हो भी नहीं सकता। किन्तु यदि लेखक चाहता तो वह कथा के तन्तु बिखरने से बचा सकता था क्योंकि प्रत्येक पात्र का अन्तिम लक्ष्य एक है साधन और मार्ग भिन्न भिन्न होने पर भी। किन्तु वर्मा जी ऐसा नहीं कर सके या उन्होंने ऐसा करना नहीं चाहा। इसीलिए उपन्यास के प्रत्येक पात्र की अपनी अलग कहानी है। और वह एक दूसरे से इतनी अलग है कि यदि हम चाहें तो प्रत्येक को एक लघु उपन्यास का रूप दिया जा सकता है।

फिर भी टेढ़े मेढ़े रास्ते में कथा शैथिल्य नहीं है जैसा कि बृहद् कथानक

को लेकर लिखे जाने वाले उपन्यासों में प्राय हो जाता है। पात्रों और घटनाओं का आधिक्य होने पर भी कथा सुलझी हुई है। इतिवृत्त का प्रवाह चाहे धारावाहिक न हो किन्तु उसमें किसी प्रकार की असम्बद्धता नहीं आ पायी है। उपन्यास मे कुतूहल और उत्सुकता पर्याप्त है पर वह घटना वैचित्र्यमूलक नहीं है। सम्पूर्ण उपन्यास भावनात्मक संवेदना से परिपूर्ण है। उपन्यास की प्रत्येक घटना प्रत्येक विवरण यहाँ तक कि प्रत्येक प्रसंग सजीव मात्र व्यंजक और मार्मिक है। इसलिए उपन्यास का टम्पो बडा गतिशील और ममस्पर्शी है।

नियति और भाग्य पर वर्माजी की आस्था कभी कम नहीं हुई वह कभी हल्के और कभी गहरे रूप म मन हो रही हो। टेढे मेढे रास्ते म नियति और भाग्य की स्थिति प्रच्छन्न रूप म है उसका आभास उन्होंने बार-बार नहीं गाया। इसके फलस्वरूप चरित्र चित्रण मे एक प्रकार की प्रौढता और गरिमा आ गयी है। चित्रलेखा और तीन वर्ष मे लेखक पात्रों की क्रिया प्रतिक्रिया अधिक विस्तार और गहनता से नही दिखा पाया क्योंकि उनम पात्रों के आचरण तथा क्रिया कलाप किसी अदृश्य सूत्र द्वारा संचालित होते हैं। किन्तु टेढे मेढे रास्ते म आकर लेखक परिस्थितिजन्य मानसिक संघर्ष का विस्तार बडी सूक्ष्मता से कर सका है। यहा नियति और भाग्य का सहारा लेकर वह पात्रों का चरित्र नियामक नहीं बन बैठा है। सब चरित्रों का स्वतन्त्र विकास हुआ है। सब अपने व्यक्तित्व से लडकर बाहर की परिस्थितियो से टकराकर और आगे बढकर अपना निर्माण स्वय करते हैं। प्रत्येक अपने से लडता है। अपने अन्दर वाली वृत्तियो और बाहरी स्थिति का संघर्ष तीव्रता से अनुभव करता है।

चित्रलेखा और तीन वर्ष मे वर्माजी अवसर आने पर भी कई स्थलो पर मानसिक संघर्ष का चित्रण करने से चूक गये हैं। पर टेढे मेढे रास्ते म पात्रों का अन्तर्द्वन्द्व बडी खूबी से उभरा है। प्रत्येक पात्र के सम्मुख ऐसे अवसर आते हैं या परिस्थितियाँ कुछ ऐसी स्थिति पैदा कर देती हैं कि उन्हें एक को अपनाना और दूसरे को छोडना आवश्यक हो जाता है। तब उनके व्यक्तित्व और बाह्य परिस्थिति की टकराहट के फलस्वरूप जो निर्णय होता है वह कितना मनोवैज्ञानिक हो उठा है इस कहने की आवश्यकता नही है। निर्णय के समय की यह दुविधापूर्ण स्थिति प्रत्येक पात्र के सम्मुख आयी है। दयानाथ उमानाथ और प्रभानाथ का हृदय संघर्ष जो है वह है ही सबसे तीव्र हृदयान्दोलन रामनाथ का है। पुत्रों की गतिविधियां और विशिष्ट सिद्धान्तवादी विचार धारा रामनाथ के अजेय व्यक्तित्व को कितनी ही बार छिन्न भिन्न करने को होती है। अपने मानसिक द्वन्द्व से वे तडप उठते हैं। प्रकाण्ड विद्वान होने के कारण

एक ओर वे अपनी भावुकता को छिपाने का प्रयत्न करते हैं तो दूसरी ओर अपने पिता को अकाट्य तर्कों द्वारा उचित ठहराकर अपने को संतुष्ट करते हैं। भावना और तर्क के संघर्ष-काल का वर्णन करते हुए मनोदशा के विभिन्न रंगों को बखूबी से यहां सूक्ष्मता से अंकित किया है। कांग्रेस के निमित्त जब दयानाथ घर और पैतृक-सम्पत्ति छोड़कर चला जाता है तो एक बार रामनाथ मर्माहत हो उठते हैं। एक बार तो भावना उनकी अहम्मन्यता पर हावी हो उठती है। किन्तु वह एक क्षणिक आवेग मात्र होता है और उसके बाद रामनाथ अपने स्वाभाविक रूप में आ जाते हैं। प्रभानाथ को दया को लौटाने के लिए भेजने पर उनकी दशा बड़ी विचित्र हो उठती है।

'रामनाथ ने तनिक जोर से कहा स्वयं अपने से गया मुझे छोड़कर घर छोड़कर पैसा-धेला जमीन जायदाद सब कुछ छोड़कर। सिर्फ एक हठ—एक पागलपन। उफ़! मेरा लड़का मुझसे ही लड़ने आ रहा है। और वे कमरे में टहलने लगे।

उन्होंने फिर कहा अबकी बार अधिक जोर से एक-एक शब्द पर जोर देते हुए मेरे उपकार, पिता के नाते स्नेहों को ठुकराकर ममता को तोड़कर! सुखद सहज सुख मिटाने चल दिया। इतना घमण्ड इतनी अहम्मन्यता—इतनी अहम्मन्यता, इतना घमण्ड!

रामनाथ कमरे के बाहर निकल आए। प्रभानाथ कार को गैरेज से निकाल कर ला रहा था। रामनाथ ने आवाज दी प्रभा।

प्रभा चौंक उठा! रामनाथ का स्वर जो दो मिनट पहले करुण था और विवश था वह एकाएक इतना कठोर कैसे हो गया। उसने मोटर पर बैठे ही बैठे कहा 'कहिए!

'मोटर रख दो—तुम्हारे जाने की आवश्यकता नहीं। इसके बाद रामनाथ ने धीरे से मुस्करा के भार से लदे हुए शब्दों में कहा 'इतना घमण्ड! तो फिर भुगते अच्छी तरह से भुगते। वह समझता है कि मैं झुकूंगा। और वे जोर से हंस पड़े। पर उनकी उस हंसी में अप्राकृतिक कर्कशता थी, दबे हुए रुदन की अहम्मन्यता और अभिमान मिश्रित प्रतिक्रिया थी।

रामनाथ के मन पर चोट की प्रतिक्रिया यहीं तक नहीं होती। कांग्रेस में भाग लेने वाले प्रत्येक व्यक्ति को वे दण्डित करते हैं।

किन्तु अपनी अहम्मन्यता के कारण सदैव अजेय रहने को प्रयत्नशील होकर भी वे पराजित होते हैं—एक नहीं अनेक बार और वह भी बुरी तरह। दयानाथ की पत्नी राजेश्वरी तक उन्हें पराजित कर देती है।

अन्तद्वंद्व के इन क्षणों में कभी-कभी रामनाथ का आचरण बड़ा असंगति पूर्ण लगता है। एक ओर व दया से कांग्रेस छोड़ने को कहते हैं, किन्तु जब श्यामनाथ जेल जाकर दयानाथ को माफी माँगने को तैयार करने की बात कहते हैं तो वे जो उत्तर देते हैं, उससे एक बार तो पाठक चकित सा रह जाता है। वे कहते हैं—

'तो इसके माने ये हुए कि वह सरकार से एक प्रकार माफी माँगे। रामनाथ ने श्यामनाथ को देखा नहीं श्याम ! एक रूखी मुस्कराहट रामनाथ के चेहरे पर आ गयी माफी माँगे—इतना ऊपर बढ़कर अब वह अपने को एक दम गिराए ! दया इसके लिए तैयार न होगा ! और अगर एक बार वह माफी मांगना स्वीकार भी कर ले तो मैं उसे कायर समझूंगा। नहीं—श्याम् यह बेकार की बात है।

इसी प्रकार प्रभानाथ को जेल से मुक्त कराने के लिए रामनाथ अपनी सम्पूर्ण शक्ति लगा देते हैं किन्तु जब प्रभा मुखबिर बनने को तैयार हो जाता है तब रामनाथ वहां भी उसके लिए तैयार नहीं होते। उमानाथ के सम्बन्ध में भी ऐसा होता है। उसके कायरों की तरह देश छोड़ने में वे रुपया देकर उसे सहयोग नहीं देते। दयानाथ भी जब यह कहकर कि उसने कांग्रेस में सम्मिलित होकर गलती की घर लौटना चाहता है तो रामनाथ यह कहकर दया को लौटा देते हैं कि 'दया ! तुम कांग्रेस छोड़कर और भी बड़ी गलती कर रहे हो ! मुझे सब कुछ मालूम है। तुम चुनाव में हारे—और चुनाव में हारकर तुममें निराशा पैदा हो गयी। तुम कायर की तरह वहाँ से भाग रहे हो। तुम बाहर से पराजित नहीं हुए—आज चुनाव में हारे हो कल चुनाव में जीत भी सकते हो वह सब तो परिस्थितियों पर निर्भर था—तुम पराजित हुए तो अपने ही अन्दर से ! मुझे इस बात का दुख है। तुमने मेरे यहां लौटकर गलती की। जीवन का क्रम आगे बढ़ना है—पीछे लौटना असम्भव है। मेरे यहां तुम्हें स्थान नहीं है दया।

रामनाथ के आचरण में यह असंगति ऊपर से ही दिखती है। वास्तव में उनकी यह प्रतिक्रियाएं उनकी अहम्मन्यता के विविध शेड्स हैं। उनकी अहम्मन्यता जहाँ उन्हें दूसरों के सामने झुकने और दबने से रोकती है वहाँ वे अपने पुत्रों को भी झुकते नहीं देख सकते। कोई उनके पुत्रों को कायर और विश्वासघाती कहे यह भला उन जैसा अदम्य व्यक्तित्व वाला व्यक्ति कैसे सहन कर सकता है। अतः स्पष्ट है रामनाथ के आचरण की ये असंगतियां ऊपर से परस्पर विरोधी दिखने वाली वृत्तियों का आन्तरिक रूप मात्र हैं—उनकी अहम्मन्यता की प्रतिक्रियाएं मात्र हैं।

रामनाथ के तीनों पुत्रों को अहम्मन्यता विरासत के रूप में मिली है। मार्कण्डेय ठीक ही कहता है, 'और मैं जानता हूँ दया कि तुममें अहम्मन्यता है उतनी ही अधिक जितनी तुम्हारे पिता में अथवा अन्य भाइयों में है। सभी भाइयों का व्यक्तित्व भी एक जैसा है, यद्यपि प्रत्येक का मार्ग अलग अलग है। प्रायः कहा जाता है कि वर्माजी के उपन्यासों के पात्र सिद्धान्त—शरीरी हैं, यह ठीक है। परन्तु इसके कारण पर किसी ने ध्यान नहीं दिया। इसका कारण यह है कि उनका प्रत्येक पात्र प्रौढ़ है या दूसरे शब्दों में समझने लगता है कि वह प्रौढ़ है और उसके विचार या सिद्धान्त ही सही हैं। दया, उमा और प्रभा में अहम्मन्यता है, पर वैसी नहीं है जैसी उनके पिता में है। उनकी अहम्मन्यता में युवकोचित अस्थिरता है इसलिए जब कभी वे अपने पथ से विचलित होने को होते हैं पिता का कठोर अनुशासन उन्हें सँभालने को मजबूर होता है।

टेढ़े मेढ़े रास्ते के चरित्र चित्रण की एक मुख्य विशेषता यह है कि प्रत्येक पात्र का चरित्रोद्घाटन एकाएक हुआ है। रामनाथ का वीणा की चोट से और दया, उमा तथा प्रभा का रामनाथ की फटकार से। वीणा के यह कहने पर कि इस तरह चिल्लाना आपको शोभा नहीं देता। मैं स्वयं जा रही हूँ। विश्वासघातियों के घर का अन्न खाकर मैंने अपने को अपवित्र कर लिया है—इसका प्रायश्चित्त करना होगा न। वीणा ने इस समय विकराल रूप धारण कर लिया था, हाँ—पतित कीड़ों से भी गये बीते—विश्वासघाती! इतने आदमियों ने प्रभा पर विश्वास किया था—अब उस विश्वास को तोड़ रहा है। तुम लोग बड़े स्वाभिमानी बड़े ऊँचे चरित्र के आदमी बनते हो। लेकिन मैं कहता हूँ कि तुम विश्वास को तोड़ने वाले तुम अपने घनिष्ट मित्रों को दगा देने वाले हो तुम उन लोगों की हत्या करने वाले—तुम कीड़ों से भी गये बीते हो—तुम शैतान हो। रामनाथ की अहम्मन्यता—उनका सारा आत्मगौरव उस समय तिलमिला उठा था, इतना कड़ा प्रहार किया था वीणा ने। वह मनुष्य जिसने कभी झुकना नहीं जाना, जिसने दबना नहीं जाना, आज उसे एक स्त्री विश्वासघाती कहकर चली गयी। यह सब सुनकर उनके दिल पर इतनी करारी चोट होती है कि वे अपना निर्णय बदल देते हैं और प्रभा का मुखबिर बनने को मना करते हैं।

कभी-कभी घटनाओं द्वारा भी वर्माजी ने चरित्रोद्घाटन किया है। मनमोहन तथा शमशेर मित्र का चरित्र प्रकाशन इसी तरह हुआ है। परमेश्वर की मृत्यु से मनमोहन की मानवता हिल उठती है और वह रामसिंह की हत्या कर बैठता है। अनाड़ी गँवार, दुराग्रह में विश्वास करने वाला शमशेर मित्र स्मिा

को रोकने के लिए रामनाथ के ऊपर लेट जाता है और उनके प्रहार अपने ऊपर लेकर अपने प्राण दे देता है। वर्माजी के चरित्र चित्रण के बारे म प्राय कहा जाता है कि वे पूर्व निर्धारित और औपचारिक स्थितियो म रखकर पात्रो का चरित्रोद्घाटन करते हैं। टेढ़े मेढ़े रास्ते के चरित्र चित्रण के सम्बन्ध म यह सच नहा है। उसके पात्र पूर्व निश्चित परिस्थितियो म पड़ने के लिए पहले स तैयार नहीं हैं। इसलिए उनके आचरण और क्रिया प्रति क्रिया म किसी प्रकार की कृत्रिमता नहा आयी है। यही नही प्रत्येक पात्र का चरित्र विकास भी बड़े स्वाभाविक ढंग स हुआ है। एक ओर पात्रो के संस्कार हैं तो दूसरी ओर उनके चारो ओर का वातावरण और परिस्थितियाँ उनके चरित्र निर्माण म सहायक हुई हैं।

जहा तक चरित्र चित्रण प्रणाली का सम्बन्ध है अधिकांश चरित्र चित्रण लेखक ने किया है केवल रामनाथ के एक दो स्थलो के आत्म विश्लेषण को छोड़कर। जहा कही लेखक ने स्वय चरित्र चित्रण किया है वह तटस्थ नहीं रह सका है। यही नही पक्षपात पूर्ण चरित्रांकन स उसने पाठको का भी पूर्वाग्रह स ग्रस्त कर लिया है। किन्तु प्रस्तुत उपन्यास म मुख्य पात्रो के विषय म उसने ऐसा कम ही किया है। दयानाथ की बैठक मे कांग्रेस की मीटिंग का समूह चित्रण या इलाहाबाद म साहित्यिक गोष्ठी का समूह चित्रण जितना पक्षपात पूर्ण है उतना रामनाथ या अन्य किसी पात्र का नहा। इसका कारण यह है कि इन पात्रो का चरित्रांकन लेखक ने उनके पारस्परिक संवादों आचरण और स्वभाव द्वारा ही करने का यथासंभव प्रयत्न किया है। परस्पर वाद विवाद मे जहा पात्रो के सिद्धान्त और मतो का परिचय मिलता है वहाँ उनके मनो विज्ञान मनोविकार और मनोदशाओ पर भी प्रकाश पड़ता है। दूसरे पात्रो द्वारा भी पात्रो की चारित्रिक विशेषताएं उद्घाटित होती है। मार्कण्डेय और प्रभुदत्त दयानाथ की अहम्मन्यता का कई बार उल्लेख करते हैं। मार्कण्डेय के इस कथन म कितनी सच्चाई है दयानाथ तुमम अहम्मन्यता है कठोर और कुरूप। लोग तुम्हारी अहम्मन्यता बर्दाश्त नही कर सकते। तुम्हारी हर हरकत म तुम्हारे बर्ताव मे तुम्हारी अहम्मन्यता का जबदस्त पुट रहता है और अपनी उस अहम्मन्यता को तुम देख नहा पाते क्योंकि वह तुमसे पृथक की चीज नही।

टढे मेढे रास्ते म सबसे प्रभावशाली व्यक्तित्व रामनाथ का है और वे ही *प्रस्तुत उपन्यास के नायक हैं। इन्हे हम वर्ग प्रतिनिधि कह सकते हैं।* रामनाथ उखड़ती हुई सामंतीय व्यवस्था का एक अडिग सदस्य है जो परि स्थितियो के थपेडो म पडकर भी अपने विश्वासो को दृढ़ रखता है। रामनाथ म

सामंतीय संस्कारों की जड़ें गहरी तथा मजबूत हैं। आरंभ में इनका चित्र रामनाथ के चरित्र में सजीव हो उठा है। इस वर्ग की जो मूल विशेषता है, आत्माभिमान और अहम्मन्यता उन सबका रामनाथ का चरित्र ओत प्रोत है। उनके बोलने के ढंग में लोगों के साथ व्यवहार करने में अहम्मन्यता टपकती है। वे सभ्य शिक्षित एवं सुसंस्कृत हैं और इससे उनकी अहम्मन्यता को और भी बल प्राप्त होता है। वे विश्वास है अपने कार्यों को वे तर्क द्वारा न्यायसंगत और आवश्यकतानुकूल सिद्ध कर देते हैं। अंग्रेजी सरकार उनके लिए सामग्री है अतः वे उसे महत्त्व देते हैं। यह भाव प्रबल होने के कारण उनमें स्वामित्व की उत्कृष्ट भावना है। वे सबको झुकाना चाहते हैं झुकना उनके स्वभाव के प्रतिकूल है। उनके तीन पुत्र हैं—श्यामनाथ, उमानाथ प्रमानाथ। तीनों नवयुग की चेतना से युक्त हैं और तीनों नए विचारों ढंग को अपनाते हैं। किन्तु रामनाथ इन नई रोशनी के युवकों को भी अपने सम्मुख झुकाना चाहते हैं। फलस्वरूप पिता और पुत्रों में संघर्ष होता रहता है। पुत्रों का भी आत्माभिमान और अहम्मन्यता परंपरागत रूप में मिला है। वे झुकना नहीं जानते।

रामनाथ के तीनों पुत्र वस्तुतः रामनाथ के चरित्र-विकास में सहायक हुए हैं उनसे रामनाथ की अहम्मन्यता को प्रकट होने का अवसर मिला है। पुत्रों की भावना एवं इच्छा पर वे अधिकार रखना चाहते हैं। वह अपनी इच्छा से चलने को बाध्य करना चाहते हैं। अपने अधिकार की उपेक्षा उन्हें सह्य नहीं, दूसरों पर प्रभुत्व जमाना शासन करना उनका अभीष्ट है। मैं स्वामी हूँ मैं दाता हूँ, समय हूँ ये उनके अभिमानी व्यक्तित्व के मूल-सूत्र हैं। उनमें चरित्र-बल प्रखर और इच्छा शक्ति अपार है। उनका व्यक्तित्व विलक्षण है और मुख पर उनका अक्खड़ और गुरुता प्रतिबिम्बित होती है। उनकी आँखों में अहम्मन्यता का चमक है वाणी में स्वामित्व की गंभीरता है रामनाथ के व्यक्तित्व के आगे अंग्रेज अफसर भी भय खाते हैं। वे स्वाभिमानी हैं जिनके सम्मुख सरकारी कर्मचारी भी झुकने को बाध्य होते हैं। सारांश यह है कि रामनाथ अभिमानी शासक और स्वामी है। किसी हालत में किसी के सम्मुख वे हार मानने को तैयार नहीं। अहम्मन्यता की तुष्टि करने के लिए ही वे बिना भविष्य पर ध्यान रखे दूसरों का अपमान करते हैं दूसरों के उत्पीड़न का कारण बनते हैं। वे समझते हैं कि मैं कर्ता हूँ, विधाता हूँ मैं सबल हूँ मैं ही कानून हूँ। अपना आत्माभिमान उन्हें अपनी संतान से ज्यादा प्यारा है। वे कहते हैं 'मुझे केवल एक वस्तु का मोह है वह है अपना अपनी आत्मा का

अपने सिद्धान्त का और अपने विश्वास का। जो कुछ मैं करता हूँ वही ठीक है जो कुछ मैं सोचता हूँ उतना ही बड़ा है जितना बड़ा वह (ईश्वर) है। अपनी इसी अहम्मन्यता मे पड़कर वे अपने तीनो पुत्रो को खो बैठते हैं। साफ छूटे हुए प्रभानाथ को कर्तव्य-बुद्धि का ज्ञान कराकर उसे झुकने नही देते। दयानाथ को कायरता से कॉग्रेस छोड़ने नहा देते और अपने आत्माभिमानी स्वभाव के कारण उमानाथ को रुपये देकर बचाना नहीं चाहते।

रामनाथ की अहम्मन्यता से लगता है कि वे कठोर निर्दयी हैं। किन्तु सत्य इसके विपरीत है। वे उदार हैं सहृदयता की उनमे कमी नही है। निम्नकोटि के अवगुणो झूठ बेइमानी आदि का उनमे अभाव है। केवल एक अवगुण उनमे विद्यमान है जो अचल और अडिग है। वह है अहम्मन्यता, जिसके कारण वे कभी कभी धर्म और दया को तिलाजलि दे बैठते हैं और इन्हें त्याग कर भी वे समझते हैं कि वे मनुष्यता से नीचे नहा गिरे प्रत्युत ऊपर उठे हैं। रामनाथ की अहम्मन्यता जीवन-पर्यन्त अडिग रहती है और उनकी अहम्मन्यता की जड़ है उनका विश्वास—कि शक्तिशाली की सदैव विजय होती है। और सबल का दुर्बल पर शासन स्वाभाविक है उसका जन्मजात अधिकार है। ससृति मे सबल और दुर्बल दो प्रकार के व्यक्ति हैं—विषमता ही प्रकृति का नियम है, इसीलिए समता का सिद्धान्त असम्भव है। इस विषमता की ससृति मे पाशविकता की हिंसा की विजय होती है इसलिए हिंसा परमावश्यक है। यह बड़े आश्चर्य की बात है कि हिंसा को अपना अस्त्र मानते हुए भी अहिंसा पर उनकी श्रद्धा है। उनका कथन है कि अगर अहिंसा का सिद्धान्त सम्भव हो सकता है तो यह मानवता के लिए अवश्य हितकर होता। किन्तु वे जानते हैं कि विषमता मे अहिंसा स्थिर नही रह सकती। अत हिंसा अनिवार्य है।

समय बदल रहा है विचार बदल रहे हैं किन्तु रामनाथ के विश्वासो मे परिवर्तन नही होता। उनका कहना है हाँ, समय बदल रहा है और समय के साथ दुनिया बदल रही है। लेकिन मैं कहता हू कि दुनिया गलत तरीके पर बदल रही है। यह अराजकता यह एक दूसरे पर अविश्वास यह दुराग्रह—इन सबसे हमारा कल्याण नही हो सकता कभी नही हो सकता। जहाँ हिंसा का सवाल है वहाँ विजयी वही होता है जिसके पास बल है यही प्राकृतिक है कि हम भी हिंसा को पाशविकता की सीमा तक विकसित करें। अस्तु रामनाथ शिक्षित होते हुए भी प्रतिक्रियावादी हैं। उनकी अहम्मन्यता ने उन्हे हठी बना दिया है। वे उसका भी विरोध करते हैं जो समयानुकूल और परिस्थिति अनुकूल नहा हैं। उनका चरित्र उपन्यास मे स्थिर (फ्लट) है। उनके विश्वासो और आस्था मे

कभी परिवर्तन नहीं होता। वे टूट जाते हैं किन्तु बदलते नहीं। यही विश्वास उनसे सब कुछ छीन लेता है। अपने लड़कों को कुर्बान करके भी वे संसार को जीतना चाहते हैं। अन्त में उन्हें हम विक्षिप्तावस्था में कहते पाते,। 'सब कुछ समाप्त हो गया। कोई नहीं सब गये। अकेले तुम प्रेत की तरह मौजूद हो रामनाथ। प्रभा की मृत्यु रोकी जा सकती थी—अगर जेल में जाकर तुम उससे न मिले होते।। उमा को लाप देकर तुम क्या सकते थे—लेकिन तुमने उसे अंधकार और निराशा में ढकेल कर हमेशा के लिए उसे अपना शत्रु बना लिया। और दया वह तुम्हारे पास आया अपनी पत्नी और बच्चों के साथ। लेकिन तुमने उसे निकाल बाहर किया। अपने ही हाथों तुमने अपना विनाश किया। तुम्हारी ममता तुम्हारी अहंमन्यता—यह मत निर्माण न कर सके—महान भयानक विनाश किया है—तुम अधम हो—तुम पापी हो।

रामनाथ में लेखक ने उसके वर्ग की समस्त विशेषताएं पुंजीभूत कर दी हैं। किन्तु फिर भी वे टाइप न होकर विशेष चरित्र हैं। अपने वर्ग की चित्त वृत्तियों और प्रवृत्तियों के साथ उनमें अतिरिक्त वैयक्तिक विशेषताएं भी हैं। वे प्रकाण्ड विद्वान् हैं। उनके तर्क अकाट्य और सारयुक्त हैं जिससे उनके सम्मुख सभी मार्ग के अनुयायी निरुत्तर हो जाते हैं। उनमें मनुष्यता एवं पाशविकता का ऐसा विलक्षण सम्मिश्रण है कि सब भौचक्के रह जाते हैं कि यह मनुष्य दानव है या मानव। क्रान्तिकारी मनमोहन प्रभाकर उनके सम्बन्ध में कहता है—काश कि हरएक आदमी ऐसा बन पाता। कठोर होते हुए भी उनमें करुणा एवं उदारता की कमी नहीं है। किन्तु उनकी उदारता वहीं तक है जहाँ तक उनके अहम् पर चोट न लगे। जब उनके स्वाभिमान पर घात होता है तो वे क्रूर मनुष्य से भी कठोर हो जाते हैं। यहाँ तक कि स्त्रियों तक पर लाठी चार्ज होने देते हैं सत्याग्रहियों पर कठोर अत्याचार करते हैं। एक शब्द में रामनाथ के व्यक्तित्व का निर्माण मात्र अहम्मन्यता के तत्वों से हुआ है। उनके चरित्र के अन्य गुण उसी से उद्भूत हैं।

उपन्यास में दूसरा प्रभावशाली व्यक्तित्व जो पाठक के मन पर अमिट छाप छोड़ता है भगद्दू मिश्र का है। ईश्वर भाग्य और कर्मकाण्ड पर विश्वास करने वाले भगद्दू मिश्र बड़े दयालु और निर्मल हृदय के मनुष्य हैं। असत्य अन्याय और उत्पीड़न के वे विरोधी हैं। जो काम श्यामनाथ मारकण्डेय उमानाथ और प्रभानाथ नहीं कर पाते वह भगद्दू मिश्र अनपढ़ और गंवार होने पर भी कर जाते हैं। ये लोग मात्र सिद्धान्तवादी हैं। भगद्दू मिश्र के पास न कोई सिद्धान्त है न कोई मतवाद केवल वे एक सरल हृदय मानव-मात्र हैं। अत्याचार

और उत्पीडन को देख व मनमोहन से कहते हैं सुनेव मनमोहन ! यू अत्याचार दिन दिन बढत जात है। अब हमरे सामने सवाल यू है कि ई सबका उत्तर कौनी तरह दीन जाय। तौन महात्मा गाधी अहिसा अहिसा चिल्लाय रहे हैं, और हम कहित हैं अहिसा कायरता आय।

अत्याचार का विरोध करने के लिए वे गाँव मे सगठन करते हैं किन्तु हिंसा का सहारा नही लेते यह जानते हुए भी कि हिंसा का अपनाकर वे अत्याचार और अन्याय का मुहतोड़ उत्तर दे सकते हैं। कई बार उनके मन मे हिंसा को अपनाने की बात आती है पर अपने हृदय की सहज करुणा और दयालुता के कारण वे ऐसा नही कर पाते वरन् हिंसा का रोकने के लिए वे अपने प्राणो का बलिदान कर देते हैं।

आतकवादियो मे ही नही वरन् स्वतन्त्रता की लडाई लडने वालो मे मनमोहन का व्यक्तित्व सबसे अधिक प्रभावपूर्ण है। हिंसा को अपनाने पर भी वह यथार्थ मानव है। उसका लक्ष्य पवित्र और ऊचा है चाहे उसकी पूर्ति के लिए उसे अमानुषिक कृत्य ही क्यो न करना पडे। हिंसा का मार्ग वह इसलिए अपनाता है क्योकि वह जानता है कि यही एक ऐसा मार्ग है जिसके द्वारा दुर्बल व्यक्ति सबल के अत्याचार और उत्पीडन का प्रतिकार कर सकता है। अपने मित्र से वह कहता है सबल और निर्बल की लडाई एक हास्यास्पद चीज है सबल से निर्बल कभी भी पार न पा सकेगा। सबल और निर्बल की लडाई केवल एक तरह सम्भव है—निर्बल सबल पर जब वार करे तब पीछे से छिपकर। जब तक सबल निर्बल को देख नही सकता तब तक उसे नष्ट नही कर सकता। केवल इसी तरह यह लडाई सम्भव है। अतएव छिपकर वार करने को वह कायरता नहीं मानता क्योकि कायरता उत्पीडन को सहन करना है उत्पीडन का सही सही उत्तर देते हुए सबल के वार को बचाते रहना कायरता नहीं है बुद्धिमानी है। उसका यह तर्क व्यावहारिक दृष्टि से इतना सही है कि कोई उससे इन्कार नहीं कर सकता। और अपने इस सिद्धान्त के कारण वह सत्ताधारियो पर ऐसी तीखी चोट करता है कि तमाम सत्ता हिल उठती है।

नारी पात्रो मे राजेश्वरी और महालक्ष्मी के व्यक्तित्व मे कोई नवीनता नहीं है। वे ऐसी भारतीय नारी हैं जो स्त्री को मूक तथा निरीह मानती हैं। जिनके पास इच्छा नाम की कोई चीज नही है। पति ही जिनका भाग्य विधाता है। इसके विपरीत वीणा एक ऐसी नारी है जिसमे स्त्री सुलभ गुण बहुत न्यून मात्रा मे हैं। पहले पहल जब प्रभानाथ का साक्षात्कार वीणा से एक विचित्र परिस्थिति मे होता है तो वह चौक उठता है उसके कुल मे समाज मे स्त्रियाँ

कोमल परतंत्र तथा विवश होती थीं व ममता की मूर्ति थीं उनकी मुस्कराहट में करुणा था, उनके जीवन में त्याग था। और प्रयाग के सभ्य समाज के एक अंग में उसने देखा था कि स्त्री विलासिता और वासना की प्रतिमूर्ति है। वह नाचती है, गाती है लुभाती है और अपने इस कृत्रिम स्वर्ग में लोगों को डुबाकर यह नरक खिला देता है। स्त्री के उस रूप को जिसे उसने उस दिन देखा था उसने पहले कभी न जाना था। यह करुणा और विलासिता की मूर्ति नारी—यह प्राणों पर खेलने कैसे निकल आई? नारी मिटना जानती है मरना जानती है पर वह मारना कब से जान गयी?

भावना के वशीभूत होकर वीणा में प्रभानाथ के लिए क्षणिक मोह अवश्य पैदा हो जाता है, किन्तु कर्तव्य ज्ञान उसे पथ से विचलित होने से बचा लेता है। अपने देश की रक्षा के लिए वीणा वह काम कर दिखाती है जिसे पुरुष-वर्ग नहीं कर सका जिसे सत्ताधारी नहीं कर सके।

अपनी पुरानी आदत के अनुरूप ही टेढ़े मेढ़े रास्ते में भी वर्मा जी की दृष्टि तार्किक रही है। किन्तु प्रस्तुत उपन्यास में उन्होंने अपनी ओर से नहीं पात्रों के माध्यम से तर्क उपस्थित किया है। उनका प्रत्येक पात्र बौद्धिक रूप से प्रौढ़ है और किसी भी वस्तु को तौलने की उसकी अपनी दृष्टि है। विविध सिद्धान्तों और मतों वाले पात्र जब परस्पर मिलते हैं तब उनमें वाद-विवाद हुए बिना नहीं रहता। प्रत्येक पात्र अकाट्य तर्कों द्वारा अपना मत सही सिद्ध करने की कोशिश करता है। ऊपर से अकाट्य दिखने वाले उनके तर्कों में सत्य का अल्पांश ही निहित है। उनके तर्कों में सत्य उतना अधिक नहीं जितना दूसरों के सामने अपने को ऊँचा साबित करने की दुर्दमनीय प्रवृत्ति। और जहाँ उनकी यह इच्छा पूर्ण नहीं होती वहाँ उनका अहम् तिलमिला उठता है। प्रभानाथ के सम्बन्ध में यह अधिक लागू होता है।

पात्रों में तार्किक दृष्टि होने के कारण उनके संवादों की शैली और भाषा भी बहुत तक पूर्ण हो गयी है। जहाँ कहीं वाद-विवाद का अवसर आया है वहाँ उनकी भाषा साधारण स्तर से ऊँची हो गयी है। संवादों में रोचकता एवं सरसता अपार मात्रा में निहित है। विशेषतः झगड़ू मिश्र के कथोपकथन अत्यन्त रोचक है, क्योंकि उनकी भाषा में लोक भाषा वाली मिठास है "का तुम इन्हें नाहीं जानत हो? इनका नाम मनमोहन प्रभा के मित्र आय। तौन शिकार खेलै के लिए गाँव मा आय हैं। और मारकण्डे, हम इनते बातचीत करिके ई निष्कर्ष पर पहुँचन कि ई बहुत विद्वान मनई आय झगड़ू ने सहज भाव से कहा, फिर उसने मनमोहन से कहा और ई मारकण्डे कानपुर मां वकालत करत

तीन ई कांग्रेस के पीछे आपन वकालत अकालत छोड़ि-छाड़ि के जेल चल गये। तीन अब छूट के अपने वण्ग मे दरमन करन चले आये हैं।

टेढे मेढे रास्ते मे वर्मा जी ने अपने पात्र जमान्दार वर्ग से चुने हैं जब कि राष्ट्रीय आन्दोलन के विकास म यह वग सबसे अधिक प्रतिक्रियावादी रहा है। प्रेमचन्द ने भी प्रेमाश्रम म जमान्दार वग से पात्र लिए हैं। प्रेमाश्रम के प्रेम शकर को जिस भाँति अनुताप ग्रस्त नायक कहा जा सकता है उसी भाँति टेढे मेढे रास्ते के दयानाथ उमानाथ और प्रमानाथ अनुताप ग्रस्त पात्र हैं। तद्युगीन समाज मे जहाँ एक ओर सामन्त वग का उत्पीडक समुदाय था वहाँ इसके नवयुवक समाज म एक ऐसा वग भी उत्पन्न हो रहा था जो अपने वग के शोषण और अत्याचार को हेय समझता था। और उसके प्रायश्चित क रूप मे वह इस उत्पीडन और अन्याय को मिटाने के लिए कमर बाँध कर जुटा हुआ था। टेढे मेढे रास्ते के उल्लिखित पात्र इसी वग के हैं। अतएव इस सम्बन्ध म यह आरोप लगाना कि इन पात्रो क सस्कार और आचरण म स्वाभाविकता नही है ठीक नही। जहाँ तक इस वग की अहम्मन्यता का प्रश्न है, वह इन पात्रो म कूट कूट कर भरी है।

टेढे मेढे रास्ते पर एक आलोचक ने यह आरोप लगाया है कि वर्मा जी न चिन्तक के रूप मे और न कलाकार के नाते राजनीतिक उपन्यासकार की मर्यादा का निर्वाह कर पाते हैं। उनका उपन्यास अन्त म पाठक को 'टेढे-मेढे रास्ते' पर ही छोड देता है। न तो पाठक को उद्बुद्ध करने की शक्ति है और न चिंतन के लिए प्रेरणा है बल्कि लेखक स्वय अवज्ञानिक ढग से राजनीतिक विवेचन करके भ्रांतियाँ फलाता है।* वस्तुत ये सभी आरोप अनर्गल और तथ्यहीन हैं। जहा तक राजनतिक उपन्यास का सम्बन्ध है टेढे-मेढे रास्ते अपने युग का एक मात्र सफल राजनतिक उपन्यास है। उसकी तुलना में रखने क लिए हमे कोई ऐसा उपन्यास नहा मिलता। जैसा कि पहले भी कहा जा चुका है प्रेमचन्द के राजनतिक उपन्यास विशुद्ध राजनतिक उपन्यास नहा हैं क्योकि उनके द्वारा उठायी गयी राजनतिक और सामाजिक समस्याए एकाकार हो गई हैं। उनका कर्मभूमि उपन्यास वैसा राजनतिक उपन्यास नही है जसा टेढे मेढे रास्ते है। इसक द्वारा वर्मा जी ने हिन्दी साहित्य को एक प्रौढ राजनतिक उपन्यास दिया है।



---

* डा चण्डी प्रसाद जोशी हिन्दी उपन्यास समाज शास्त्रीय विवेचन पृष्ठ सख्या ४० ४०१ प्र० स०।

भूले-बिसरे चित्र (१९५९)

'टेढ़े-मेढ़े रास्ते' जैसे बृहत् उपन्यास के तेरह वर्ष पश्चात् वर्मा जी का 'भूले बिसरे चित्र' हमारे सामने आया। इस बीच 'आखिरी दांव' (१९५०) तथा 'अपने खिलौने' (१९५७) उपन्यास भी प्रकाशित हो चुके थे। किन्तु 'टेढ़े मेढ़े रास्ते' के बाद वर्मा जी के मस्तिष्क में 'भूले बिसरे चित्र' की रूपरेखा बनने लगी थी। 'मूड' आने पर कभी-कभी वे इसका लेखन भी किया करते थे। इस बीच जीविका के लिए उन्हें बम्बई, लखनऊ और देहली के चक्कर लगाने पड़े। जमकर एक स्थान पर न रह सकने के कारण, इतने बृहत् उपन्यास को लगकर लिखने का अवसर उन्हें नहीं मिल पा रहा था। किन्तु जब १९५५ से वे स्थायी रूप से लखनऊ में रहने लगे, तो उन्होंने तीन-चार वर्ष की अवधि में इसे खूब मनन और इतमीनान के साथ लिखा।

'भूले बिसरे चित्र' में जो प्रौढ़ता और शिल्प-वैशिष्ट्य मिलता है उसके स्पष्ट चिह्न हमें 'टेढ़े-मेढ़े रास्ते' में ही दिखने लगे थे। सम्मिलित-परिवार का टूटना हमने 'टेढ़े मेढ़े रास्ते' में देखा। रामनाथ का प्रत्येक पुत्र पिता की चिन्ता किये बिना परिवार से छिटक कर अपना अलग मार्ग चुन लेता है। यह अवश्य है कि 'भूले बिसरे चित्र' के पात्रों की भाँति जीविकोपार्जन तथा आपसी मतभेद के कारण उन्हें अपने परिवार से सम्बन्ध नहीं तोड़ने पड़ते किन्तु इतना तो है ही कि उन्हें राजनैतिक कारणों से घर से भागे भागे फिरना पड़ता है।

'भूले बिसरे चित्र' एक नायक विहीन उपन्यास है और नायक-विहीन उपन्यास के लक्षण हमें वर्मा जी के प्रारम्भिक उपन्यासों में ही दिखने लगते हैं। प्रारम्भ में ही वर्मा जी में अपने उपन्यासों में एक व्यक्ति का महत्त्व [illegible] प्रवृत्ति नहीं रही। 'चित्रलेखा' में बीजगुप्त की स्थिति जितनी [illegible] कुमारगिरि की स्थिति उससे कम महत्त्व की नहीं है। इसी प्रकार [illegible] 'आखिरी दाँव' 'टेढ़े मेढ़े रास्ते' में नायक तो हैं पर कथा [illegible] वह नहीं है जो एक नायक का होता है। 'तीन वर्ष' में [illegible] अजित प्रतीत होता है रमेश नहीं। 'आखिरी दाँव' में [illegible]

चमेली करती है रामेश्वर नहीं। टेढ़े मेढ़े रास्ते में तो यह नायक-विहीनता और भी स्पष्ट होकर हमारे सामने आती है। रामनाथ क्योंकि दयानाथ उमानाथ और प्रभानाथ के पिता हैं और उनकी अहम्मन्यता से उपन्यास का प्रत्येक पात्र आक्रान्त हो उठा है इसलिए हम उन्हें नायक मन ही मान लें अन्यथा रामनाथ की स्थिति दया उमा और प्रभा के सामने बहुत हल्की बैठती है। कथा सूत्र का संचालन भी रामनाथ के हाथ में नहीं है। वह इन तीनों पात्रों में बिखर गया है कभी एक पात्र कथा सूत्र ले भागता है तो कभी दूसरा पात्र। नायक विहीन उपन्यास का एक लक्षण यह भी है कि उसमें लेखक एक वस्तु और प्रकारान्तर से किसी एक पात्र के आस्था के प्रति आस्था का भाव स्थिर नहीं रख पाता। टेढ़े मेढ़े रास्ते में लगभग सभी पात्र अपने ऊँचे ऊँचे आस्था तथा सिद्धान्त रखते हैं किन्तु लेखक सभी के प्रति अनास्था प्रकट करता है क्योंकि उसके अनुसार सभी अपनी अपूर्णताओं से ग्रस्त हैं। इस प्रकार टेढ़े मेढ़े रास्ते में नायक विहीन उपन्यास के लगभग सभी लक्षण धूमिल रूप में विद्यमान हैं।

प्रश्न यह है कि नायक विहीन उपन्यास से हमारा तात्पर्य क्या है? इसका जन्म किन कारणों से हुआ? इन प्रश्नों का उत्तर देने के लिए हम सूक्ष्मता से सोचना पड़ता है। आज लघुमानव की कल्पना ने महामानव की कल्पना को छिन्न भिन्न कर दिया है और इसी का परिणाम है कि साहित्य में नायक का महत्व घटता जा रहा है। लघुमानव की परिकल्पना का मूल उद्देश्य व्यक्ति की लघुता क्षुद्रता दुर्बलता और नगण्यता का प्रकाशन करना है। अतएव स्पष्ट है कि ठोस आदर्शवादी नायक के स्थान पर क्षुद्रमानव या लघुमानव आया है। इन क्षुद्रमानव को लेखकों ने असीम करुणा और सहानुभूति दी है। बीसवीं शताब्दी का विश्व कथा साहित्य इसका साक्षी है। रूसी कथा साहित्य में तो दीर्घ समय तक दुर्बल नायकों को गौरवान्वित और महिमान्वित करने की परम्परा चलती रही। विदेशी साहित्य की देखा देखी बंगला और हिन्दी कथा-साहित्य में भी दुर्बल चरित्रों को महिमान्वित करने का प्रचलन हुआ। किन्तु इसका एक दुष्प्रभाव दृष्टिगत हुआ। निस्सार गौरव ने मनुष्य को झूठे अभिमान में रमने के लिए प्रोत्साहित किया। यह कल्याणकारी सिद्ध नहीं हुआ। इससे चरित्र निर्माण में क्षति पहुँचने लगी। फलतः दुर्बल चरित्रों की भर्त्सना होने लगी। अतएव अब वर्तमान स्थिति यह है कि एक ओर महामानव की कल्पना युगानुरूप नहीं रही और वह फेन्टसी प्रतीत होती है दूसरी ओर 'लघुमानव मानवता के विकास में कोई योगदान नहीं दे पा रहा है। यद्यपि साहित्य में एक स्कूल ऐसा है जो लघुमानव के गुणगान में लगा हुआ है किन्तु यह

सुस्पष्ट है कि 'लघुमानव' का कोई स्थायी महत्त्व नहीं है। ऐसी स्थिति में नायक का लोप अवश्यम्भावी है।

हमारे सम्मुख मूल प्रश्न यह है कि नायक का विलोप क्यों हो रहा है? इसका सशक्त कारण यह है कि आज मानव मूल्यों में विघटन की प्रक्रिया चल रही है। व्यक्ति एक विचित्र प्रकार के आतंक से ग्रस्त है। वह समझ नहीं पा रहा है कि क्या उसके लिए त्याज्य है और क्या ग्रहण करने योग्य? फलतः आज वह निष्ठावान् नहीं रहा। ऐसी स्थिति में किसी भी ऐसे व्यक्ति का निर्माण असम्भव है जो हमें आत्मशक्ति और प्रेरणा प्रदान कर सके, हमारा मार्ग प्रशस्त कर सके या नायकत्व ग्रहण कर सके। वस्तुतः आज नायकत्व की सामर्थ्य एक व्यक्ति में नहीं रह गयी है, कदाचित् वह बिखर गयी है—व्यक्ति समूह में। दूसरे शब्दों में हम कह सकते हैं कि नायक का अधिकारी एक व्यक्ति नहीं रहा। इस परिवर्तित परिस्थिति और मान्यता का ही परिणाम है कि आज के अधिकांश मूर्धन्य लेखक नायकविहीन उपन्यास लिखने लगे हैं। इन उपन्यासों में समाज का कोई विशिष्ट अंग, कोई विशेष परिवार या विशेष व्यक्ति-समूह उनके चित्रण का विषय रहता है। उपर्युक्त वक्तव्य से इस भ्रान्ति का निवारण भी हो जाता है कि नायक विहीन उपन्यासों से तात्पर्य ऐसे उपन्यासों से नहीं है जिसमें नायक का अस्तित्व नगण्य है और नायिका प्रधान है, प्रत्युत् ऐसे उपन्यासों से है जिनमें कोई पुरुष या स्त्री प्रधान नहीं है। उपन्यास की कथावस्तु भी उन पर केन्द्रित नहीं होती है।

हिन्दी में नायकविहीन उपन्यास की परम्परा अभी हाल की वस्तु है और इन उपन्यासों को उंगलियों पर गिना जा सकता है। हिन्दी के प्रमुख नायक विहीन उपन्यास हैं—धर्मवीर भारती का 'सूरज का सातवाँ घोड़ा', लक्ष्मीकान्त वर्मा का 'खाली कुर्सी की आत्मा', शिवप्रसाद मिश्र रुद्र का 'बहती गंगा', कृश्न चन्दर का 'एक गधे की आत्मकथा' तथा भगवतीचरण वर्मा का 'भूले बिसरे चित्र'। इन सभी उपन्यासों में नायक की परम्परागत मान्यता खण्डित हुई है। 'सूरज का सातवाँ घोड़ा', 'खाली कुर्सी की आत्मा' और 'एक गधे की आत्मकथा' के कथावाचक क्रमशः माणिक मुल्ला, निर्जीव कुर्सी और पशु गधा है। यद्यपि इन उपन्यासों की अपनी विशेषताएँ हैं, किन्तु 'भूले बिसरे चित्र' हिन्दी का सर्वोत्तम नायकविहीन उपन्यास है।

'भूले-बिसरे चित्र' में एक मध्यवर्गीय कायस्थ परिवार की चार पीढ़ियों का कथा है जिसमें सामन्तीय जीवन का ह्रास, मध्य वर्ग का पनपना और अन्त में मध्यवर्गीय धारणाओं के ह्रास का आरम्भ होते देखा और युग-परिवर्तन के

परिणामो को झेला है। उपन्यास के कथानक की पृष्ठभूमि सन् १८८५ १९३० का भारत है और विशिष्ट परिवार के माध्यम से लेखक ने तत्कालीन भारत के भूल बिसरे चित्रों को अपनी संवेदना से गहरा रंग दिया है। उपन्यास को पढ़ते समय हम अतीत भारत मे खो जाते हैं। 'भूले बिसरे चित्र' का कैनवस अत्यन्त विशाल है और उस पर तद्युगीन भारत की सांस्कृतिक सामाजिक आर्थिक और राजनैतिक जीवन की झाँकी उभर आयी है। परिवर्तित परिस्थितियों मे एक परिवार पर क्या प्रभाव पडता है और पीढ़ी दर-पीढ़ी उनके स्वभाव मनोवृत्ति और आचरण म क्या अन्तर आता जाता है इसका कलात्मक चित्रण इस उपन्यास मे उपस्थित है।

सम्पूर्ण उपन्यास पाच छोटे-बडे खण्डो मे विभक्त है। किन्तु लेखक ने प्रत्येक पीढी की कथा को पृथक्-पृथक खण्डों तक सीमित नही रखा है। और इस प्रकार उसने कृत्रिम वस्तु विन्यास का सहारा नही लिया। उपन्यास का खण्ड विभाजन बदलते हुए जीवन मूल्य और कथानक के नये मोडो के आधार पर हुआ है। लेखक ने प्रत्येक पीढी का संघर्ष अपनी गत पीढ़ी से उतना अधिक नही दिखलाया है जितना तत्कालीन वातावरण एव सम्पर्क मे आने वाले व्यक्तियो या व्यक्ति समूह स। पहला खण्ड दो भिन्न सामाजिक स्तर के व्यक्तियो के बाह्य संघर्ष को लेकर लिखा गया है जिसम ज्वालाप्रसाद को अकारण ही मानसिक वेदना सहनी पडती है। युग बदल रहा है और उसके साथ सत्ता एक हाथ स दूसरे हाथ म जा रहा है। ठाकुर और बनिये के इस संघर्ष को लेखक ने बडे प्रबल रूप मे चित्रित किया है। ठाकुर बनिये से सत्ता म नीचा होता जा रहा है पर वह अपना संस्कारजन्य अहम तथा अभिमान नही छोड पाता। वह हमेशा अपने को बनिए से ऊचा समझता है। अपने इसी बडप्पन के कारण ठाकुर बरजोर सिंह प्रभुदयाल से यह कह कर कि हम राजा खानदान के हैं कोई बनिया बक्काल थोडे ही हैं— झगडा मोल ले लेता है। यह झगडा इतना प्रखर रूप धारण करता है कि एक दूसरे की हत्या और आत्म-हत्या मे परिणत हो जाता है। ज्वालाप्रसाद कर्त्तव्य और भावना के चक्कर मे पडकर इस झगडे को शान्त करने का प्रयत्न करता है। न्याय और भावना के संघर्ष को वह अपनी इच्छा से अपने ऊपर ले लेता है यह ऊपर से अस्वाभाविक भले ही लगता हो किन्तु ज्वालाप्रसाद जैसे प्रबुद्ध प्राणी में यह द्वन्द्व उठना मनोविज्ञान की दृष्टि स अत्यन्त स्वाभाविक है। उसका मन लाख कोशिश करता है कि उस दूसरो के झगडे से क्या लेना देना किन्तु उसकी भावुकता तटस्थ रहने से इनकार करती है। बरजोर सिंह और प्रभुदयाल दोनो गलत रास्ते पर हैं यह

ज्वालाप्रसाद जानता है। इसीलिए उसके मार्ग में दुविधापूर्ण स्थिति आ खड़ी होती है और वह अपना कर्त्तव्य निश्चित नहीं कर पाता। एक स्थिति संभालने में दूसरी स्थिति बिगड़ उठती है। और अन्त में उस समस्या को सुलझाने में वह अपना चरित्र गिरा बैठता है बिना अपने स्वार्थ के। इस सब का बड़ा ही मनोवैज्ञानिक चित्रण लेखक ने किया है।

इस खंड में ज्वालाप्रसाद की पारिवारिक समस्याएं नहीं उठायी गयी हैं यह कुछ अस्वाभाविक-सा लगता है। संभवतः लेखक ने ये समस्याएं इसलिए नहीं उठाईं कि ज्वालाप्रसाद ने पहले-पहल ऊंचा सरकारी पद संभाला था और वह अनायास ही इसमें ऐसा फंस गया कि पारिवारिक झगड़ों के उठाने का सवाल ही नहीं रहता। दूसरा खंड पूर्णतः ज्वालाप्रसाद के पारिवारिक झगड़ों से भरा पड़ा है। शक्ति और अधिकार के स्थान परिवर्तन की कहानी इसमें भी है। पहले खंड में यह सामाजिक क्षेत्र में घटित हुई है वही इसमें पारिवारिक क्षेत्र में बीतती है। परिवार का सबसे बड़ा व्यक्ति उसका स्वामी नहीं रह गया। स्वामित्व अब उसके हाथ में आ गया जिसके पैसे का आश्रित पूरा परिवार है। इस पूंजीवादी युग में पैसा ही शक्ति और अधिकार का मापदण्ड बन गया है। पैसे के बल पर बरजोरसिंह और प्रभुदयाल की शक्ति और अधिकार बदले। पैसे के ही बल पर ज्वालाप्रसाद के परिवार में अधिकार और शक्ति के स्थान-परिवर्तन का अवसर आया। घर की मालकिन अब मां नहीं रह गयी, क्योंकि उसका पति कमाता है और पूरे परिवार का भरण पोषण करता है। ज्वालाप्रसाद के परिवार में छोटी-छोटी बातों में अधिकार और शक्ति के बदलते हुए चिह्न देखने को मिलते हैं। मुंशी शिवलाल अब यह देखता है कि अधिकार और शक्ति अपना स्थान बदल रहे हैं एक जगह से हटकर दूसरी जगह जा रहे हैं सम्मिलित परिवार की परम्परा टूट रही है या दिलरी को डांट देते हैं कि वह छोटा अर्थात् राधेलाल की पत्नी का ही मालकिन समझे। पर दिलरी जो जवाब देती है उसमें हमको सम्मिलित परिवार व्यवस्था का रूप हमारे सामने आ जाता है।

दिलरी समझ उठी घर की मालकिन ज्वाला की बहू आय। ई जो सब राजपाट आय ऊन ज्वाला की बदौलत सब भाग रहे हन ।

सम्मिलित परिवार-व्यवस्था अकारण ही नहीं टूटती जा रही है। उसकी बुराइयों और दुष्परिणामों ने उसे अन्दर ही अन्दर खोखला बना दिया है। दूसरों पर आश्रित रह कर परिवार के अन्य सदस्य आवारा और निकम्मे हो जाते

हैं। दूसरे की पसीने की कमाई पर गुलछर्रे उड़ाते हैं और मेहनत का महत्त्व भूल जाते हैं। ज्वालाप्रसाद के चाचा और चचेरे भाइयों में ये सब अवगुण घर कर जाते हैं। इसीलिए यह परिवार व्यवस्था टूटती है। सम्मिलित परिवार को तोड़ने वाली पहली पीढ़ी का व्यक्ति यह कदम उठाने में सकुचाता है क्योंकि जिन संस्कारों में वह पला होता है उसके कारण बड़ों के सामने मुँह खोल कर वह बात नहीं कर सकता। ज्वालाप्रसाद चाचा और भाइयों की जाल-साजी झूठ फरेब और निकम्मेपन से जब तंग आ जाता है उसकी मानसिक वेदना जब चरमसीमा पर पहुँच जाती है तभी वह मुँह खोलता है। एक दो बार तो वह केवल साहस बाँधकर ही रह जाता है ज्वालाप्रसाद के ऊपर से ज्यों-ज्यों शराब का नशा उतरता जाता था त्यों-त्यों उनकी हिम्मत जवाब देती जाती थी। एक बार उन्होंने अपने समस्त साहस को बटोरकर कहा भीखू तुम सुबह चाचा से कह देना कि मुझे इन लोगों का साथ बसना पसन्द नहीं, वे सब लोगों को लेकर फतहपुर चले जायें। खैर कोई बात नहीं। मैं कल सुबह यह सब एक कागज पर लिख दूंगा तुम चाचा को दे देना।

बाद में भी वह बड़ी मुश्किल से इन लोगों से घर से चले जाने को कह पाता है। किन्तु ज्वालाप्रसाद के मन में इन लोगों के प्रति आदर है ममता मोह है। वह इनको रूठकर नहीं जाने देता आदर सत्कार से विदा करता है। किन्तु इनके बाद की पीढ़ी ज्वालाप्रसाद के पुत्र गंगाप्रसाद में सम्मिलित-परिवार के लिए यह मोह भी जाता रहता है। वह तो अपने चचेरे भाइयों को अपना बताने में भी संकोच करता है।

इस खंड का अन्त सम्मिलित-परिवार के टूटने और गंगाप्रसाद के पतन की व्यवस्था करने से होता है। एक लम्बे काल को लाँघकर लेखक तीसरे खंड का आरम्भ करता है। गंगाप्रसाद पढ़ लिखकर डिप्टी कलक्टर बन गया है। तीसरा तथा चौथा खंड गंगाप्रसाद के जीवन से संबंधित है। अब अधिकार शक्तिशाली के हाथ में आ जाता है। गत पीढ़ी और वर्तमान-पीढ़ी के जीवन मूल्य बदल जाते हैं। झूठ और बेईमानी ज्वालाप्रसाद के पिता मंशी शिवलाल के जीवन के आधार थे। उनकी अर्जीनवीसी इन्हीं के आधार पर चलती थी। अपने बेटे से भी वे झूठ एवं बेईमानी का सहारा लेने को कहता है। वह उसे जैन्डे की सम्पत्ति हस्तगत करने की सलाह देता है जालसाजी से दूसरे की जमीन अपने अधिकार में करने के लिए ज्वालाप्रसाद को झूठ बोलने की सलाह देता है। पर ज्वालाप्रसाद इनमें से एक नहीं करता। परिणामस्वरूप शिवलाल के जीवन-मूल्यों से ज्वालाप्रसाद के जीवन मूल्य टकराते हैं और इसमें शिवलाल की

हार होती है। किन्तु मृत्यु का वरण करके ही वह इस हार को अपनाता है। ज्वालाप्रसाद सदैव न्याय और सच्चाई पर डटा रहता है। किन्तु गंगाप्रसाद तक आते-आते जीवन-मूल्यों का विघटन होने लगता है। उसके जीवन-मूल्य व्यक्तिगत स्वार्थ तक ही सीमित हो जाते हैं। वह झूठ नहीं बोलता रिश्वत नहीं लेता पर अपनी अन्त चेतना के अनुसार कोई काम भी नहीं कर पाता। वह अपनी परिस्थितियों से विवश है। अपने पद की मर्यादा का उल्लंघन उसे खो देता है। पद का मोह उसे इतना अधिक है कि अपनी इच्छा के विरुद्ध वह अन्याय करने को विवश होता है। और यही उसके पतन का कारण बनता है। वैसे ज्वालाप्रसाद को क्षणिक आवेश में आकर अपना चरित्र-पतन करना पड़ा था—किन्तु वह उसने स्वार्थवश नहीं दूसरों की भलाई के लिए किया था। किन्तु गंगाप्रसाद अपनी भलाई के लिए अपना पतन करता है। अपनी भावना को दबाने के लिए अपने द्वारा किए अन्याय को सही साबित करने के लिए वह शराब के नशे में अपने को भुलाए रखने की कोशिश करता है। इस मानसिक और बाह्य संघर्ष से वह मुक्ति नहीं पा सकता क्योंकि वह जिस ब्रिटिश सरकार का नौकर है उसने उसे पद का लालच देकर अपने ही देशवासियों पर अत्याचार करने को मजबूर किया है। अंग्रेजों ने जमींदारों और बुद्धिजीवियों के हाथ में कुछ अधिकार देकर अपने ही देशवासियों पर अत्याचार कराया। सिटी मजिस्ट्रेट का पद देकर सरकार ने गंगाप्रसाद को जौनपुर का स्वतन्त्रता-आन्दोलन दबाने की जिम्मेदारी दे दी और गंगाप्रसाद ने उन निष्पक्षता पूर्वक निभाया भी। फिर कानपुर का ज्वाइंट मजिस्ट्रेट बनाकर उसे भेज दिया, जिससे वहाँ भी वह स्वदेशी आन्दोलन का दमन करे। जब सरकार का काम हो जाता है तो वह उसे दूध की मक्खी की तरह निकालकर फेंक देती है। वह फिर से डिप्टी कलक्टर बना दिया जाता है। इस रंगभेद की नीति से वह बुरी तरह झुंझला उठता है गंगाप्रसाद के दिल में जलन भर गयी थी वह लगातार बढ़ती जा रही थी। रह रहकर उसे यह अनुभव हो रहा था कि वह एक असभ्य और उद्दण्ड अंग्रेज से बुरी तरह पराजित हुआ केवल इसलिए कि वह हिन्दुस्तानी है। उसकी इस पराजय का मूल कारण था ब्रिटिश सरकार की रंगभेद की भावना। बिना जाने हुए वह भावनात्मक रूप से ज्ञानप्रकाश के निकट आता जा रहा था। सत्य न्याय मानवता गुलाम के लिए इनका कोई अस्तित्व नहीं है। एक 'गुलाम' की हैसियत से उसका अस्तित्व एक पालतू जानवर की भाँति था जिसे अपने मालिक के इशारों पर चलना होता है जिसमें न कोई चेतना होती है और न कोई भावना ही।

यह अपने अन्दर बार विद्रोह को जितना दबाने का प्रयत्न करता था उतना ही अधिक वह विद्रोह बढता जाता था। और गंगाप्रसाद के इस मानसिक संघर्ष की चरम सीमा सरकारी नौकरी से इस्तीफा लिखा में होती है। किन्तु उसके अन्दरवाली कायरता को सहारा मिल जाता है सुलतान की घटना से। और वह यह कहकर इस्तीफा फाड देता है कि जब गुलामी ही करनी है तो आराम के साथ इस सेवकर क्या न मांगी जाए। किन्तु इस घटना से वह टूट जाता है। मरने से पहले वह अपने पुत्र नवल को अपने टूटने का रहस्य बतलाता है नवल जानते हो मैं क्या टूटा और कैसे टूटा? तुम ताज्जुब करोगे यह जानकर कि अपने को तोड़ने वाला स्वयं मैं हू। मेरी अन्दर वाली कायरता और इस कायरता की घुटन ने मुझे तोड दिया एक दिन मैंने अपनी नौकरी गुलामी और व्यवस्था से विद्रोह किया था। मेरे अन्दरवाला वह विद्रोह वास्तविक था। नाथ बाबा जानते हैं इस बात को। मैंने यह तय कर लिया था कि मैं इस्तीफा दे दूगा। लेकिन अनायास ही मेरे अन्दरवाली कायरता को एक छोटा सा सहारा मिल गया और मेरी कायरता उस पर चढ़ बैठी। मैंने अपना वह इस्तीफा फाड डाला था और अपमान का जहर पी लिया था मैंने। लेकिन वह अपमान का जहर कितना कडुवा था और वह जहर कितना धीमा और घातक था मैं उसी समय टूट गया था जब मैंने अपना इस्तीफा फाड डाला था।'

गंगाप्रसाद के पुत्र नवल की मान्यताए तथा जीवन मूल्य अपने पिता से भिन्न हैं। वह उठती हुई मानव चेतना का प्रतीक है। एक ओर देश की नव चेतना से वह पूर्णत अनुप्राणित है और दूसरी ओर अपने पिता की असफलता के रहस्य से परिचित। उसका पिता पद उन्नति और ध्यान के चक्कर में पडकर अपनी अन्त चेतना के स्वर को नहीं सुन पाया। किन्तु नवल किसी से दबता नहीं है और न ही वह अपनी आत्मा के खिलाफ कोई काम करता है। कैरियर को वह अपने जीवन में उतना अधिक महत्व नहीं देता जितना ममता और भावना को। अपने पिता और परिवार के प्रति कर्तव्य को वह समझता है इसलिए अपने कैरियर और प्यार को वह ठुकरा देता है। उसकी मान्यताए निश्चित और स्पष्ट हैं। कभी एक को अपनाने और दूसरे को छोड़ने की बात उसके मन में आती ही नहीं है। उसे जो कुछ संघर्ष करना पडता है बाहर में करना पडता है अन्तर्मन से नहीं।

नियति और भाग्य के प्रति आग्रह लगभग उपन्यास के सभी पात्रों में है। किन्तु वे उनके जीवन में निष्क्रियता लाने के कारण नहीं बने हैं। प्रत्येक पात्र

संघर्षशील हैं। वर्माजी की रोमांस के प्रति आसक्ति इस उपन्यास में भी बनी हुई है। उसका चित्रण वे बड़ा रस लेकर करते हैं। किन्तु हास्य का प्रस्तुत उपन्यास में अभाव-सा है। छिनकी और शिवलाल वैद्य और ज्वालाप्रसाद में जो चुहल-पन और विनोद हुआ है वह उनके रोमांस का ही एक अंग है। स्वतंत्र रूप में उसका कोई अस्तित्व नहीं है। इस उपन्यास में व्यंग्य अवश्य अधिक मुखर हुआ है पर पूर्ववर्ती उपन्यासों की भाँति वह लेखक की ओर से न होकर पात्रों के पारस्परिक व्यंग्य प्रतिस्पर्धा के रूप में हुआ है। इसलिए वह निरपेक्ष व्यंग्य न होकर व्यक्तिगत रूप में हुआ है। एक-दूसरे को नीचा दिखाने की प्रवृत्ति उनमें अधिक है। और यह प्रवृत्ति इन पात्रों के स्वभाव का अंग है। फलतः उनमें अधमत्व ही निहित है।

लगभग सभी पात्र वर्ग प्रतिनिधि हैं। लेखक का उद्देश्य प्रस्तुत उपन्यास द्वारा मानव-मूल्यों का संक्रमण उपस्थित करना है। फलतः वर्ग प्रतिनिधि पात्र देना उसके लिए आवश्यक था। ठाकुर गजराजसिंह और ठाकुर बरजोरसिंह जहाँ ठाकुर वर्ग के प्रतिनिधि हैं वहाँ प्रभुदयाल उठते हुए बनिया वर्ग का। महाराज और महारानी विजयपुर, राणा प्रतापजंग शमशेर, राजा सत्यजित, प्रमथसिंह राजा-महाराजाओं के अवशेष चिह्न हैं तो लाल रिपुदमनसिंह उस वर्ग के उठते हुए नवयुवक का। राधाकिशन मेहता और कैलाशो एक विशिष्ट वर्ग के प्रतिनिधि-पात्र हैं। इन गिने चुने वर्ग प्रतिनिधि-पात्रों के अतिरिक्त प्रमुख पात्र शिवलाल, ज्वालाप्रसाद, गंगाप्रसाद, नवलकिशोर, ज्ञानप्रकाश, विद्या, सत्यव्रत, मलका उर्फ माया, यमुना आदि पात्र वर्ग प्रतिनिधि मात्र नहीं हैं। इनमें अपने वर्ग की मूल विशेषताएँ अवश्य वर्तमान हैं। किन्तु उससे अधिक उनमें अपना निजी व्यक्तित्व है। उनमें संस्कार और परिस्थितियों से संघर्ष करने की प्रवृत्ति है। उनका समस्त जीवन बाह्य एवं आन्तरिक संघर्ष में बीत जाता है। लेखक ने इस संघर्ष का बड़ा सूक्ष्म निरूपण किया है क्योंकि उसी के द्वारा वह मानव-मूल्यों का संक्रमण दिखा सकता था जो प्रकारान्तर से उपन्यास की आधार शिला है।

प्रत्येक पात्र के द्वंद्व में तीव्रता है—यह द्वंद्व चाहे बाह्य हो या आन्तरिक। परिस्थिति एवं वातावरण से उत्पन्न बाह्य संघर्ष ने पात्रों के मानसिक संघर्ष के रूप में एक विशेष प्रकार की उथल पुथल डाल रखी है। हृदय के इस आलोड़न विलोड़न के कारण वह एक विशिष्ट आचरण अपनाता है। यथा शिवलाल अपने संस्कारों के कारण आत्म-संघर्ष में ऐसा फँसा है कि उन्हें अपना जीवन ही समाप्त कर देना पड़ता है। नए संस्कार झूठ, जालसाजी और धोखाधड़ी करने

वाले हैं। किन्तु अब परिस्थितियाँ बदल गयी हैं वातावरण बदल गया है, इस लिए उनका पुत्र इन सब बातों को अनतिक तथा हेय समझता है। फलत वह यह सब करने का तैयार नहा होता। पिता के आदर्श पुत्र के आदर्शों से टकराते हैं और उसमे पुत्र की ही जीत होती है। किन्तु पुत्र की यह विजय पिता को तोडकर ही नहा रख देती पिता के अन्त का कारण बनती है। एक आदर्श की हत्या म दूसरा आदर्श पनपता है। इस सामाजिक सघष की चरम-सीमा का चित्रण लेखक ने बडी कुशलता से किया है। ज्वालाप्रसाद मे पिता के सस्कारा से अधिक अपने मातृ-कुल के संस्कार हैं जिनके फलस्वरूप उसकी नतिकता अनतिकता की मान्यताए भिन्न प्रकार की बन जाती हैं। वह झूठ जालसाजी धोखेबाजी का अनातक समझता है पर उनका परिष्कृत रूप म उनमा हुआ है। रिश्वत के रूप म वह रुपया पैसा नहा ले सकता किन्तु फल-फूल लेने को वह बुरा नहीं समझता। रिश्वत के रूप म दी गयी वह जेन्ई की अशर्फियों की थली तो लौटा देता है किन्तु जीवन-पयन्त उसकी सहायता लेता रहता है—गगाप्रसाद के भरण पोषण के रूप म। नशे और रोमास के लिए भी उसमे जो कमजोरी है वह भी मुशी शिवलाल वाली कमजोरी का परिमार्जित रूप है। वह जमीदारो की महफिलो म भाग ले सकता है जैन्ई को भौजी के रूप मे अपना सकता है।

गगाप्रसाद के जीवन मे सघष के क्षण अधिक आते हैं क्योंकि उसके काल म मानव मूल्यो का सक्रमण अधिक तेजी से हो रहा था। क्या अपनाना चाहिए और क्या त्याज्य है—इस युग के व्यक्ति के सामने यह समस्या विशेष रूप से थी। जिन लोगो का व्यक्तित्व प्रखर होता है और जो परिस्थिति से लोहा लेने का साहस रखते है वे टूटते नही परिस्थितियो को बदल देते हैं। किन्तु परिस्थितियो के सामने जिनका व्यक्तित्व हल्का पडता है वे उन्हे बदलते तो क्या हैं उनसे जूझकर स्वय टूट जाते हैं। एक ही युग के दो व्यक्ति हैं ज्ञानप्रकाश और गगाप्रसाद। ज्ञानप्रकाश म वह व्यक्तित्व है जो युग निर्माण कर सके चरित्र निर्माण कर सके। परन्तु गगाप्रसाद मे दूसरो की परिस्थितियो मे उथल पुथल लाने की क्षमता भले हो हो स्वय उनसे जूझने वाला व्यक्तित्व नही है। और इसीलिए वह टूट जाता है। अपनी पराजय का उत्तरदायी वह स्वय है।

उपन्यास के गरिमामय चरित्र है—ज्ञानप्रकाश नवलकिशोर विद्या और सरला या माया शर्मा। ज्ञानप्रकाश और नवलकिशोर के माध्यम से लेखक के आदर्श बोलते हैं। विद्या और माया भारत की प्रबुद्ध नारियाँ हैं। छितकी और भीखू के माध्यम से स्वामिभक्त नौकर का चित्रण हुआ है।

वर्मा जी ने नारी को सदैव ही ऊँचा स्थान दिया है। विशेषतः उस नारी को जो समाज की दृष्टि में पतित है। चित्रलेखा सरोज और चमेली का ही दूसरा रूप हमें भूले बिसरे चित्र की मलका में मिलता है। वह वेश्या है पर उसका विरोध पुरुष की कामुकता से है। वह गंगाप्रसाद को प्यार करती है किन्तु इसका यह अर्थ नहीं कि वेश्या होने के नाते वह प्रत्येक व्यक्ति से शारीरिक संबंध स्थापित करे। गंगाप्रसाद जब अलीरजा को उसके घर तक पहुँचाता है तो वह बिगड़ उठती है और मन-ही-मन वह कुछ निश्चय कर लेती है जिससे वह इस कामुक व्यक्ति के हाथ में न पड़े। बाद में गार्हस्थ्य-जीवन अपनाकर और स्वतंत्रता आन्दोलन में सक्रिय भाग लेकर वह अपनी जीवन धारा बदल देती है। उसका यह हृदय-परिवर्तन या जीवन परिवर्तन प्रेमचन्द के नारी-पात्रों की भाँति नहीं है। किसी आदर्श की प्राप्ति के लिए आदर्श-आश्रम की स्थापना उन्होंने नारी-पात्रों से नहीं करायी है।

विद्या एक ऐसी नवयुवती है जिसमें समाज की कुरूपताओं से विद्रोह करने का साहस ही नहीं दुस्साहस भी है। वह अपने ससुराल वालों को मुँहतोड़ जवाब देकर चली आती है। जिस समय विद्रोह की आग उसके दिल में सुलगती है—उसे छोटे-बड़े का ध्यान नहीं रहता। जब उसका श्वसुर शिवेश्वरप्रसाद अपमानजनक शब्द कहता है तो वह शैतान कहीं का कह कर उसकी ओर चप्पल लेकर झपटती है।

यमुना और रुक्मिणी के संस्कार आदर्श भारतीय नारी वाले हैं। टेढ़े-मेढ़े रास्ते के उमानाथ की पत्नी लक्ष्मी की तरह वे अपने पतियों की कमजोरियाँ जानते हुए भी, उनकी पूजा करती हैं जीवन-पर्यंत उनसे सहयोग बनाये रखती हैं। यमुना जैदेई और ज्वालाप्रसाद का अवैध सम्बन्ध जानते हुए भी मौन रहती है। ज्वालाप्रसाद को इस पर आश्चर्य होता है 'तुम्हें मालूम था और तुमने जाहिर नहीं होने दिया तुमने बुरा नहीं माना तुमने शिकायत नहीं की। लम्बरदारिन की तुम इतनी खातिरदारी करती हो यह जानती हुई कि वह तुम्हें तुमसे छीन रही है।

यमुना खिलखिलाकर हँस पड़ी लम्बरदारिन का मुँह कि वह तुम्हें मुझसे छीन सके। इस घर की मालकिन तो मैं हूँ। तुम लम्बरदारिन के साथ हँस-खेल मन ही लो, लेकिन रहोगे मेरे हमेशा-हमेशा के लिए।

प्रस्तुत उपन्यास में वर्मा जी की चरित्र चित्रण शैली में और भी अधिक विकास हुआ है। यद्यपि वे चरित्रों को दिखाई देने का अवसर पूर्णतया छोड़ नहीं

पाये हैं फिर भी वह अत्यधिक कम अवश्य हो गयी है। पात्रों के स्वभाव सम्बन्धी रिपोर्ट ने चरित्र विकास की पूर्व सूचना भले ही दे दी हो पर वह है सच्ची। लक्ष्मीचन्द के सम्बन्ध [redacted] लेकर उसकी किशोरावस्था में ही यह दिखा है कि माता पिता की एक मात्र संतान होने के कारण लक्ष्मीचन्द अभिमानी और उद्धत स्वभाव का था। लक्ष्मीचन्द को अपने पिता के सभी गुण प्राप्त हुए थे। लक्ष्मीचन्द की अवस्था सोलह साल की थी लेकिन वह काफी साहसी था और आस-पास उसका आतंक था। बनिए के लड़के में साहस और दम्भ इसके दो कारण थे। पहला कारण तो यह था कि नाना प्रभुदयाल को जमादार होने के कारण शासन करना पड़ता था। दूसरा कारण यह था कि लक्ष्मीचन्द अपने मामा के यहाँ कानपुर में रहकर अंग्रेजी शिक्षा प्राप्त कर रहा था और नगर वासी बन जाने के कारण उसको हिम्मत खुल गयी थी। इसी किशोर लक्ष्मीचन्द का विकास लखपति पूँजीपति लक्ष्मीचन्द के रूप में होता है। मृत्यु शय्या पर पड़ी जैदेई का यह कथन कि ठीक अपने बाप के गुण पाये हैं तू ने लक्ष्मी ही लेखक की पूर्व सूचना को सत्य प्रमाणित करता है और उसका आचरण भी उसकी पुष्टि करता है।

सब पात्रों का अधिकांश मानसिक संघर्ष उनके आचरण द्वारा अभिव्यक्त हुआ है। प्रत्येक पात्र आन्तरिक [redacted] की छटपटाहट से इतना अधिक ग्रस्त है कि वह उसके आचरण में अनायास ही प्रकट हो उठा है। कभी यह आचरण आकस्मिक रूप में हुआ है और कभी साधारण रूप में। गंगाप्रसाद बड़े ही उत्तेजित स्वभाव का व्यक्ति है इसलिए उसका आचरण प्रायः आकस्मिक रूप में फूटा है। गंगा के इस स्वभाव की पूर्व सूचना लेखक ने दूसरे पात्रों के कथोपकथनों में पहले ही दे दी थी। पंडित सोमेश्वर दत्त कहता है और गंगा की सान्धि अकड़ उसकी सबसे बड़ी दुश्मन है। अपने इसी स्वभाव के कारण गंगा पार्टी में इतना अधिक भड़क उठता है कि उसे यह भी ख्याल नहीं रहता कि वह एक शक्तिशाली अग्रज से उलझ रहा है। बाद में उत्तेजनावश ही वह अपना इस्तीफा लिखता है। और उसी के फलस्वरूप फिर से उसे फाड़ कर भी फेंक देता है। उसके स्वभाव में भावावेश की मात्रा इतनी अधिक है कि उसे आगे पीछे का ध्यान नहीं रहता। मंता के साथ के रोमांस में उसका यह भावावेश अनेक बार प्रकट हुआ है।

लक्ष्मीचन्द और गंगाप्रसाद के आचरण में संगति है क्योंकि वह उनके स्वभावानुकूल है। परन्तु कुछ पात्र ऐसे भी हैं जिनके आचरण ऊपर से देखने में संगतिपूर्ण नहीं लगते। ज्वालाप्रसाद का भावावेश में जैदेई को अपनाना

ऊपर से जहाँ असंगत प्रतीत होता है उसके संस्कारों के प्रकाश में वह संगति पूर्ण है। पिता के संस्कार और परिस्थिति की माँग से वह नहीं टूटने पाता। पात्रों के मनोविज्ञान का विश्लेषण लेखक ने कभी तो दूसरे पात्रों द्वारा कराया है और कभी स्वयं उन्हीं के द्वारा। जैनेन्द्र का आत्मसमर्पण और ज्वालाप्रसाद के उसे ग्रहण करने वाले आचरण की व्याख्या स्वतः पत्नी यमुना करती है। ज्वालाप्रसाद जब अपने इस आचरण से उदास हो उठता है, तो वह कहती है   योग्य सच्चा सहारा ढूँढ़ता है। लम्बरदार के चले जाने के बाद लम्बरदारिन ने तुम्हारा सहारा चाहा। क्योंकि तुम सहारा देने को तैयार थे तो उसे तुम्हारा सहारा मिल भी गया। लेकिन तुम कहीं भाग खड़े न हो। उसे सहारा देना बंद न कर दो इसलिए लम्बरदारिन ने तुम्हारे सहारे का मोल चुकाया है धन से मन से और तन से।

अबोध यमुना के इस कथन से जैसे ज्वालाप्रसाद के हाथ अपने इस आचरण का रहस्य लग जाता है जिसे वह अभी तक समझ नहीं पाया था। फिर तो वह स्वयं ही उसका विश्लेषण कर उठता है। ज्वालाप्रसाद ने एक अजीब आश्चर्य के साथ यमुना को देखा। क्या जो कुछ यमुना ने कहा वह सच है? ज्वालाप्रसाद को वह दिन याद हो आया जब लम्बरदारिन सौ अशर्फियाँ लेकर उसके पास आयी थी, उसे उपहार देने। क्या वह उपहार उस सहारे का मूल्य नहीं था जिसे जैनेन्द्र ने प्रद्युम्न की मृत्यु के समय माँगा था और जिसे उसने बरजोर सिंह के विरुद्ध बयान देकर दिया था? और उस दिन ज्वालाप्रसाद ने सौ अशर्फियाँ वापिस कर दी थीं। जैनेन्द्र को पता चल गया कि ज्वालाप्रसाद धन से नहीं खरीदे जा सकते उनका सहारा मन से ही मिल सकता है। लेकिन मन एक अनिश्चित सत्ता है क्योंकि वह भौतिक नहीं है। अगर मन से ज्वालाप्रसाद अलग थे और आकर्षित थे तो उस आकर्षण का बंद तो कहीं चाहिए जो भौतिक हो, और वह केवल तन हो सकता है।

और ज्वालाप्रसाद को और सम्भवतः अनेक बातें याद हो आयीं। उन्होंने अनुभव किया कि सारे आदमी बुद्धिमान हैं जैनेन्द्र बुद्धिमान है यमुना बुद्धिमान है। अगर इस मामले में कोई निर्बुद्धि है तो वह स्वयं है। ज्वालाप्रसाद को अपनी बुद्धिहीनता पर झुँझलाहट होने लगी है।

जिस समय पात्र किसी विशेष प्रकार का आचरण कर बैठते हैं उस समय वे अपने मनोविज्ञान से परिचित नहीं हो पाते। किन्तु जब उनका भावावेग समाप्त हो जाता है और वे अपना मनोविश्लेषण करने की स्थिति में आ जाते

हैं तब वे अपने आचरण तथा व्यवहार से रहस्य को पा जाते हैं। गंगाप्रसाद जीवन-पर्यन्त टूटता रहा बहुत कुछ खोता रहा, किन्तु वह अपनी पराजय का कारण नहीं समझ पाया। जीवन के अंतिम दिनों में वह अपने टूटने का रहस्य पा जाता है। इसका प्रकाशन वह अपने पुत्र के सामने करता है जिसका उल्लेख प्रसंगवश हम पहले कर चुके हैं।

भूले बिसरे चित्र के संवाद अत्यंत रोचक सरस और पात्रानुकूल हैं। इसमें निरर्थक कथोपकथनों का अभाव है। अधिकांश संवाद चरित्र प्रकाशन में सहायक हुए हैं। ठाकुर बरजोर सिंह की अहमन्यता उन्मत्तता, और अकड़ की अभिव्यक्ति उसके कथनों में प्रकट हुई है हाँ नायब साहब आज हम हाथी को भी अलग करने को तैयार हो गया था अपनी जमीन बचाने के लिए। लेकिन कहना है कि हाथी बांधना आसान है खिलाना कठिन है। वह साला बनिया क्या हाथी पालेगा। तो लौट आये हम। यह कहते-कहते बरजोर सिंह जोर से हंस पड़ा। लेकिन ओजा हमसे न रहा गया और हमने उसके दरवाजे पर थूक कर कह दिया कि बनिये साले हाथी क्या पालेंगे हाथी तो पलता है हम राजकुल वालों के यहाँ।

पात्रानुकूल भाषा होने के कारण संवाद अत्यंत रोचक और स्वाभाविक हो उठे हैं। विशेषकर घसीटे छिनकी और भीखू के संवादों में लोक भाषा का वह माधुर्य है जो पाठक को मोह लेता है। छिनकी का चुलबुलापन उसकी मिजाजी और स्पष्टवादिता उसके संवादों में फूट पड़ी है आगी लागे ई नसा मा और नसा करें वाले मा। पीके बौराय जात है। नेव स आइन मुला अब हम हौली की तरफ न जइब।

वसे वर्मा जी की भाषा स्वयं लोक प्रचलित उर्दू शब्द युक्त है किन्तु जहाँ उन्होंने मुसलमान पात्रों का वार्तालाप दिखाया है वहाँ उनकी भाषा विशुद्ध उर्दू मिश्रित है। शिक्षित पात्रों के संवाद परिष्कृत भाषा में हैं और उनकी प्रौढ़ता के प्रतीक हैं। सभी दृष्टियों से भूले बिसरे चित्र हिन्दी-कथा साहित्य क्षेत्र में अन्यतम कृति हैं और वर्मा जी के कथा-साहित्य की श्रेष्ठतम रचना भी।

[६]

सामर्थ्य और सीमा (१९६२)

कोई-न-कोई समस्या वर्माजी के प्रत्येक उपन्यास में निहित है। पर कहीं वह अलग होकर आया है और कहीं घुलमिल गयी है। 'चित्रलेखा' में समस्या अपना अलग अस्तित्व रखती है, जब कि 'तीन वर्ष', 'आखिरी दाँव', 'टेढ़े-मेढ़े रास्ते' और 'भूले बिसरे चित्र' के कथानक में वह इतनी घुलमिल गया है कि उसका अलग अस्तित्व हम कहीं नहीं दिखता। पर 'सामर्थ्य और सीमा' में एक बार फिर वर्माजी पूरी तरह से समस्या से चिपक गए हैं। प्रस्तुत उपन्यास की समस्या है मनुष्य के सामर्थ्य और सीमा की। लेखक अपनी समस्त रचनाओं में नियतिवादी रहा है। यहाँ भी वह इस सामर्थ्य और सीमा पर अपने नियतिवाद को ही थोपता है।

'सामर्थ्य और सीमा' की समस्या शाश्वत है और इसलिए इसके प्रमुख चरित्र देश-काल की सीमा से परे हैं। पूँजीपति, इंजिनियर, कवि-लेखक, रिपोर्टर, आर्टिस्ट, मंत्री का चरित्रांकन विशाल धरातल पर हुआ है। इनकी मनोवृत्तियों, आदर्शों और आचरण में तथाकथित व्यक्तियों का प्रतिनिधित्व हुआ है। यदि उपन्यास की केन्द्रीय समस्या—उसकी प्रतीकात्मकता हटा दी जाय—तो संपूर्ण उपन्यास में हमें एक ऐसा व्यंग्य व्याप्त मिलता है, जो अत्यन्त तीखा है। यह व्यंग्य है उल्लिखित प्रतिनिधियों पर, समाज की विकृति पर तथा दूषित शासन प्रणाली पर।

'सामर्थ्य और सीमा' का कथानक स्वतंत्र भारत की पृष्ठभूमि पर निर्मित किया गया है। इसलिए स्वतंत्र भारत की सामाजिक, सांस्कृतिक और राजनैतिक स्थिति प्रस्तुत उपन्यास स्वयं ही उभार कर रख देता है। वर्माजी युग का स्थूल खाका खींचने में रुचि नहीं रखते। उनमें युग का सूक्ष्म चित्रण करने की अनुरूप क्षमता है। उनके उपन्यास में किस युग की पृष्ठभूमि है इसका ज्ञान हमें उसके सूक्ष्म वर्णन से ही हो जाता है।

'सामर्थ्य और सीमा' में मिटते सामन्तवर्ग और उनके सांस्कृतिक विघटन का अंकन लेखक ने सूक्ष्मता से केवल संकेतों द्वारा किया है। पूँजीपति वर्ग

की लूट-खसोट वाली मनोवृत्ति को उस वग के आचरण द्वारा प्रतिध्वनित किया है। स्वतन्त्र भारत की शासन नीति पर भी व्यग्य करने से वर्माजी नही चूके हैं। शासन सत्ता जिन लोगो के हाथ म है व अपने स्वार्थों मे उनमें रहते हैं जिससे देश और जनता के काम म ढील पड जाती है। इस प्रकार स्वतन्त्र भारत म जैसे प्रत्येक व्यक्ति लूट-खसोट में लगा है। एक पात्र के शब्दो म—मन्त्री पूजीपतियो को उपकृत करते हैं सरकारी अफसर रिश्वत खाते हैं ठेकेदार चारबाजारी करता है और मजदूर हरामखोरी करते हैं। किसी का कोई कसूर नही। बाँध बनेंगे और टूटेंगे कारखाने लगाए जायेंगे और ठप पडे रहेंगे और जनता के लोग पैसे पैसे पर जान देंगे और बेइमानियाँ करेंगे। इस तरह हमारे देश का निर्माण होता रहेगा। लेखक ने सरकार की जमीदारी उन्मूलन नीति पर प्रहार किया है। जमीदार गए, लेकिन एक-एक जमीदार के स्थान पर सकडो भूमिधर पैदा हो गए। व्यक्तिगत सपत्ति एक से लूटकर पच्चीसो मे बाँट दी गयी। वह सपत्ति पच्चीस भागो मे बट गयी लेकिन रही तो वह इन पच्चीस आदमियो की व्यक्तिगत सपत्ति ही। इस भूमि और सपत्ति का राष्ट्रीयकरण कब हुआ ? तब कुछ हजार इलाकेदार ताल्लुकेदार और जमीदार थे अब उनके स्थान पर करीब-करीब एक करोड भूमिधर पैदा कर दिए गए हैं। चार पाँच प्रतिशत आदमियो को सम्पन्न बनाकर उन्ह सम्पत्ति देकर उनमे पूजीपति मनोवृत्ति पैदा कर दी गयी है। उनम उत्पीडन और शोषण के बीज बो दिए गए हैं।

इन सब के चित्रण के अतिरिक्त सामर्थ्य और सीमा म हिन्दू मुस्लिम साम्प्रदायिक झगडे स्वय भारतीयो की हिन्दी भाषा विरोधी मनोवृत्ति वैवाहिक जीवन की विकृति पर भी प्रकाश डाला गया है।

पर यह है उपन्यास का बाह्य रूप जो अधिक महत्त्व नहा रखता। सामर्थ्य और सीमा का महत्त्वपूर्ण पक्ष है उसमें व्याप्त शाश्वत समस्या। चित्रलेखा और सामर्थ्य और सीमा के जीवन-दर्शन की व्याख्या हम अन्यत्र कर चुके हैं। उसकी पुनरावृत्ति की यहा आवश्यकता नही है। परन्तु यहाँ फिर से इस बात का स्पष्टीकरण करना आवश्यक है कि चित्रलेखा का लेखक एक युवा रोमाटिक कवि है जबकि सामर्थ्य और सीमा का लेखक साठ बष का वयोवृद्ध अनुभव प्राप्त एक प्रौढ विचारक। चित्रलेखा म एक विशिष्ट जीवन दर्शन आप ही आप आ गया है जबकि सामर्थ्य और सीमा मे वह प्रयास द्वारा लाया गया है। एक उत्साही तरुण भावुक कवि विनाश और मृत्यु की कल्पना नहीं कर सकता। यदि करता भी है तो अधिक देर तक उसमें डूबकर उस निराशाजनक अनुभूति

की स्थिति उसके लिए असह्य है। लेकिन प्रौढ़ चिन्तक, जिसने जीवन में ऐसी अनुभूति निरन्तर की है, जिसने अपने चारों ओर मृत्यु और विनाश होते देखा है, अपनी विचारधारा को इसी के चारों ओर घूमती पाता है। अपने चिन्तन से वह इसकी गहन अनुभूति करता है। यही कारण है कि सामर्थ्य और सीमा में हमें चित्रलेखा से सर्वथा भिन्न जीवन-दर्शन मिलता है।

सामर्थ्य और सीमा आज के युग के व्यक्ति की छटपटाहट, विवशता निराशा और विकृति प्रकट करती है। आज का व्यक्ति जिस फ्रस्ट्रेशन की मनःस्थिति से गुजर रहा है वह प्रस्तुत उपन्यास में स्थल स्थल पर प्रतिध्वनित है। वर्तमान लेखकों ने इस फ्रस्ट्रेशन की मनःस्थिति का चित्रण केवल यौन विकृति के माध्यम से व्यक्त किया है, जबकि वर्माजी ने इसकी अभिव्यक्ति जीवन के समूचे पक्ष को लेकर की है। व्यक्ति का यह फ्रस्ट्रेशन सामाजिक सम्बन्धों, राजनैतिक और व्यावसायिक क्षेत्र तथा व्यक्तिगत जीवन में भी व्याप्त है। सभी में हमें विकृति विशृङ्खलता, कुण्ठा और छटपटाहट के दर्शन होते हैं। आज व्यक्ति जिस युग, जिस परिस्थिति से गुजर रहा है उसका अंकन सामर्थ्य और सीमा में बड़ी सूक्ष्मता और गहनता से हुआ है।

सामर्थ्य और सीमा में मृत्यु और विनाश का संगीत है। यह उपन्यास खुलता है, तराई के एक निर्जन प्रान्त में जंगलों के बीच। पर मृत्यु और विनाश का अंकन हमें प्रारम्भ से ही मिलता है। लेखक प्रकृति और प्राणियों में इस अनिवार्य नियम को देखता है पता नहीं जंगल में भी प्राण होते हैं या नहीं। वैसे जन्म लेना मरना शैशव युवावस्था और वृद्धावस्था जीवन के सब चिह्न जंगल में होते हैं। न जाने कितने पशु-पक्षी इन जंगलों की गोद में आश्रय लिए हुए हैं। कभी भयानक रूप से क्रुद्ध और उफनते हुए और कभी निस्पन्द से सूखे हुए नदी-नाले। ये सब जंगल के भाग हैं और जंगल के अन्दर इन अनगिनत प्राणियों में जीवन मरण का संघर्ष चला करता है रोज ही जन्म होते हैं रोज मृत्यु के घेरे लगते हैं। जीवन-मरण की सीमाओं में बंधा प्रकृति का क्रम है वह तो चलता ही रहता है। उपन्यास में हम ज्यों-ज्यों आगे बढ़ते जाते हैं इस भयानकता के संकेत हमें मिलते जाते हैं उस समय मानो जङ्गल प्राणवत् होकर जाग पड़ा था। अजीब-अजीब भयावनी लगने वाली आवाजें उठ रही थीं चारों ओर। दूर पर शेर दहाड़ रहे थे टिटहरी कर्कश स्वर में बोल रही थी कहीं जानवर भाग रहे थे कहीं एक तरह की सरसराहट हो रही थी। पण्डित शिवानन्द शर्मा ने कहा 'मेजर साहब, आपने कभी प्रकृति के इस रूप को भी देखा है? भयावनेपन का कितना सौन्दर्य

सौन्य है यहाँ पर। मैं अपने शब्दों में इस सौन्य को चित्रित करने का प्रयत्न करूँगा। इस प्रकार मृत्यु और विनाश का संगीत धीरे धीरे उभरने लगता है। आज के वैज्ञानिक युग में मनुष्य प्रकृति पर विजय पाता जा रहा है पर प्रकृति का एक दूसरा रूप भी है जिसे नगर ने खोना है। प्रकृति का एक रूप वह भी है जिस पर मनुष्य विजय नहीं पा सकता। मनुष्य बाँध बाँधता है नहरें बनाता है जंगलों को काटता है तो क्या उसने प्रकृति पर पूरी विजय पा ली ? यहाँ लेखक मनुष्य के सामर्थ्य की सीमा दिखाता है। प्रकृति के सामने मनुष्य की हार होती है। जल विप्लव में सब वह जाते हैं समाप्त हो जाते हैं। कुछ लोगों को सामर्थ्य और सीमा का जल विप्लव अस्वाभाविक लगता है पर पहाड़ों के फटने बाढ़ के आने के हमें अनेक उदाहरण मिलते हैं जिससे हम इसकी यथार्थता पर अविश्वास नहीं कर सकते फिर यह जल विप्लव एक प्रतीक के रूप में आया है।

पाँचों सम्पन्न व्यक्तियों को कथा में लाने के बाद नाहरसिंह और मानकुमारी का प्रवेश कराकर लेखक असली नाटक आरम्भ करता है। प्रत्येक चरित्र वर्तमान समाज के विभिन्न व्यक्तियों के प्रतीक रूप में आता है। ये चरित्र दुनिया के हर कोने में बिखरे पड़े हैं। चाहे वह रतनचन्द मकोला हो चाहे देवलकर चाहे ज्ञानेश्वर राव हो और चाहे शिवानन्द शर्मा या एलबर्ट निशान मसूर। लेखक द्वारा वे एक विशिष्ट व्यक्ति के प्रतीक रूप में प्रस्तुत किये गये हैं पर वे स्वाभाविक हैं क्योंकि वे आज के व्यक्ति की किसी न किसी मनोग्रन्थि और विकृति को प्रकट करते हैं।

प्रकृति पर विजय प्राप्त करने के दर्प और अहम् से भी प्रबल मानव में नारी के प्रति आकर्षण है। रानी मानकुमारी उस सौन्य, कोमलता ममत्व और उसके साथ यौन भावना की प्रतिनिधि के रूप में इन दर्प और अहम् से भरे चरित्रों के सामने आती है और इन व्यक्तियों का सारा दर्प और अहम् इस नारी के सामने अपने-अपने ढंग से झुक जाता है। यह आज के ही नहीं युग युग से मनुष्य की संसार में हर काल के व्यक्ति की प्रकृति की कमजोरी है।

यह निश्चित है कि सामर्थ्य और सीमा की रचना लेखक के पूर्व निश्चय द्वारा हुई है। अतः सुनियोजित रचना के कथा-संगठन में शिथिलता का प्रश्न ही नहीं उठ सकता। उसके चरित्र अस्वाभाविक बन जायँ इसकी संभावना अवश्य रहती है। सामर्थ्य और सीमा का कथा-संगठन इस प्रकार की त्रुटि से सर्वथा मुक्त है। अपने प्रयोजन के निमित्त लेखक को जितने कथा विस्तार की आव

उपयुक्त हुई है उससे अधिक का उसने समावेश नहीं किया। फलतः प्रासंगिक कथा और घटनाएं इसमें एक अप्रमुख कथा को छोड़कर और नहीं है। सिगनल-मैन नवलसिंह और स्टेशन मास्टर मिठ्ठनलाल की प्रासंगिक कथा मूल कथा में नहीं खप पायी है। उसका वर्णन लेखक ने मुमनपुर के वातावरण-निर्माण के निमित्त ही किया है। ऐसा भी प्रतीत होता है कि उपन्यास प्रारम्भ करते समय लेखक निश्चित नहीं कर पाया कि उसे क्या कहना है। नवलसिंह और मिठ्ठनलाल को लेकर प्रारम्भ की कथा आरम्भ तो वह कर देता है पर बाद में वह अपने अभिप्रेत के लिए उन्हें निरर्थक समझ कर छोड़ देता है। पर मुमना के निर्माण की प्रारम्भिक व्याख्या निरर्थक नहीं है। उसमें लेखक का उद्देश्य निहित है, जो संपूर्ण उपन्यास का मूल विषय है। लेखक ने मुमना स्टेशन को मनुष्य के थाथ अहम् और सामर्थ्य के प्रतीक के रूप में माना है। उसी वह कहता है 'मनुष्य का यह दावा है कि वह सक्षम है। हिमालय की तराई में घने जंगलों के बीच में बना हुआ वह छोटा-सा स्टेशन जो बाहर के आने वाली हलकी धूप में भी बुरी तरह जल रहा था मानो मनुष्य के इस दावे का प्रमाण था। प्रकृति इस मनुष्य के वश में है वह इस प्रकृति को मनचाहा नवीन रूप देता है वह इस प्रकृति के साथ न जाने कितने खिलवाड़ करता है। तराई का वह जंगल भी तो प्रकृति का एक भाग था। लेकिन जैसे मनुष्य प्रकृति का एक भाग न होकर प्रकृति से भिन्न कोई स्वतंत्र सत्ता है। प्रकृति के नियमों और प्रकृति के क्रम में बंधा हुआ होते हुए भी वह प्रकृति पर शासन करता है। अपनी उस विजय और अपने उस शासन के प्रतीक के रूप में उसने उस मुमना नाम के रूखे स्टेशन का निर्माण किया है।

सामर्थ्य और सीमा की केन्द्रीय कथा एक है—मुमनपुर के नव निर्माण की जिसके लिए कई सक्षम और शक्तिशाली पुरुष वहां एकत्र होते हैं। इसी कथा के अन्तर्गत रानी मानकुमारी और उनके परिवार के लोगों की कथा है जो किसी भी भांति प्रासंगिक कथा नहीं कहा जा सकता। मुमनपुर और उसके आस-पास की भूमि पर रानी मानकुमारी का अधिकार है इसी पर ये सक्षम पुरुष अपने-अपने स्वार्थ के लिए आधिपत्य जमाना चाहते हैं। यहीं निस्सहायता और सामर्थ्य का संघर्ष मार्मिक हो उठता है। कथा की मार्मिकता तब और भी अधिक बढ़ जाती है जब निरीह मानकुमारी की सहायता करने के बहाने ये सक्षम पुरुष उन्हें भी हस्तगत करना चाहते हैं। इस मूल कथा का विकास वर्मा जी ने बड़ी रोचकता से किया है। कथा में अपरिमित कुतूहल और उत्सुकता है तथा अंत के लिए पाठक में सजगता चरमसीमा से बहुत पहले ही जाग्रत हो

उठती है। उपन्यास घटना प्रधान नहीं कहा जा सकता यद्यपि उसकी परिसमाप्ति एक बहुत बड़ी अप्रत्याशित घटना में हुई है। दूसरे शब्दों में हम कह सकते हैं कि उपन्यास कथा प्रधान है किन्तु उसकी चरम सीमा में आकर्षण घटना द्वारा उत्पन्न किया गया है।

सामर्थ्य और सीमा कथा प्रधान उपन्यास है पर फिर भी इसमें कहानी वाला तत्व प्रमुख नहीं है। फलत इसका दृश्य फलक अत्यंत संकुचित है। एक छोटे से क्षेत्र में कुछ गिने व्यक्तियों का वर्णन एवं माह के लिए उपस्थित कर लेखक एक समस्या को प्रस्तुत करने के लिए रोचक कहानी गढ़ने का प्रयत्न करता है। निरर्थक इतिवृत्तात्मकता बनाना उसका उद्देश्य नहीं अपने मन्तव्य का आग्रह उसमें अधिक है। और यहाँ लेखक अपने दृष्टिकोण को अभिव्यक्त करने के लिए स्थल स्थल पर विवाद और तर्क की सामग्री उपस्थित कर बैठता है। किन्तु इसके द्वारा उपन्यास के कथा प्रवाह में अस्वाभाविकता नहीं आई है क्योंकि अपने को सक्षम और प्रकाण्ड पंडित समझने वाले विभिन्न पात्रों का अपने अपने अहम् और दृष्टिकोण को महत्व देने के लिए वाग्विवाद करना, अस्वाभाविक और असंगत प्रतीत नहीं होता। तथापि इतना निश्चित है कि तर्क और विवाद के लम्बे लम्बे स्थल कहीं कहीं अरोचक हो उठे हैं और उससे कथानक में शिथिलता आने लगी है।

प्रस्तुत उपन्यास का निर्माण प्रयोजन-युक्त हुआ है पर लेखक ने यथासंभव प्रयास किया है कि इसका आभास नहीं हो पाये। फलत उसने अधिकांश कथानक का विकास पात्र और घटनाओं के पारस्परिक मिलन एवं संघर्ष द्वारा किया है। कहीं कहीं लेखक को कथावाचक के रूप में भी आना पड़ा है। ऐसा उसने कथाक्रम का बनाए रखने कथा तन्तुओं को एक सूत्र में पिरोने और स्थिति का अंकन करने के लिए किया है। लेखक का यह रूप बड़ा ही रोचक रहा है क्योंकि कवि होने के नाते लेखक ने वर्णन और चित्रण में अपूर्व रोचकता है। एक स्थल यहाँ प्रस्तुत करने योग्य है रोहिणी अपने समस्त वेग के साथ उमड़ती है पर्वत उस वेग को न संभाल सकने के कारण फट पड़ता है और प्रशनगर में रहने वाले सत्तम और समर्थ मानवों का समुदाय विमूढ़ और भयभीत सा तत्वों के इस भयानक संघर्ष को देखता है। बड़ी बड़ी चट्टानें टूट टूट कर गिरती हैं दानवाकार वृक्ष ढह जाते हैं और जल इन सबको तोड़ता हुआ उखाड़ता हुआ बहाता हुआ बढ़ता जा रहा है बढ़ता जा रहा है। टूटती हुई चट्टानें प्रहार करती हैं वे उस जल को सकड़ों फुट ऊपर उछाल देती हैं। गिरते हुए वृक्ष प्रहार करते हैं इस जल पर लेकिन इससे क्या? सब निर्बल है

सब अगम है। सुगम है केवल राहिणी का जल और यह जल जीवन है, यह जल मृत्यु है।

पात्रों का परिचय देने के लिए भी लेखक को कई बार उपस्थित होना पड़ा है। प्रारम्भ में लगभग बयालिस पृष्ठ तो पूर्णत: पात्रों के परिचयात्मक विवरण से पूर्ण हैं। यह परिचय कम नीरस हो जाता यदि लेखक अपने कला-कौशल से बीच-बीच में नाटकीय ढंग से पात्रों की पारस्परिक बातचीत लाकर रोचकता उत्पन्न न कर देता। 'सामर्थ्य और सीमा' का जैसा विषय है, उसके अनुसार उपन्यास में नीरसता और शिथिलता आने की पूरी सम्भावना थी, किन्तु यह वर्माजी जैसे सिद्धहस्त उपन्यासकार की ही सामर्थ्य है कि उन्होंने उसमें किसी प्रकार की विशृंखलता और रोचकहीनता नहीं आने दी है। कथानक का प्रत्येक चरण, पात्रों की बातचीत का प्रत्येक वाक्य, पाठक में आगामी कथा-विकास की दिशा के लिए कुतूहल और उत्सुकता जाग्रत करके जाता है।

कथानक में शिथिलता आने का एक कारण और भी हो सकता है—वह यह कि जिस समय पाठक किसी बात में रस ले रहा हो, उस समय किसी दूसरी चीज द्वारा उसमें व्यवधान उपस्थित हो जाय तो पाठक उस वर्णन से ऊब सकता है। यद्यपि इस सम्बन्ध में वर्माजी पूर्ण सतर्क रहे हैं फिर भी एक स्थल पर वे इस सजगता से चूक गये हैं। राहिणी नदी में बाढ़ आने के उपरान्त कथानक में अत्यधिक तीव्रता आ जाती है। इस स्थल पर वर्माजी पाठकों में कुतूहलता और रुचि उत्पन्न करने में अभूतपूर्व सफल हुए हैं। किन्तु उस स्थल पर इस रोचकता पर आघात हुआ है, जब लेखक रघुराज सिंह के डूबने के समय उसके संस्कार वातावरण स्वभाव और विनोद का विवरण विस्तार से करने लगता है। पृष्ठ ३२२ और ३२३ तक का वर्णन तो उचित है किन्तु उसके बाद इसमें ३२८ तक का विस्तार इस स्थल के लिए उपयुक्त नहीं है। क्योंकि कथा चरम सीमा पर है पाठक इस वर्णन में रुचि नहीं ले पाता। रघुराज सिंह के संस्कार और विनोद द्वारा यदि लेखक उसका चरित्र-चित्रण करना ही चाहता था तो उसके लिए उसे पहले ही कहीं अवसर खोजना था।

उपन्यास के कथा विकास में वर्माजी सदैव संयोग तथा घटनाओं का सहारा लेते आये हैं। यहाँ भी उन्होंने ऐसा किया है। यद्यपि सुमनपुर का निर्माण करने के लिए आने वाला समूह संयोग के कारण परस्पर नहीं मिलता, वह उद्देश्य से एक स्थान पर एकत्र किया जाता है। किन्तु रानी भानुकुमारी से इनकी भेंट

संयोगवश ही होती है—बार बिगड जाने के कारण। फिर संयोगवश ही उपन्यास के अंत में एक महान् घटना या कहना चाहिए दुघटना घटित हो जाती है—अप्रत्याशित ढग से। इसके अतिरिक्त प्रस्तुत उपन्यास म और किसी सयोग तथा घटना का सहारा नही लिया गया। वर्माजी के अन्य उपन्यासो की अपेक्षा इसमे इन दोना का अस्तित्व कम ही है।

'सामर्थ्य और सीमा' का कथानक सुसगठित और कुतूहलपूर्ण है। किन्तु कथा-सगठन के सदर्भ म इस सब के होने के बाद भी एक बात की माँग पाठक की ओर होती है वह यह कि क्या कुतूहल एव उत्सुकता के साथ कहानी म सर सता बनाये रखने मे भी लेखक समर्थ हो पाया है? इस प्रश्न के उठते ही हमें अनुभव हो जाता है कि कथावस्तु का सुसगठित होना और पाठको म उत्सुकता की तीव्रता भर देना मात्र ही रचना की सफलता का प्रमाण नही है। सुनियो जित उपन्यास म तथाकथित गुण विद्यमान हो सकते हैं पर उसमे सरसता और भावनात्मक तीव्रता बडा कठिन काय है। सामर्थ्य और सीमा म हमे यह अभाव स्पष्ट रूप से दृष्टिगोचर होता है। इसका कथा विकास (कथा प्रवाह नही) हमारी बुद्धि को सजग करने मे भले ही समर्थ हुआ है किन्तु हमारे प्राणो मे वह स्पन्दन सचारित नही कर पाता। यह अभाव इस उपन्यास की कलात्मक उपलब्धि की सबसे बडी त्रुटि है। वर्मा जी अपने उपन्यासो मे कहानी वाले तत्व को प्राथमिकता देते आये हैं किन्तु प्रस्तुत उपन्यास मे कहानी वाला तत्व प्रमुख नही है। चित्रलेखा भी एक समस्यामूलक उपन्यास है किन्तु उसमें कहानीवाला तत्व इतना मोहक और आकर्षक है कि पाठक उसे जितनी बार पढ़ता है एक नया रस लेकर। उसम वादविवाद एव तर्कों की भरमार है पर वह इतने आकर्षक और सरस कथानक के रूप मे प्रस्तुत है कि हमे उसकी बोझि लता का आभास नही हो पाता। सामर्थ्य और सीमा मे वह आकर्षण और सर सता नही है। स्थल-स्थल पर वह अरोचक और ऊबा देने वाला हो उठा है। इसका एक कारण तो यह कि जहाँ चित्रलेखा का विषय प्रेम और रोमान है वहाँ सामर्थ्य और सीमा का मृत्यु और विनाश। विषय की सरसता और नीरसता इन दोनों उपन्यासों के अन्तर का कारण है। रोमास म जीने की प्रेरणा होती है इसलिए उस पर आधारित कथानक मे एक धारा प्रवाह और रोचकता आप-ही-आप आ जाती है प्रत्येक पाठक उसके भावनात्मक वेग म बह जाता है। पर मृत्यु और विनाश के अकन मे न तो प्रत्येक पाठक डूब सकता है और न ही भावनात्मक अनुभूति कर सकता। यह अनुभूति एक विशिष्ट अवस्था

और मनःस्थिति में ही हो सकती है। इस कारण 'सामर्थ्य और सीमा' की यह कमी विषयजनित है।

पहले ही कहा जा चुका है कि 'सामर्थ्य और सीमा' लेखक की पूर्व-योजना द्वारा निर्मित है। फलतः इसकी पात्र रचना भी सोद्देश्य है। लेखक ने उतने ही चरित्रों का निर्माण किया है, जितने उसके लिए अभीप्ट हैं। यहीं तक नहीं, लेखक इन चरित्रों का नियामक स्वयं ही बन बैठा है। पहली दृष्टि में तो एकाएक यही एक अनुभव होता है कि प्रत्येक पात्र लेखक के हाथ का बनाया पुतला है, जिसमें अपना कुछ नहीं है। मानो लेखक ने प्रत्येक पुतले का अभीष्ट स्थिर करके कुछ बातें लिखकर रख दिया है कि तुम्हें यह यह करना है और बोलना है, इससे अधिक कुछ नहीं। और इस प्रकार 'सामर्थ्य और सीमा' का मानो एक-एक पात्र लेखक के निर्देशन से काम करता है।

तो क्या 'सामर्थ्य और सीमा' के चरित्र सप्राण नहीं हैं? क्या उनके आचरण और अभिव्यक्ति कृत्रिम बनकर रह गये हैं? इसका उत्तर हमें नहीं में देना पड़ता है। यहीं आकर हमें वर्माजी के कला कौशल का परिचय मिलता है। उन्होंने पात्रों का स्वरूप प्रदान अवश्य किया है किन्तु उनके प्राणों में जो स्पन्दन है वह उनका निज का है। यहीं आकर वे हमारे मन प्राणों को छूते हैं, हमें प्रभावित करते हैं।

सामर्थ्य और सीमा का सबसे अधिक आकर्षक पात्र है—मेजर नाहरसिंह। उनके स्वभाव और आचरण में एक ऐसा सम्मोहन है एवं ऐसी विचित्रता है कि उसकी उपस्थिति में उपन्यास के थमे हुए प्रवाह में गति आ जाती है, रोचकता आ जाती है। अनुभवी बूढ़ों के स्वभाव के भली गुणों के साथ, उसमें युवकों जैसा उल्लास और उमंग है। मुक्त और स्वच्छन्द प्रकृति का नाहरसिंह सबको प्रभावित करता है। उसके स्वभाव का यह गुण युवा और अधेड़ पात्रों के लिए प्रेरणाप्रद है। नाहरसिंह मानता है कि यौवन की तरंग ही जीवन की एकमात्र उपलब्धि है। यही यौवन हमारे अस्तित्व की सार्थकता है। और इससे विरक्ति ही निर्जीवता का पहला लक्षण है। इस प्रकार जीवन के प्रति नाहरसिंह बड़ा स्वस्थ दृष्टिकोण रखता है। उसके अनुसार 'हँसते-हँसते मर जाना बड़ी अच्छी होता है, प्यास और भूख लेकर मरने की अपेक्षा। जो प्यास और भूख लेकर मरता है उसकी आत्मा भटकती रहती है भूख और तृप्ति की तलाश में। और भूख-प्यास शरीर के धर्म हैं—इसलिए उस आत्मा को अशरीर होने के कारण शान्ति नहीं मिलती। इस स्वस्थ जीवन-दृष्टि का ही परिणाम है कि

अनेक अभावो के रहने पर भी नाहरसिंह अपनी स्थिति से कभी असंतुष्ट नही रहा। वह जानता है कि 'रोने से कुछ नही मिलता, इसलिए हँसना ही अधिक अच्छा है।

नाहरसिंह की दृष्टि एक दार्शनिक की दृष्टि है। कोई बात या कोई वस्तु वह साधारण दृष्टि से नही देखता। उसका प्रत्येक कथन दर्शन और तर्क से बोझिल है। मानकुमारी द्वारा सौंदर्य की बात उठने पर, वह सौन्दर्य की भी एक दार्शनिक व्याख्या कर बैठता है। और इतना समझ लो सुन्दरता को कोई नष्ट नहीं करता वह तो स्वयं नष्ट हो जाया करती है। ये जितने फूल खिलते है एक-से एक सुन्दर ये सब के-सब स्वयं मुरझा जाते हैं। वास्तविकता तो यह है कि जन्म और मृत्यु के बीच मे काल की एक छोटी-सी अवधि ही वास्तविक सौन्दर्य की होती है, उस अवधि को हम लोगो ने यौवन का नाम दे रखा है।'

नियति पर आस्था नाहरसिंह की प्रकृति का अभिन्न अंग है। किन्तु उसका नियतिवाद किसी भ्रामक आस्था पर स्थित नही है। जीवन के अनुभव ने उसे नियतिवादी बनाया है। उसने अनुभव से यह जाना है कि नियति का चक्र चल रहा है और इस नियति के चक्र की गति बदलने मे मैं असमर्थ हूँ तुम असमर्थ हो, हरएक आदमी असमर्थ है। बनाने और मिटाने वाला कोई दूसरा ही है हम तो स्वयं बनाए मिटाए जाते हैं। यहाँ किसी का ठिकाना नही, कठपुतलियो का नाच हो रहा है डोर किसी दूसरे के हाथ मे है जिसे हम देख नही पाते। नाहरसिंह घोर नियतिवादी है और प्रत्येक बातचीत के दौरान मे वह इसे खीच लाता है। (बहुत कम पृष्ठो के अन्तर पर बार-बार वह यही बात दोहराता है— पृष्ठ ६६ ७३, १३७ १४३ २४८, २६६ २७६ तथा अन्त के समस्त पृष्ठ)।

किन्तु नियति पर आस्था ने उसमे निर्जीवता और निष्क्रियता नही भर दी है। वह अन्त तक संघर्षरत रहता है। पराजय स्वीकार कर लेना उसके स्वभाव मे नही है। अन्त तक वह युद्ध करता है मृत्यु तक से।

नाहरसिंह मे अपार सहन शीलता है। जीवन की कटुता को उसने हंसते हंसते सह लिया है। अपने एकमात्र पुत्र रघुराजसिंह को वह अपने सामने, विवशता से दम तोड़ते देखता है फिर भी उसकी आत्मशक्ति क्षीण नही होती। उसके साहस और आत्मबल की बराबरी उपन्यास का कोई पात्र नही कर पाता।

नाहरसिंह का नियतिवादी वाला रूप इतना अधिक मुखर हुआ है जिसके कारण उसके स्वभाव के अन्य गुण छिप गये हैं। लेखक ने नाहरसिंह के जीवन

के जिस रूप का चित्रण किया है, उसमें उसका उपयुक्त रूप ही हमारे सामने आता है। उसके गत जीवन का संक्षिप्त परिचय स्वयं लेखक ने अपने शब्दों में दिया है, जिसमें उसके स्वभाव की अन्य विशेषताएं प्रकाश में आयी हैं। परिस्थितिवश उसका बहिरंग कठोर बन गया था, किन्तु स्वयं करुणा को अपना कर उसका हृदय कोमल होता गया।

वर्माजी ने नाहरसिंह को भविष्यवक्ता के रूप में भी चित्रित किया है। उसका यह रूप बड़ा अस्वाभाविक लगता है। यद्यपि उसके अक्खड़-फक्कड़ स्वभाव के कारण वह खप अवश्य जाता है। सम्पूर्ण उपन्यास में आरम्भ से अन्त तक नाहरसिंह द्वारा लेखक का दृष्टिकोण इतना धार और इतना अधिक मुखर हुआ है कि इस पात्र में हमें स्वयं लेखक का भ्रम होने लगता है। वैसे नाहरसिंह के कथन उसके संस्कार स्वभाव और वातावरण के अनुकूल हैं इसलिए उसके कथनों में लेखक द्वारा लादे जाने का आभास नहीं हो पाता।

नाहरसिंह के बाद 'सामर्थ्य और सीमा' का दूसरा आकर्षक चरित्र है—रानी मानकुमारी का। नाहरसिंह के सम्बन्ध में एक बात सबसे अधिक खटकने वाली है कि वह लेखक के मन्तव्य का वाहक है उसका अपना निजी व्यक्तित्व कम है। उसका रूप स्वभाव चरित्र सभी लेखक की रचना है। किन्तु रानी मानकुमारी 'सामर्थ्य और सीमा' का एकमात्र ऐसा चरित्र है जो लेखक के किसी दृष्टिकोण को लेकर उपस्थित नहीं हुआ। उसमें जो कुछ है वह अपना है। इसीलिए वह सामर्थ्य और सीमा का सबसे अधिक सजीव पात्र है। अकृत्रिम सौन्दर्य और सुकुमारता की वह प्रतिमा है। मगर नाहरसिंह के शब्दों में रानी मानकुमारी का व्यक्तित्व साकार हो उठा है' दूसरे को ठोकर रख देने वाले इस सौन्दर्य के भीतर कितना सुकुमार, कोमल और विवश व्यक्तित्व है। सौन्दर्य की रागसिक्तता के अन्दर आत्मा की सात्विकता है। इस सरल और मोहक व्यक्तित्व के कारण शर्मा, ज्ञानेश्वर राव, मकराला, मयूर और दयावर पांचों उसकी ओर आकर्षित होते हैं और उसे अपनाना चाहते हैं। उसमें कामना की अग्नि सुलगती रहती है। वह उसके रूप और यौवन की मांग है इसलिए स्वाभाविक है। वह असामाजिक नहीं कहला सकती। उसमें कलुषित भावनाएं नहीं हैं। वह नारी है और नारी सुलभ दुर्बलता उसमें भी है—किसी पुरुष का सहारा प्राप्त करने की इच्छा।

जीवन के प्रति रानी मानकुमारी का भी बड़ा स्वस्थ दृष्टिकोण है। उमंग उल्लास विलास भाव रंग उत्सव को वह जीवन में महत्त्वपूर्ण स्थान देती है,

क्योंकि अपने को अपनी इच्छा से चिंता, दुःख विराग में डुबा लेना जीवन की अवज्ञा करना है। इसलिए अभावों और चिन्ताओं के बीच भी, वह सदैव प्रफुल्ल रहती है। उसके व्यक्तित्व में एक ऐसी सरलता एक ऐसी आत्मीयता है कि वह सबके मन को मोह लेती है। ज्ञानेश्वर राव के शब्दों में कुछ अजीब-सा उलझा हुआ और मादक व्यक्तित्व था रानी मानकुमारी का। कितनी कोमल कितनी सुकुमार शरीर ही नहीं आत्मा भी। लेकिन उसके प्राणों में एक ही तरह की आग कर्म और गति। एक प्रकाश का पुंज जो अपने चारों ओर जीवन के स्पन्दन वाली उष्णता को बिखेरता है।

सुकुमार मानकुमारी अतिशय भावुक है। उसका हृदय किसी आघात से बड़ी जल्दी द्रवित हो उठता है। कई बार ऐसी स्थिति भी आती है कि भावुकता वश वह रो पड़ती है। किन्तु उसका यह प्रलाप अस्वाभाविक नहीं लगता। सन्तानहीन होने के कारण उसका हृदय और भी अधिक कमजोर और भावुक हो उठा है जिसके कारण वह किसी बात को सह नहीं पाती।

भावुक हृदय होने के साथ साथ रानी मानकुमारी में विलक्षण प्रतिभा है। फलतः उसमें कवि-रूप मुखर हो उठा है। शिवानन्द शर्मा रानी के इस कवि रूप को देख मुग्ध हो उठता है। उसकी कविताओं में उसे मधुर संगीत कोमल सौंदर्य और भावुक कल्पना के साथ महान् प्रतिभा के दर्शन होते हैं। प्रतिभा संपन्न रानी मानकुमारी में वस्तु स्थिति को सही रूप में देखने समझने की भी क्षमता है। भावुकतावश वह किसी प्रवाह में बह नहीं जाती। उनका संयम सदैव उनके साथ रहता है।

सुशिक्षिता सुयोग्य रानी मानकुमारी आधुनिक है किन्तु भारतीय नारी का सांस्कृतिक आवरण वे नहीं हटा पाती। रानी के इस रूप को, देख—उनके संस्कारों को देख—मसूर को बड़ा आश्चर्य होता है। आधुनिकता और पुरातन के इस अद्भुत सम्मिश्रण ने रानी के चरित्र को और भी अधिक ग्राहक एवं गरिमामय बना दिया है। इसीलिए भावुकता पर वह सदैव विजय प्राप्त करती है। उसका संयम उसकी भावुकता पर नियंत्रण रखता है। वैधव्य उसके लिए असह्नाय है और जिन परिस्थितियों में वह है उसमें उसका किसी पुरुष का सहारा लेने के लिए झुकना स्वाभाविक है। किन्तु भारतीय नारी के संस्कार उसे इस बात की स्वीकृति नहीं दे पाते। निश्चय ही, रानी मानकुमारी का चरित्र इस उपन्यास का सबसे बड़ा आकर्षण है।

नाहरसिंह और रानी मानकुमारी के अतिरिक्त अन्य पात्र विभिन्न वर्गों के प्रतिनिधि हैं। इन सब की रचना लेखक ने सोद्देश्य की है। इंजिनियर देवलकर

को छोड़कर अन्य चरित्रों में कोई नवीनता नहीं है। नाहरसिंह और रानी मानकुमारी के बाद देवनकर इस उपन्यास का तीसरा आकर्षक पात्र है। उसके जीवन-संघर्ष ने देवनकर में एक ओर कुण्ठा और घुटन उत्पन्न कर दी थी और दूसरी ओर हठी अहम् के योग से उसका व्यक्तित्व कुछ आवश्यकता से अधिक प्रखर बन गया था। वह निर्भीक निस्पृह आत्मा है। किसी के सामने झुकना उसकी प्रवृत्ति में नहीं है। भौतिक-विज्ञान पर आस्था रखने के कारण देवनकर नास्तिक है। अपने व्यस्त जीवन में उसे वैवाहिक सुख की आकांक्षा नहीं रही। किन्तु रानी मानकुमारी का सौन्दर्य और ममत्व प्रथम बार उनमें यह अभिलाषा जगाता है। 'मेरा जीवन अभी तक अपूर्ण रहता है। आपकी ममता पाकर आज मुझे जो अनुभव हुआ है वह मेरे जीवन का सबसे सुन्दर और महत्त्वपूर्ण अनुभव है। मेरे अन्दर जो अभाव है उसकी पूर्ति मुझे आपसे ही मिल रही है। आपको पाकर मेरा दर्पपूर्ण अहम् विनय और कोमलता को अपना सकेगा। आपका प्रेम पाकर मैं धन्य हो जाऊँगा।' देवनकर का वैवाहिक सुख के लिए यह आकर्षण स्वाभाविक है। लेखक ने यहाँ देवनकर का मानसिक संघर्ष नहीं दिखाया। कदाचित् इसका कारण यही है कि नारी के ममत्व का स्पर्श विशुद्ध भौतिकवादी देवनकर के मन में सहसा जो प्रतिक्रिया होती है वह द्वन्द्वोत्पादन का अवसर नहीं दे पाती।

लेखक की पूर्व-निश्चित-योजना उसके चरित्र-चित्रण में भी प्रतिभासित हुई है। नाहरसिंह, मानकुमारी तथा रघुराज सिंह को छोड़कर शिवानन्द स्वामी, ज्ञानेश्वर राव, मयूर तथा मकोमा वर्ग प्रतिनिधि पात्र हैं। सभी पात्रों का प्रारम्भिक परिचय लेखक ने विवरणात्मक शैली में दिया है। वह इतना अधिक लम्बा तथा अनावश्यक है कि पाठक को ऊब का अनुभव होने लगता है। और जिस ढङ्ग से यह विवरण उपस्थित किया है, वह और भी अधिक अस्वाभाविक हो उठा है। लेखक इन वर्ग प्रतिनिधि पात्रों को एक स्थान पर लाकर खड़ा कर देता है और फिर एक-एक पात्र को लेकर उससे हमारा परिचय कराता है। यह परिचय पात्रों के गत जीवन, उनके स्वभाव उनकी आदतें और समाज में उनके स्थान की सूचना हमें देता है। नाहरसिंह, रानी मानकुमारी तथा रघुराज सिंह का प्रारम्भिक परिचय अधिक रोचक तथा स्वाभाविक ढङ्ग से हुआ है। इन पात्रों को हम पहले किसी अवस्था में पड़ा हुआ देखते हैं और फिर उनकी परिस्थितियों से परिचित होने के बाद उनके गत-जीवन से परिचय प्राप्त करते हैं। विशेषकर नाहरसिंह का प्रथम परिचय पाठकों के याद रह

आश्चर्यक ढङ्ग से हुआ है। पाठक विस्मय और कुतूहल दोनों में एक साथ ही अभिभूत हो उठता है।

सामने सड़क पर एक लम्बा-सा और बूढ़ा-सा आदमी पैण्ट और कमीज पहने और कन्धे पर बन्दूक लटकाए उन पक्के बंगलों की तरफ चला जा रहा था। उसने कार के अन्दर बैठे लोगों की ओर इशारा करके कहा अब समझा। मेहमानों को लेकर आ रही हो। ' सुमनपुर का विश्वास करेंगे ये लोग। कौन इन अभिशापित इलाकों का विश्वास कर सकता है। आप लोग क्या आये हैं यहाँ ? इस आसमान पर चलते हुए चाँद को देख रहे हैं आप ? मेरी विनय है कि आप लोग यहाँ से चले जाइये। आप लोगों से यह बात इसलिए कह रहा ▮ कि आप इस समय रानी बहू के अतिथि हैं और इसलिए आप लोगों के कुशल-क्षेम की कुछ जिम्मेदारी मुझ पर भी है।

पाठकों के मन की पहले पात्रों के परिचय से पैदा हुई ऊब नाहरसिंह के इस प्रथम परिचय से आप ही आप दूर हो जाती है। उन पात्रों से विवरणात्मक परिचय हो जाने के बाद जहाँ उनके सम्बन्ध में और कुछ जानने की उत्सुकता पाठकों के मन में नहीं रहती वहाँ नाहरसिंह के सम्बन्ध में यह प्रथम परिचय मिलने पर पाठक और अधिक जानने के लिए व्यग्र हो उठता है। शिवानन्द शर्मा ज्ञानेश्वरराव मसूर और मकोला के जीवन के सम्बन्ध में लेखक का वक्तव्य पाठक को पूर्वाग्रह से ग्रस्त कर देता है जब कि नाहरसिंह के चरित्र के सम्बन्ध में वह अपना निर्णय देने को पूर्ण स्वतन्त्र है। रतनचन्द्र मकोला के सम्बन्ध में लेखक का यह कहना है कि वे दर्शन शास्त्र से उतनी ही दूर थे जितनी दूर आज का राजनीतिक नेता सत्य से है। मकोला अपने प्रति और दुनिया के प्रति बेहद ईमानदार थे। इस रस्म के आधार से उन्होंने उस व्यक्ति के अन्य देवता को तोड़कर रख दिया । या देवलकर के सम्बन्ध में यह कहना कि देवलकर निर्भीक निस्पृह और खरे आदमी थे। झुकना और खुशामद करना उन्होंने कभी जाना नहीं। देवलकर को केवल अपने ऊपर आस्था थी—भौतिक संस्कृति में डूबा हुआ देवलकर एक प्रकार से नास्तिक था। या ज्ञानेश्वर राव के सम्बन्ध में लेखक का यह कथन कि ज्ञानेश्वर राव किसी की खुशामद नहीं कर सकते थे। या पण्डित शिवानन्द शर्मा का परिचय भावना प्रधान नवयुवक के रूप में दे देने के बाद पाठक के मन में पात्रों की एक निश्चित रूपरेखा बन जाती है। इन पात्रों की क्रिया प्रतिक्रिया दिखाये बिना उनके चारित्रिक गुणावगुणों का उल्लेख अस्वाभाविक ही नहीं, युक्तिसंगत भी नहीं लगता।

इसके अतिरिक्त लेखक के परिचयात्मक विवरण में कहीं-कहीं पुनरावृत्ति भी हो गयी है। मकाला के सम्बन्ध में वह फिर वही बातें दुहराता है—शब्दों के हेर-फेर के साथ—मकाला दार्शनिक नहीं थे, मकाला मनोवैज्ञानिक नहीं थे—उन्हें पन्ने लिखने में रुचि नहीं थी, किताबों में बन्द ज्ञान पर उनकी आस्था नहीं थी। लेकिन उन्होंने जिन्दगी का अध्ययन अच्छी तरह किया था। भावना और धन में एक प्रकार का सन्तुलन होता है—जीवन के अनुभवों ने उन्हें यह बतलाया था। हृदय की भावना कहीं-कहीं चलकर धन से शासित होने लगती है। समझ में नहीं आता मकाला के पहले परिचय और इसमें क्या नवीनता थी कि लेखक को उसकी पुनरावृत्ति करनी पड़ी।

पात्र को किसी विशेष परिस्थिति में डालकर उसकी क्रिया प्रतिक्रिया दिखाने के पश्चात् जब लेखक ने उसके संस्कार और स्वभाव का चित्रण किया है, तब वह चरित्र चित्रण अधिक संगत और प्रभावशाली बन पड़ा है। नाहरसिंह को कई स्थितियों में डालने के उपरान्त जब लेखक पाठक को उसकी प्रकृति से परिचित करा चुकता है, तब वह उसका विश्लेषणात्मक जीवन-परिचय देता है 'नाहरसिंह का हाथ खुला था और दूसरों के दुःख से तत्काल द्रवित हो जाते थे। इसलिए नाहरसिंह कभी सम्पन्न नहीं रहे। अपने कष्टों और दुःखों का जैसे उन्हें अनुभव ही नहीं। बिना नाहरसिंह के अनुभव किये नाहरसिंह का जीवन उनके बाल्यकाल से ही समर्पण का था और इस समर्पण की उदात्त भावना के साथ उनके विरोधी तत्त्व साहस, क्रोध, उद्दण्डता, के कारण नाहरसिंह को लोग कभी ठीक तरह से समझ नहीं पाये। जीवन के कटु अनुभवों के साथ उनकी उदात्त भावना निखरती गयी और उनका व्यक्तित्व विश्व की व्यापक करुणा को अपनाकर कोमल होता गया कोमल होता गया। लेकिन उनका बाहर उतना ही कठोर बना रहा।

पात्रों का प्रारम्भिक परिचय देने के पश्चात् वर्मा जी ने चरित्रों का 'परिस्थिति विशेष में डालकर उनकी क्रिया प्रतिक्रिया, आचरण और कथोपकथन के माध्यम से चरित्रों का उद्घाटन किया है। इन परिस्थितियों का निर्माण भी लेखक ने स्वयं किया है जिसमें परिस्थिति विशेष में पड़कर पात्र का आरम्भिक आचरण फूट पड़े। मकाला, दयाशंकर, शिवानन्द शर्मा और ज्ञानेश्वरराव जिस परिस्थिति में रानी मानकुमारी से प्रेम-याचना करते हैं, वह लेखक द्वारा ही निर्मित है। प्रत्येक व्यक्ति का व्यक्तित्व भिन्न है इसलिए प्रत्येक के प्रेम का आवेग अपने अपने ढंग से प्रकट होता है। शिवानन्द शर्मा साहित्यकार हैं इसलिए उनका प्रेम रानी मानकुमारी की सौन्दर्य प्रशंसा के रूप में प्रकट होता

है 'रानी साहिबा, यह सब क्या हो रहा है ? मुझे विश्वास नहीं होता। एक सपना सा लग रहा है मुझे। (इतनी कोमलता इतना सौन्दर्य, इतनी ममता। मैं इन सबको एक स्थान पर साकार रूप म देख रहा हूँ। जीवन में एक बहुत बड़े अभाव की पूर्ति आपके व्यक्तित्व म मिल रही है मुझे। मेरे जीवन में आपका आना मेरे लिए कितना बड़ा सौभाग्य है। और रानी मानकुमारी का अपनी ओर कुछ झुकाव देखकर प्रतिक्रिया-स्वरूप उनकी भावनाएँ कविता में फूट पड़ती हैं। ज्ञानेश्वरराव पत्रकार है उसका प्रेम मानकुमारी के सौन्दर्य-वर्णन म नही और कुछ से व्यक्त होता है। 'रानी मानकुमारी के कर स्पर्श म ज्ञानेश्वरराव के सारे शरीर मे एक हल्की सी सिहरन दौड गई उनके क्रोध का स्थान एक बारगी ही उनके अन्दरवाली उद्दाम वासना ने ले लिया। उन्होंने रानी मानकुमारी का हाथ दबाते हुए कहा 'रानी साहिबा मैं केवल आपकी सहायता करना चाहता हूँ। आप कितनी अच्छी हैं कितनी स्नेहमयी और ममतामयी हैं। आर्टिस्ट मसूर भी उसी बात को घुमा फिरा कर कहता है, हरेक की अपनी अलग अलग जिन्दगी है अपना अलग अलग रास्ता है। इस लम्बे और थकान स भरे सफर मे कभी-कभी दो राही एक दूसरे से मिल जाते हैं। आँखो की हमदर्दी की दो नन्ही नन्ही बूँदे लिए हुए होठो पर प्यार की मुस्कराहट से भरे बोल लिए हुए। जिसे यह नसीब हो गया वह खुशकिस्मत है। सहारा इसान का नही होता सहारा होता है हमदर्दी का प्यार का। मकोला क्योकि पूजीपति है इसलिए उसकी भावना की अभिव्यक्ति इन तीनो व्यक्तियो से पृथक ढग से होती है। वह रानी मानकुमारी को रुपयो से खरीदना चाहता है।

अन्तर्प्रेरणाओ तथा अन्तद्वन्द्व का चित्रण प्रस्तुत उपन्यास मे सबसे कम हुआ है। किसी घटना या परिस्थिति की प्रतिक्रिया पात्रो के आचरण पर क्या पडी यह तो लेखक ने दिखाया है किन्तु पात्र के मन पर उनका क्या प्रभाव पडा यह वह नही दिखला पाया। इस प्रतिक्रिया का थोडा-बहुत उल्लेख उसने भले ही कर दिया हो पर वह पर्याप्त नही है। प्रत्येक व्यक्ति को अपनी सहायता करते देख रानी मानकुमारी के मन मे हलचल मच जाती है इसका वर्णन लेखक केवल इन थोडे से शब्दो म करके रह जाता है रानी मानकुमारी की समझ में नही आ रहा था कि यह सब क्या हो रहा है और कसे हो रहा है। जैसे उन्हे सोचने विचारने का समय नही मिल रहा था और कोई अज्ञात शक्ति तेजी के साथ उनके जीवन को झकझोर रही थी। कुछ विचित्र प्रकार का अनिश्चय आशाओ तथा आशकाओ से भरा हुआ एक धुध की तरह छा गया

था, उनके चारों ओर कुछ नितान्त नवीन होने वाला है, उनके जीवन में, उनको इस बात का आभास हो रहा था, लेकिन उस नितान्त नवीन के प्रति आकर्षण के साथ एक तरह का भय भी भर गया था उनमें।' क्या ये चार-पाँच व्यक्ति रानी मानकुमारी के मन में केवल इतनी-सी हलचल ही मचा पाये? इससे उसके मानसिक-संघर्ष की अभिव्यक्ति भी तो पूरी तरह नहीं होती।

लेखक ने स्वयं चरित्र-परिचय तथा चरित्र विश्लेषण तो किया ही है दूसरे पात्रों से भी चरित्र-चित्रण कराया है—कथोपकथनों के रूप में। मुख्यतः नाहर सिंह द्वारा लेखक ने पात्रों की चारित्रिक विशेषताएं प्रकट करायी हैं। नाहरसिंह में व्यक्ति को परखने की सूक्ष्म निरीक्षण शक्ति है इसलिए पात्रों के सम्बन्ध में उसके कथन बड़े यथार्थ हैं। शिवानन्द शर्मा के लिए वह कहता है मुझे यह आदमी बहुत अधिक अच्छा लगता है मैं सच कहता हूं, उसके ज्ञान और उसकी प्रतिभा पर मैं चकित हूं और मैं यह भी कह सकता हूं कि वह कायरता की परिधि तक पहुँचने वाला अहिंसात्मक है। लेकिन इसके यह अर्थ नहीं कि वह आदमी निश्चित रूप से अच्छा होगा। देवलकर के सम्बन्ध में वह उसी से कहता है 'इंजिनियर साहब तुम बहादुर हो, साहसी हो, ईमानदार हो। तुम मुझे बहुत पसन्द हो। सिर्फ एक कमी है तुममें, तुम्हारे अन्दर जो दम्भ और अहम् है वह एक चुनौती के रूप में दिखने लगता है।

'सामर्थ्य और सीमा' में किसी चरित्र में आत्म-विश्लेषण की प्रवृत्ति नहीं है। मनोवैज्ञानिक विश्लेषण तथा चरित्र-चित्रण की दृष्टि से प्रस्तुत उपन्यास अत्यन्त कमजोर रचना है। अपने उद्देश्य में लेखक इतना अधिक लीन हो गया है कि उस उपन्यास के कला-पक्ष को सँवारने तक का ध्यान नहीं रहा। सब कुछ उसने अपने उद्देश्य के निमित्त किया है। अपनी उद्देश्य पूर्ति में कदाचित् उसे मनोविश्लेषण की आवश्यकता अनुभव नहीं हुई।

चित्रलेखा की अभिव्यक्ति की भाँति ही सामर्थ्य और सीमा की अभिव्यक्ति काव्यात्मक तथा सरस है। स्थिति-चित्रण दृश्य विधान और प्रकृति चित्रण सभी में लेखक का कवि-हृदय बोलता है रात भर वर्षा होती रही है साधारण वर्षा नहीं, जैसी बरसात की पहली वर्षा होती है जब मिट्टी चमकने लगती है जब प्यासी धरती अमृत बिन्दु के समान पड़ती हुई बूँदों को पीकर अपने अन्दर वाले सौरभ को वायु में बिखेर कर अपनी तृप्ति और अपने उल्लास का प्रदर्शन करती है जब पशु-पक्षी मनुष्य भी पुलककर गा उठते हैं और उत्सव मनाने निकल पड़ते हैं।

रेखा (१९६४)

चित्रलेखा और तीन वर्ष की भाँति ही 'रेखा' (१९६४) में वर्मा जी ने फिर से काम समस्या को ही अपने उपन्यास का विषय बनाया है। किन्तु 'रेखा' में काम विकृति अधिक स्पष्ट और उभरकर आयी है। आज के जीवन की काम कुठाएं बड़ी विचित्र है। इसका मनोविज्ञान बड़ा गूढ़ और रहस्यमय है। रेखा के माध्यम से लेखक ने बड़े अनोखे ढंग से इसे उठाया है। पर कोई समाधान रखने का प्रयास उसने नहीं किया। न ही चित्रलेखा की भाँति उसे 'सु' और 'कु' के अंत तक पहुँचाया है या तीन वर्ष की भाँति निष्कर्ष निकाला है।

प्रेम का रूप क्या है? क्या वह आत्मिक सम्बन्ध मात्र है या शारीरिक सम्बन्ध में ही उसकी परितृप्ति है? मन अपनी बाह्य और अन्तश्चेतना के उलझाव में पड़कर इसका सही उत्तर नहीं खोज पाता। इसकी प्रतिक्रिया होती है व्यक्ति के विचित्र आचरण और असगत व्यवहार के रूप में। रेखा एक ऐसा ही चरित्र है। एक ओर वह रूपगर्विता है और लोगों को आकृति मात्र के रूप में देखती है। अपना सौंदर्य बिखेरती थी रेखा उन आकृतियों पर, केवल इसलिए कि इसमें उसे सुख मिलता था। उसके सौंदर्य से प्रभावित होकर ये आकृतियाँ उसकी सराहना करें यही नहीं ये आकृतियाँ उसके आगे पीछे झुकें उससे अपने को हीन समझें—वह इन आकृतियों पर छा जाना चाहती हो। किन्तु उसका यह गर्व प्रभाशंकर के सम्मुख नहीं टिक पाता। लाख प्रयत्न करने पर भी रेखा डाक्टर प्रभाशंकर को आकृति के रूप में नहीं देख सकी। क्या उनकी दृष्टि में वह स्वयं आकृति ही नहीं एक नाम है। प्रभाशंकर की यह उपेक्षा वह सहन नहीं कर पाती और उसका अन्तर्मन उन्हें अपने सम्मुख झुकाना चाहता है। उसकी यह मनोग्रंथि ठीक चित्रलेखा की भाँति है। चित्रलेखा भी रूपगर्विता है और उसका अन्तर्मन भी कुमारगिरि को अपने सम्मुख झुकाने के अभिप्राय से उससे प्रेम करने का ढोंग रचवाता है। उसकी यह मनोग्रंथि कुमारगिरि के पतन के साथ खुल जाती है। इसके विपरीत रेखा की मनोग्रंथि और भी अधिक उलझन

पैना करती जाती है। जब प्रोफेसर का महान् व्यक्तित्व उसके सम्मुख झुक जाता है तो उसे परम सन्तोष मिलता है, और उसे लगता है कि वह प्रभाशंकर का प्यार करने लगी है। वस्तुत प्रोफेसर के प्रति उसमें असीम श्रद्धा है। यह श्रद्धा प्रारम्भ में उसी भाँति की है जो एक विद्यार्थी की अपने गुरुजन के प्रति होती है। साथ ही इस श्रद्धा में एक अन्तर भी है, जो विपरीत सेक्स वाले दो प्राणियों में होता है। और इसी अन्तर के फलस्वरूप श्रद्धा प्रेम में परिणत हो जाती है। प्रोफेसर के जीवन के सूनेपन अनियमितता और असुविधा को दूर करने के लिए वह उनसे विवाह कर बैठती है। इस विश्व विख्यात व्यक्ति को अपने निकटतम के रूप में पाकर कुछ दिन तक तो वह असीम आनन्द का अनुभव करती है, परन्तु जब उनसे उसकी शारीरिक भूख शान्त नहीं हो पाती, तो एक विचित्र रिक्तता उसके जीवन में भर जाती है। उसकी मनो ग्रंथि विकृत काम-कुण्ठा का रूप धारण कर लेती है। देवकी के लड़के रामशंकर के माध्यम से युवा प्रभाशंकर की कल्पना कर उसके हृदय में हलचल मच जाती है और प्रथम बार वह अनुभव करती है कि प्रभाशंकर में अब 'बासी यौवन की सड़ांध मात्र अवशेष है। प्रथम बार उसके सम्मुख प्रश्न आता है कि आत्मा से पृथक शरीर की भी एक अपनी माँग है जिसे दबाया नहीं जा सकता। उसका चेतन मन इस सत्य को स्वीकार नहीं करता पर शराब के नशे में जब उसका अचेतन जागृत हो उठता है तब उसे अनुभव होता है कि उसे बलिष्ठ बाहों के सहारे की आवश्यकता है, जो उसे युवा पुरुष से ही प्राप्त हो सकता है। अधेड़ प्रभाशंकर से वह सहारा उसे नहीं मिल सकता। ऐसी मनः स्थिति में प्रथम बार वह अपना शरीर किसी पर-पुरुष को सौंप देती है। रामशंकर के द्वारा अपनी पवित्रता भंग होने पर जब उसके यौवन का सम्मोहन टूटता है तब उसे पश्चाताप होता है कि उसने अपने देवता अपने आराध्य के साथ बड़ा विश्वासघात कर डाला। इस स्थल पर लेखक ने रेखा का बड़ा मनोवैज्ञानिक चित्रण किया है। एक भयानक द्वन्द्व मचा हुआ है उसमें भावना और बुद्धि का। असह्य संघर्ष चल रहा था जिसमें रेखा डूबती चली जा रही थी। कितने भव्य थे उसके पति कितना विश्वास था उनका उसके ऊपर। और उनको उसने धोखा दिया। किस तरह वह उनसे अपनी बात कहे, किस तरह वह उनसे क्षमा माँगे? और अपने पति से अपने विश्वासघात की बात कह कर उसे वस्तुत सम्भव है शान्ति मिल भी जाए लेकिन क्या वह अपने देवता में एक भयानक अशान्ति न उत्पन्न कर देगी? क्या अपने पाप की ज्वाला में अपने उसको जलना भारी नहीं है। प्रभाशंकर को भी अपने पाप की ज्वाला में झोंक देना क्या

इससे भी बड़ा पाप न होगा? और प्रोफेसर को सब कुछ बतला देने में ता उसका पाप नहीं धुल जाएगा। भावना पर बुद्धि विजय पाती जा रही थी नहीं अपनी बात वह प्रोफेसर को न बता सकेगी—अपने हित में नहीं, प्रोफेसर के हित में। प्रोफेसर को जरा भी पीड़ा पहुँचे यह उसके लिए असह्य था और यह भयानक पीड़ा वह स्वयं प्रोफेसर को पहुँचाए यह पाप उसके विश्वासघात वाले पाप से भी बड़ा होगा। उसे अपने अन्दर ही प्रायश्चित्त की ज्वाला में जलना चाहिए। इस प्रकार उसका मन उससे दुराव छिपाव का यह बहाना ढूँढ़ता लेता है अनजाने ही उसमें एक दुस्साहस घर कर जाता है। उसका दुस्साहस इतना अधिक बढ़ जाता है कि वह शारीरिक सम्बन्ध के प्रति भी एक निष्ठ नहीं रह पाती। और सोमेश्वर निरंजन शिवेन्द्र वीर शशिकान्त मजर यशवन्तसिंह योगेन्द्रनाथ मिश्र आदि अनेक पुरुषों से शारीरिक सम्बन्ध स्थापित करती है। इस प्रकार उसका आचरण उच्छृङ्खलता की सीमा तक पहुँच जाता है। स्वभावतः यहाँ एक प्रश्न पाठक के मन में उठता है कि तो क्या रेखा चरित्रहीन है? उसमें और एक बाजारू औरत में अन्तर ही क्या रहा? माना कि प्रभाशंकर से उसकी शारीरिक भूख शांत नहीं होती। तो क्या नहीं वह किसी एक पुरुष से शारीरिक सम्बन्ध रख कर तृप्ति का अनुभव करती? इस प्रश्न के उत्तर के लिए हमें मनोवैज्ञानिक सत्य की तह में जाना पड़ता है। जैसा कि हम पहले कह आए हैं एक ओर उसका बाह्य मन अपने पति की पूजा करता है उन्हें देवता मानता है और दूसरी ओर उसका अन्तर्मन शारीरिक तृप्ति चाहता है। फलस्वरूप उसके आचरण में असंगति उत्पन्न हो जाती है। आत्मिक रूप से प्रभाशंकर के प्रति एकनिष्ठ होकर शारीरिक रूप से वह किसी एक के प्रति एकनिष्ठ नहीं हो पाती। प्रत्येक पुरुष से शारीरिक सम्बन्ध रखने के पश्चात् उसे पश्चात्ताप होता है।

काम विकृति प्रभाशंकर में भी है किन्तु उनके दार्शनिक व्यक्तित्व के सम्मुख वह छिप-सा गया है। देवकी के साथ शारीरिक सम्बन्ध होने पर भी उसके प्रति उनके मन में प्रेम सहानुभूति या करुणा जैसी संवेदना नहीं और देवकी को पाने के बाद उन्हें लगा कि स्त्री शरीर की भूख मिटाने की एक सत्ता भर है। स्त्री के सम्बन्ध का कोई भावनात्मक पक्ष भी है यह वह न जान सके। न जाने कितनी स्त्रियाँ उनके जीवन में आयीं और चली गयीं, भावनात्मक रूप से वह किसी के साथ नहीं बंध सके। देवकी इस नियम में अपवाद थी पर वह देवकी से नहीं चिपके थे देवकी उनसे चिपक गयी थी, इस ढंग से कि प्रभाशंकर को इस बात का अनुभव ही न हो पाए। आत्मिक रूप से वे देवकी से उदासीन

बने रहते हैं। देवकी से उनके अपने बच्चे हैं किन्तु उन बच्चों पर भी उनका ममत्व नहीं है, रमाशंकर को देखकर उनके माथे पर बल पड़ जाते हैं। अपने बच्चों को वे अपना बोझ समझते हैं और उनके प्रति अपना कोई कर्तव्य नहीं समझते। वस्तुतः प्रभाशंकर अत्यधिक स्वार्थी और आत्मकेन्द्रित व्यक्ति हैं। अपने अतिरिक्त किसी और की बात नहीं सोच सकते। जीवन के अन्तिम दिन वे स्वयं अपना मनोविश्लेषण करते हुए रेखा से कहते हैं — जहाँ तक मेरा सवाल [illegible] शायद पुरुष का प्रेम वासना से आक्रान्त होता है। मैं अपनी पाशविक भावना में अन्धा हो गया था और मेरी इस पशुता का दण्ड मिल रहा है मुझे। आत्मा के धर्म के साथ शरीर का भी तो कोई धर्म है। अपने शरीर की भूख का तो मैं जानता था, लेकिन तुम्हारे शरीर की भी कोई भूख हो सकती है यह मैं भूल गया था। समस्त मानवीय दुर्बलताएं उनमें हैं। शारीरिक भूख मिटाने के लिए वे युवा पत्नी के रहते वेश्या से मन बहलाव करते हैं।

रेखा और प्रभाशंकर का छोड़ उपन्यास के अन्य पात्र भी कामजनित दुर्बलताओं से ग्रस्त हैं। 'रेखा' हमें समाज के एक ऐसे अंग से परिचित कराती है, जो ऊपर से देखने में बड़ा सम्मानित और सभ्य लगता है, किन्तु जिसका भीतरी रूप बड़ा निकृष्ट है। इसका प्रत्येक पात्र चरित्रहीन और उच्छृंखल है। दार्शनिक होने के नाते प्रभाशंकर एवं योगेन्द्रनाथ मिश्र के चरित्र में थोड़ी-सी गरिमा अवश्य है अन्यथा अन्य पात्रों में छिछलापन, काम विकृतियाँ और चारित्रिक कमजोरियाँ व्याप्त हैं। 'रेखा' को पढ़ते समय हमारे मन-मस्तिष्क में बार-बार एक प्रश्न उठता है कि क्या वस्तुतः यही यथार्थ है? क्या नारी और पुरुष इतने दुस्साहसी हो सकते हैं? क्या शारीरिक भूख नर-नारी को इतना पतित बना सकती है? क्या शारीरिक भूख मात्र ही सब कुछ है? शारीरिक भूख का इतना निकृष्ट रूप देखकर हमारे मन में उसके प्रति वितृष्णा भर जाती है और रेखा की रचनात्मक उपलब्धि के प्रति थोड़ा शंकालु हो उठता है। वर्मा जी की अन्य सभी कृतियों में हमें स्वस्थ जीवन-दर्शन मिलता है। तो क्या 'रेखा' हमें एक अस्वस्थ जीवन-दर्शन देती है? वस्तुतः 'रेखा' का जीवन-दर्शन भी वही है जो वर्माजी की अन्य कृतियों में है। भोगवाद के प्रति लेखक में सदैव आस्था रही है। वह उस अध्यात्मवाद पर विश्वास कभी नहीं कर पाया जिसमें आत्मा के हनन को महत्त्व दिया गया है। 'रेखा' में भी वह यही बात रेखा के शब्दों में कहता है। शरीर की कमजोरियों पर विजय पायी जा सकती है, अपनी आत्मा को दबाकर, उसे कुण्ठित करके। हमारे धर्मशास्त्रों में यही व्यवस्था है— व्रत, उपवास, तपस्या। अपनी आत्मा को कुण्ठित करके शरीर की कमजोरियाँ

समाज असम्मानित हो क्यों न रहा हो ? रेखा से वह स्पष्ट शब्दों में कहती है 'कितने सौम्य, कितने सुशील, कितने विद्वान् थे यह। मैं इन पर मुग्ध था। और जब इनकी पत्नी की मृत्यु हुई तो मुझे इन पर कितनी दया आयी। मैं इन्हें दूर से देखता और मेरी आत्मा में पानी भर आता था। मैं प्रोफेसर को पाना चाहता था और उस समय मुझे अपने पति को हेडमास्टरी दिलाने का बहाना मिल गया। इस के लिए मेरे पास मेरा रूप था, मेरी जवानी थी। और उस दिन मैंने पा लिया प्रोफेसर को। अजीब-सा सौदा था वह, लेकिन उस सौदे के [illegible] सहना किसी के लिए सम्भव नहीं है, प्रोफेसर क्या मेरे लिए भी नहीं है। मैं सच कहता हूँ रेखा, मैंने प्रोफेसर से प्रेम किया है और प्रोफेसर के प्रति मेरी हमेशा ममता रही है। उसने प्रोफेसर के पुत्र को धारण किया और उसकी सन्तान के भरण पोषण के लिए ही वह प्रोफेसर से ब्याही गयी थी। इसलिए उसके प्यार को इस प्रकार स्वयं रेखा से नहीं छीन सकते। प्रोफेसर के प्रति उसके हृदय में सदैव ममत्व बना रहता है यद्यपि उससे उसे सदैव ही दुर्व्यवहार और उपेक्षा मिलता है।

शान्तवती में हमें प्रेम का एक दूसरा ही रूप मिलता है। निष्काम सेवा और लगन उसके प्रेम के आधार हैं। और इस प्रकार वर्माजी ने नारी को कभी गिराया नहीं है।

रेखा एक चरित्र प्रधान उपन्यास है। पात्रों का मनोविश्लेषण लेखक ने बड़े मनोयोग से किया है। मानसिक तनाव इसके प्रत्येक पात्र में है और इसका विश्लेषण कभी लेखक ने स्वयं किया है, कभी स्वयं चरित्र से कराया है और कभी दूसरे पात्रों से। प्रारम्भ का अधिकांश मनोविश्लेषण लेखक द्वारा हुआ है। सबसे अधिक सफल चरित्र-चित्रण तब हुआ है जब एक पात्र दूसरे का चरित्रोद्घाटन स्पष्ट शब्दों में करता है। प्रोफेसर के झूठे अभिमान और अहं का अनुभव पाठक सरलता से नहीं कर पाता यदि स्वयं उनके चरित्र का उद्घाटन यह कहकर न करता कि 'इस पुरुष में कितना अहं है, कितना झूठा आत्म विश्वास है कि वह अपना अहं बड़ी सरलता से उगल देता है, यद्यपि वह दूसरों के अहं को अपने अन्दर वाली न जाने किस तरह में छिपाये रख सकता है।' रेखा का मनोविश्लेषण डाक्टर योगेन्द्रनाथ मिश्र करते हैं। रेखा जब डाक्टर से कहती है कि मैं प्रोफेसर से प्रेम करती हूँ। बेहद प्रेम करती हूँ, तो डाक्टर योगेन्द्रनाथ उसका जो मनोविश्लेषण करते हैं जिसे रेखा का चेतन मन नहीं समझ पाता था। वे कहते हैं "लेकिन मैं तुमसे एक बड़ा कड़ुवा और कठोर सत्य कह रहा हूँ—तुम प्रोफेसर से प्रेम नहीं करती। उनके प्रति तुम्हारे अन्दर

घुस गया है—एक अभेद्य और गहन अंधकार इसी में उसे रहना है। पर यह निर्विकार दर्शन के अन्त की स्वाभाविक परिणति है जो अत्यन्त भाव-नात्मक भी लगी है। प्रभाकर की मृत्यु के आघात से रेखा पागल होकर कह उठती है और जानते हैं नियति ने मेरे साथ क्या क्या खिलवाड़ किया है लेकिन मैं रेखा हूँ—रेखा। सब मिट गए लेकिन यह रेखा—भिन्न-भिन्न कर भी यह अमिट है। और इस प्रकार उपन्यास के शीर्षक की सार्थकता भी स्पष्ट हो जाती है।

उपन्यास की भाषा एकदम अभिव्यंजनापूर्ण है। कुछ स्थानों में अनावश्यक अभिव्यक्ति का सामर्थ्य है। रेखा प्रभाकर या डिनानाथ मिश्र द्वारा अपना शारीरिक सुख प्राप्त करना चाहती है जिसके लिए वह कहती है मुझे तुम अपने प्यार से वंचित न करो मैं तुम्हारे हाथ जोड़ती हूँ—और प्रभाकर मिश्र ने किस प्रकार का अनुराग लिया यह सबका कुछ भी शब्दों के माध्यम से सार्थक भाषा में अभिव्यक्त कर देता है। इस सबका क्या है? जीवन का कठोर सत्य क्या है? आज तक कोई नहीं जान सका। रात घिरती आ रही थी लेकिन योगनाथ के मन में अंधकार छाया हुआ था और प्रकाश पाने के लिए वे प्राण इस अंधकार में डूबते जा रहे थे।



हुए हैं। स्वाधीनता आन्दोलन का जोश और उन्माद अमीर गरीब किसान मजदूर बच्चे-बूढ़े सभी में समा गया था। लोग सहर्ष जेल जाते थे और ब्रिटिश सरकार परेशान थी इन निर्भय लोगों से जो न डरते थे और न झुकते थे। किन्तु एक ओर ऐसा भी वर्ग था जो स्वाधीनता आन्दोलन को कुचलने में अंग्रेजों का साथ दे रहा था। वह वर्ग था—एक तो सरकारी अफसरों का और दूसरी ओर जमींदारों का। इन दोनों का स्वार्थ अंग्रेजों के साथ जुड़ा था। भूले बिसरे चित्र का गंगाप्रसाद ब्रिटिश सरकार की सेवा कर उनका कृपा पात्र बनता है। इसी भांति टेढ़े मेढ़े रास्ते का रामनाथ स्वतन्त्रता आन्दोलन कुचलने में अंग्रेजों को अपना पूरा सहयोग देता है क्योंकि वह जानता है कि हिन्दुस्तान की आजादी का अर्थ होगा जमींदारी प्रथा का अन्त हो जाना। किन्तु व्यापारी वर्ग का स्वार्थ जमींदार वर्ग के स्वार्थ से भिन्न था। हिन्दुस्तान की गुलामी बहुत बड़े अंश में व्यापारिक और आर्थिक गुलामी थी। इंग्लैंड की व्यापारिक नीति से हिन्दुस्तान के पूंजीपतियों को बहुत बड़ा धक्का लगता था। इसलिए व्यापारी वर्ग अपने हित के लिए स्वतन्त्रता आन्दोलन में भाग लेकर ब्रिटिश सरकार से लड़ रहा था। भारत में स्वाधीनता आन्दोलन कई लोगों ने उठाया, पर यह वर्ग केवल कांग्रेस का साथ दे रहा था क्योंकि कांग्रेस के द्वारा विदेशी माल का बहिष्कार और देशी माल का खपत बढ़ रही थी। कांग्रेस का मूलमन्त्र इन्हीं के बूते पर चल रहा था और यही पार्टी स्वाधीनता आन्दोलन की सबसे मजबूत पार्टी थी। क्योंकि साम्यवाद को रूसी सहायता मिलने पर भी पूंजीपतियों के विरोधी होने के कारण आर्थिक स्थिति अच्छी नहीं थी। इसी भांति क्रांतिकारी दल भी हिंसा अपनाने के बावजूद आर्थिक सहायता से वंचित था। और इसलिए उसे डकैती और लूटमार करनी पड़ती थी। टेढ़े-मेढ़े रास्ते में यह विशाल पृष्ठभूमि हमारे सामने आती है। जैसा कि हम पहले कह चुके हैं लेखक किसी मत में आस्था नहीं रखता क्योंकि उसके अनुसार सभी रास्ते टेढ़े-मेढ़े हैं। फिर भी उसका झुकाव क्रांतिकारी दल की ओर स्वभावतः हो गया है। किन्तु सीधी सच्ची बातें में क्रांतिकारी दल को न तो लेखक ने छुआ ही है और न उसमें रुचि दिखलायी है। यहाँ भी लेखक सभी में अनास्था रखता है। लेकिन उसमें अनास्था का भाव वैसा नहीं है जैसा टेढ़े मेढ़े रास्ते में था क्योंकि समय के साथ इन विभिन्न पार्टियों की कार्यप्रणाली और गतिविधि में अन्तर आया। उनसे लेखक की धारणा बदल गयी।

सीधी सच्ची बातें १९३९-१९४८ के भारत के राजनैतिक सामाजिक और आर्थिक पहलुओं पर विस्तार से प्रकाश डालता है। इन बातों का ...

विकृतियाँ मौजूद थी। देश का राजनैतिक वातावरण उग्र सामाजिक और आर्थिक विघटन और संक्रमण का कारण बन रहा था। देश में स्वतन्त्रता आन्दोलन जोरो पर अवश्य था पर उसकी भी अपनी कमजोरियाँ थी क्योंकि जनता और उनके नेताओं के मतैक्य के अभाव में देश कोई निश्चित और ठोस कदम नहीं उठा पा रहा था। गांधी जी की अहिंसा पर लोगो का अटूट विश्वास था किन्तु उसकी निष्क्रियता और कायरता लोगो की प्रतीक्षा का घड़ी असह्य बना रही थी। दूसरी ओर साम्यवाद जन मानस के निकट अवश्य था पर वह तभी तक रह पाया जब तक वह राष्ट्रीय आन्दोलन पर जोर देता रहा। किन्तु बाद में रूस के प्रति सहानुभूति के फलस्वरूप द्वितीय महायुद्ध में उसके सक्रिय भाग लेने पर वह भी भारतीय जनता की सहानुभूति खो बैठा। इसके अतिरिक्त हिन्दू मुस्लिम भेद भाव जिसे अंग्रेजों की 'डिवाइड एण्ड रूल' की नीति ने बढ़ावा दिया था भारत में आपसी फूट को बढ़ावा दे रही थी। गांधी सुभाष नेहरू और जिन्ना के व्यक्तित्वो की टकराहट अपना अलग मतभेद पैदा कर रही थी। फलत उस समय के राष्ट्रीय आन्दोलन विफल हो रहे थे। इस समय महात्मा गांधी ने 'भारत छोड़ो' आंदोलन उठाया पर वह नूरा कुश्ती का रूप धारण कर रह गया। हिन्दू-मुस्लिम भेद और ब्रिटिश सेना तथा देश की पुलिस की निर्दयता के अतिरिक्त इस आन्दोलन के कुचले जाने का मूल कारण था देश की अनैतिकता। इस अनैतिकता ने लूट का रूप धारण कर लिया था। महगाई बेतहाशा बढ़ता जा रही थी और इस महगाई से जनसमुदाय त्रस्त था। एक ओर एक छोटा सा वर्ग बेतहाशा अमीर बनता जा रहा था और दूसरी ओर करोड़ो आदमी अभाव का जीवन व्यतीत कर रहे थे। फलत भारत छोड़ो आन्दोलन की असफलता ने कांग्रेस को तोड़ कर रख दिया था। नेता सब जेल में ठूस दिये गये थे इसलिए कांग्रेस कुछ भी नहीं कर पा रही थी। स्वयं देश भी भूख अकाल बेकारी और दरिद्रता से लड़खड़ा रहा था। जनता मुर्दा हो चुकी थी। और इस प्रकार सीधी सच्ची बात में लेखक तद्युगीन भारत की डवाँडोल अवस्था से हमारा परिचय कराता है।

जब सभी राष्ट्रीय आंदोलनो में लेखक ने अनास्था प्रकट की है तो देश स्वतंत्र कैसे हुआ? यहाँ लेखक एक नवीन दृष्टिकोण रखता है जो उसके नियतिवाद में आस्था का परिचायक है। उसके अनुसार यह स्वतन्त्रता हमे गांधी ने नहीं दिलाई है यह स्वतन्त्रता हमे दिलायी है—हिटलर ने, यह स्वतन्त्रता दिलायी है—सुभाष ने। ब्रिटेन बेतरह कमजोर और तबाह हो गया है—हिटलर ने स्वयं मरते मरते ब्रिटेन को बेतरह तोड़ दिया है। वह स्वतन्त्रता हमे दिलायी है

सुभाष ने जिसने हिंदुस्तानी सेना और नौसेना में हिंसा और विद्रोह के बीज बो दिये थे जिसने स्वयं मरकर देश को एक नया जीवन प्रदान किया।

सीधी सच्ची बातें पढ़ते समय हमें बार-बार यह लगता है कि लेखक काँग्रेस, महात्मा गाँधी की नीति और उनकी अहिंसा की आलोचना करने में रत हो गया है। पर वास्तव में ऐसा नहीं है। वास्तव में सीधी सच्ची बातें में लेखक काँग्रेस और उसके कार्यकर्ताओं के वाद विवाद, समाजवाद और उसके अनुयायियों की निष्क्रियता, साम्यवाद और उसकी विकृतियों को सीधे सच्चे रूप में प्रस्तुत करता है। काँग्रेस, उसकी लीडरशिप और उसकी अहिंसा की नीति के प्रति लेखक प्रारम्भ में ही अनास्था रखता है। लेखक जानता है कि गाँधी में एक सबल व्यक्तित्व था, वह महान् थे, वे देवता थे। पर वह यह भी मानता है कि उनके द्वारा अपनाया अहिंसा काँग्रेस में निष्क्रियता लाने का कारण बन रहा था। लोग अनुभव करने लगे थे कि अहिंसा को असीम मान-स्वीकार के [illegible] कर्महीन होते जा रहे हैं। और ऐसे लोगों का एक दल समाजवाद की ओर मुड़ रहा था। इनका विचारयोग साम्यवाद से बहुत कुछ मेल खाता था। इसके अतिरिक्त दूसरी ओर विशुद्ध साम्यवादी दल था जो वर्ग भेद और ऊँच-नीच मिटाने में लगा हुआ था। 'सीधी सच्ची बातें' के पात्र इसी साम्यवादी विचार धारा के हैं—पर वे सब उच्च-मध्य वर्ग के हैं और इसलिए इनके लिए वस्तु-स्थिति मन्त्र एक शौक और फैशन का मात्र बनकर रह जाता है क्योंकि अभाव से पैदा होनेवाली कुण्ठा उनके पास नहीं है। इस प्रकार 'सीधी सच्ची बातें' लेखक की भी नहीं, साम्यवाद के कार्यकर्ताओं के बहुत-बहुत विचारों और आडम्बरपूर्ण व्यक्तित्व को सीधे-सच्चे रूप में प्रस्तुत करता है। साम्यवाद की स्थिति [illegible] इन लोगों में वाद विवाद और आलोचना की प्रवृत्ति अधिक है क्रियात्मक रूप का कम। इसके अतिरिक्त लेखक का उद्देश्य अपने काल में भारत की सामाजिक अवस्था, जनता की मनोवृत्तियों और मनःस्थिति से हमारा परिचय कराना है। भारत इतने समय तक गुलाम बना रहा, इसके मूल में भारतीय सभ्यता, संस्कृति और इतिहास की दूषित मान्यताएँ निहित थीं। अतः परतन्त्रता के भार में भारत वीरों और कायरों का अभाव [illegible] बन गया था। हिन्दुस्तान की वीर-नारियाँ सदा से [illegible] थीं और वे स्वाभिमान पर अटूट विश्वास करती थीं। [illegible] अंग्रेजों से [illegible] विवाह नहीं करती थीं। अपितु वे उन्हें सम्मान [illegible] करती थीं। निम्नवर्ग में राजनैतिक चेतना नहीं के बराबर थी। [illegible] जिसमें राजनैतिक चेतना थी पर वह कायरता का [illegible] था। [illegible]

वग आपसी मतभेद में इतना उलझा हुआ था कि देश की आन्तरिक समस्याओं की ओर इसका ध्यान ही नहीं जा रहा था। बंगाल में अकाल पड़ा। अभाव ग्रस्त और भूखा जनसमुदाय मौत के मुँह में पड़ा रहा लेकिन इसके प्रति सभी अंधे बने रहे। यही नहीं इस भूखे नंगे जनसमुदाय ने स्वयं भी न कोई विद्रोह किया न कूटमार की। यह सब भारतीयों की निष्क्रियता कायरता और उदासीनता नहीं तो और क्या था? लेखक का उद्देश्य भारत की इसी आर्थिक दुबलता और अनतिकता का प्रकाशन करना है किसी मत की कटु आलोचना करना नहीं है। लेखक ने जो कुछ कहा है वे सीधी सच्ची बातें हैं इनसे हम इन्कार नहीं कर सकते।

सीधी सच्ची बात राजनैतिक चेतना का विकृत रूप ही प्रस्तुत नहीं करता सामाजिक विकृति और व्यक्ति-कुण्ठा को भी प्रकट करता है। कांग्रेस के नाम पर भगवू साहू का अर्थ संचय रूपलाल की धन लिप्सा दशागोपाल की स्वार्थपरता शिक्षण क्षेत्र की अनतिकता उच्च मध्य वर्ग की कुंठाएँ और प्रेम विकृतियाँ जिसके भाग हैं। समाज के इस खोखलेपन को व्यक्ति के कुण्ठित मनोविकारों को लेखक ने नैतिकता और हृदय की ईमानदारी पर विश्वास करने वाले आत्मप्रबुद्ध जगतप्रकाश के लिए वातावरण और परिस्थिति के रूप में ग्रहण किया है। इन परिस्थितियों में आ पड़ता है निम्न मध्य वर्ग का यह व्यक्ति, जिसमें अभाव से पैदा होने वाली कुण्ठा है जो साम्यवाद का ढिंढोरा न पीट कर भी उनके दल में अनायास ही आ पड़ता है। जगतप्रकाश जो अभी तक अहिंसा की पवित्रता पर अटूट विश्वास करता था जो महात्मा गाँधी को महान् मानता था वह साम्यवाद पर गहरी आस्था का अनुभव करने लगता है। और यह राजनीति जगतप्रकाश के लिए खिलवाड़ नहीं बन पाती क्योंकि उसे जीवित रहने के लिए संघर्ष करना पड़ता है। धीरे-धीरे उसका विश्वास हो जाता है कि केवल समाजवाद में यह क्षमता है जो दुनिया को एक बना सके। उसकी समस्या को हल करके विश्व शान्ति स्थापित कर सके। दुनिया के दुःख दैन्य का एक ही इलाज है—समाजवाद। व्यक्तिगत स्वार्थ झूठ बेईमानी जगतप्रकाश के स्वभाव से परे की चीजें हैं। दूसरी ओर कम्युनिज्म का ढिंढोरा पीटनेवाले जसवन्त कुसुम मालती त्रिभुवन और कमलाकान्त के दिल में उसका कोई असर नहीं पड़ता। उनके लिए राजनीति एक शौक की चीज है। वे सब अपनी जमीन जायदाद सम्हालने में लगे रहते हैं। पर जगत प्रकाश के लिए साम्यवाद या राजनीति खिलवाड़ नहीं जीवन दर्शन बन जाते हैं। द्वितीय महायुद्ध में जो एक प्रकार से पीपुल्स वार थी दूसरे शब्दों में जो

आदर्शों और मानवता का युद्ध था, उसमे जगतप्रकाश तटस्थ नही रह पाता। युद्ध क्षेत्र मे जाकर वह खुद उस सघर्ष म योग देता है, क्योकि सशय और घुटन की जिन्दगी से वह ऊब जाता है, जो महायुद्ध और भारत की परतत्रता के कारण उत्पन्न हुई थी। किंतु युद्ध क्षेत्र म जाकर भी उसे सतोष नही मिलता क्योकि उसकी भी अपनी विकृतियाँ थी। फलत अच्छाई, नतिकता और आदर्श पर विश्वास करने वाले युवक जगतप्रकाश के लिए युद्ध क्षेत्र का अनुभव भी बडा तीखा और मर्मघातक होता है। एक अंग्रेज अफसर हिन्दुस्तानी अफसर को अपने से नीचा समझे—यह क्या ? क्या यह रग भेद और जातिभेद का श्राप मनुष्य की सामर्थ्य, सम्पन्नता, शारीरिक और बौद्धिक बल मे है, जो शक्ति शाली और समर्थ है वह श्रेष्ठ है, जो निर्बल और असमर्थ है वह पतित है। मानवता और आदर्शों की लडाई म भाग लेने के लिए जो जगतप्रकाश सेना म भर्ती होकर आया था, वह युद्ध क्षेत्र मे आकर किन्ही और ही विचारों म खो जाता है। 'यह मृत्यु का ताण्डव यह भीषण कराह, ये गोले धमाके। इन सबके बीच वह क्यो आ पडा ? महात्मा गाँधी ने जो अहिंसा का सदेश दिया है, उस सदेश म कही कोई सत्य है—उसे लग रहा था। हिंसा विनाश है, निर्माण नही है। वह विनाश के प्रागण मे आ पडा है, या यह कहना अधिक ठीक होगा कि वह इस विनाश प्रागण म खुद अपनी इच्छा से आया है। शायद इसलिए कि बिना विनाश के निर्माण सभव नही है। मानव समाज म नयी परपराओ का अगर निर्माण करना है, तो उसकी प्राचीन दूषित और विकृत परपराओं को नष्ट करना भी होगा। इन परपराओ को नष्ट करने के लिए इन परपराओ के पोषक और प्रतिपादक तत्वों को भी नष्ट करना होगा। इन्ही तत्वों के विनाश का नाम युद्ध है। लेकिन—लेकिन क्या यह विनाश नितान्त आवश्यक है ?

मनुष्य को मारने की क्या आवश्यकता ? वह तो नश्वर है। वह खुद मर जायगा। नहीं मनुष्य का मारने से काम नही चलगा मनुष्य की परपराओ को नष्ट किया जाना चाहिए। हरेक मनुष्य परपराएँ लेकर जन्म लेता है परपराएँ छोडकर मरता है। मनुष्य परपरा द्वारा निर्मित है लेकिन वह परपरा भी तो मनुष्य द्वारा निर्मित है। मनुष्य के ज्ञान उसके विश्वासो और उसके अनुभवो ने परपरा को जन्म दिया है। ज्ञान विश्वास और अनुभव—ये तीनो आधारभूत रूप म मनुष्य की भावना को उत्पन्न हैं। भावना मारी नही जाती वह केवल बदली जा सकती है। विकृतियो का केवल हृदय परिवर्तन द्वारा नष्ट किया जा सकता है—महात्मा गाँधी का यह मत है। इस रक्तपात

और नर-संहार में तो मनुष्य के अन्दरवाली घृणा उभरती है। उसके अन्दर वाली हिंसा जागती है। मानव समाज की सारी विकृतियाँ इसी घृणा और हिंसा की उपज हैं। घृणा और हिंसा से विकृतियों का नाश नहीं किया जा सकता।

विभिन्न वर्ग और प्रकार के लोगों के संपर्क में अपने जीवनानुभवों में, जगतप्रकाश जो जीवन-दर्शन संचित करता है वह उसकी हिंसा अहिंसा की एक नयी और मौलिक व्याख्या से ओतप्रोत है। वह उस हिंसा पर विश्वास करता है जो मानव कल्याण के लिए आवश्यक है और उस अहिंसा पर अविश्वास करता है जो मनुष्य में कायरता और नपुंसकता भर दे। यद्यपि जगतप्रकाश की मान्यताएँ और विश्वास सुलझे और स्पष्ट नहीं हैं तद्युगीन वातावरण और उसकी परिस्थितियाँ उसके लिए उत्तरदायी हैं पर उसमें हृदय की सच्चाई और अनुभूति की गहराई है। इसलिए वह अपने और दूसरों के प्रति सदैव सच्चा बना रहता है। स्वार्थ उसके स्वभाव के परे की चीज है। परन्तु ल—कातरता उसकी प्रकृति है। किन्तु जीवन की असफलताएँ उसके कटु अनुभव उसे तोड़कर रख देते हैं।

काम-क्षेत्र की असफलताएं जगतप्रकाश में काम-कुण्ठा पैदा कर देती हैं। स्नेह सौहार्द विश्वास और शारीरिक तुष्टि उसे सभी से मिलती है पर वह आत्मिक संतोष उसे किसी से नहीं मिलता जो जीवन भर उसका बना रहे या उसे अपना ले। जिसे भी वह अपना बनाना चाहता है वह किसी और की हो जाती है। कुसुम यमुना मालती सुषमा सभी किसी और की हो जाती हैं। प्रेम के बदले में उसे मिलती है घोर निराशा और अपमान। पर इससे वह निष्क्रिय और उदासीन नहीं हो जाता। एक बार वह टूट सा अवश्य जाता है पर फिर वह एक ही झटके में अपने मन की तमाम कमजोरियों पर विजय पाकर कर्म-क्षेत्र में कूद पड़ता है। निष्क्रिय जीवन उसके लिए असह्य है। मानवता के लिए वह कुछ करना चाहता है। किन्तु वह मन का बड़ा कमजोर है जिसके कारण वह युद्ध क्षेत्र से भाग खड़ा होता है। बंगाल के अकाल पीड़ित क्षेत्र से निकल भागता है। और उसका अंत भी उसकी इसी कमजोरी के कारण होता है। लेखक ने जगत प्रकाश का हृदयांदोलन और अन्तर्द्वन्द्व बड़े अच्छे ढंग से चित्रित किया है। उसका मानसिक संघर्ष बड़ा तीव्र है। एक छोटी-से छोटी बात उसके मन मस्तिष्क में हलचल पैदा कर देती है।

जैसा कि पहले कहा जा चुका है, साम्यवाद का ढिंढोरा पीटने वाले उच्च-मध्य-वर्ग की विकृतियों पर लेखक ने अच्छा व्यंग्य किया है। वर्ग भेद को मिटाने का उनका नारा केवल प्रदर्शन मात्र है। कुसुम जमील अहमद से

न्मलिए घुलमिल जाती है जिससे उसकी मिल का उसस कोई नुकसान न पहुँचे और इसस भी अधिक इसम उस अहम् तुष्टि मिलता है। जसवन्त ठीक ही कहता है लेकिन तुम्हें तो यह दिखाना था कि तुम भद्र भाव के ऊपर ही नहीं हमदर्दी और सहानुभूति की प्रतिमा हो। आत्मा आमतौर स दूसरा का इतना अधिक धोखा नहीं देता जितना वह खुद अपने को देता है। तुम अपना नजर म महान् और उदार दिखना चाहती हो। जगतप्रकाश की वह रुपय स इसलिए, सहायता करती है कि उसस उसके जीवन की मजाकनी दूर होता है, उसके दिखावे का दुनिया घनी रहती है। सलाज आदि का वह इसलिए आर्थिक सहायता करती है कि लोग उसके प्रशंसक बने रहे। सधाटे की मृत्यु पर उसे दुख नहीं होता, उसके यहाँ आकर वह किसी का दुख-दर्द नहीं बाँट सकता केवल पैसान क रूप मे पैसे दे सकती है। जमीर कुसतुम की प्रकृति की ठीक ठीक व्याख्या करता है यह कुमनुम अपने को देने नहीं आयी है यह सिर्फ दूसरा का पाने के लिए निकली है। इसके पास दौलत है, और यह अपनी दौलत म दूसरों को खरीदना जानती है। इसकी दौलत के साथ इसका अस्तित्व इस बुरी तरह स घुलमिल गया है कि दूसरे इसके अस्तित्व के प्रेरक तत्व इसकी दौलत की अहमियत को देख नहीं पाते। कुसतुम में यौन विकृति भी मौजूद है और यह विकृति इसलिए है कि उसम आत्म समपण की भावना नहीं है अधिकार और आधिपत्य की प्रवृत्ति है। जसवन्त एक सबल व्यक्तित्व का पुरुष है वह कुमनुम के आधिपत्य को स्वीकार नहीं कर पाता और इसलिए कुमनुम उसे कभी नहीं पा सकी।

मालती त्रिभुवन और सुषमा उच्च मध्य-वर्गीय समाज की विकृत मनोवृत्ति प्रकट करते हैं। जसवन्त और जमाल अहम् सबल व्यक्तित्व वाले पुरुष हैं। जसवन्त में अभाव वाली कुण्ठा नहीं है पर उसम अन्तश्चेतना की उतनी ही सच्चाई है जितनी जगतप्रकाश में है। वह स्पष्टवादी है कुमनुम की भाँति उसमें प्रदर्शन और अहम् तुष्टि की भावना नहीं है। उसकी मान्यताएँ स्पष्ट और सुलझी हुई हैं। वह किसी प्रकार की काम-विकृति का भी शिकार नहीं है। उसका अहम् पुरुष का अहम् है जो स्त्री से आत्म-समपण चाहता है। शीतला स उसे समपण और प्यार दोनों मिलता है।

कठिन-से कठिन स्थिति का मुकाबला बड़े धैर्य से करता है। किन्तु मुसलमान होने के नाते उसमें धार्मिक मताग्रह वर्तमान है।

उपन्यास में और भी अनेक पात्र हैं पर वे महत्वपूर्ण नहीं हैं। लाला देवराज लाला सेवाराम शिवदुलारी देवी सुखलाल सैलाब आदि से सम्बन्धित इतिवृत्त मूल कथा से सम्बन्धित न होने पर भी निरर्थक नहीं है। वह समाज की विकृति को प्रकट करता है और उसने जगतप्रकाश के हृदय को झकझोरने का काम किया है। इसलिए कथा-सगठन में कोई त्रुटि नहीं है। पर इतना निश्चित है कि सीधी सच्ची बातें में राजनैतिक विवरण आवश्यकता से अधिक अवश्य हो गये हैं। तिथिक्रम से तत्सम्बन्धी विवरण कहीं-कहीं इतना अधिक हो गया है कि हमें इतिहास का भ्रम होने लगता है। लेखक का टेढे मेढे रास्ते भी एक राजनैतिक उपन्यास है किन्तु उसमें यह कमी नहीं है। उसमें राजनैतिक इतिहास का विवरण नहीं है वरन् एक ऐसा गहरा रंग है, जो पाठकों पर अपनी अमिट छाप छोड़ता है। इसका कारण यह है कि उसमें लेखक ने राजनैतिक परिस्थितियों और वातावरण के साथ कथा और पात्रों को ऐसा गूँथ दिया है कि उनसे पृथक एक-दूसरे का कोई अस्तित्व नहीं रह गया है। इसी कारण उसमें रोचकता अधिक है पाठकों में भावनात्मक सवेदना उत्पन्न करने वाला तत्त्व अधिक है। किन्तु सीधी सच्ची बातें में जैसे राजनैतिक वातावरण पात्रों पर थोपा गया है जैसे कृत्रिम स्थितियाँ उनके लिए उत्पन्न की गयी हैं।

किन्तु उपन्यास के कथानक में शिथिलता नहीं है। कथानक नायक के चारों ओर घूमता है। एक प्रकार से लेखक उपन्यास को आत्म-कथात्मक शैली में भी लिख सकता था। अन्य पात्रों तक से हमारा परिचय लेखक नायक की उपस्थिति में कराता है। यहाँ तक कि जो कुछ वह कहता है नायक के मनोविज्ञान को कुरेदने के लिए कहता है और सब कुछ नायक के लिए वातावरण और परिस्थिति उत्पन्न करने के लिए निर्मित करता है। तरह तरह की परिस्थितियों में पड़कर नये-नये लोगों के सम्पर्क में आकर नायक जगतप्रकाश विविध जीवनानुभव सचित करता है और इन्हीं सघर्षों में उसका चरित्र प्रस्फुटित हुआ है। वह अपने आचरण पर स्वय मनन करता है और दूसरों से उसका विश्लेषण कराता है। वह अपने निकट सबसे अधिक जमील को पाता है और उसी से वह अपने मन की बात कहकर अपने मनोविज्ञान की व्याख्या कराता है। अन्य पात्र भी परस्पर एक दूसरे का चरित्र चित्रण करते हैं। कहीं कहीं यह चित्रण पक्षपातपूर्ण अवश्य है पर उसमें सच्चाई भी है इससे हम इनकार नहीं कर सकते।

सीधी सच्ची बातें विशुद्ध यथार्थवादी दृष्टि से लिखा गया उपन्यास है। इसमें लेखक ने कोई जीवन-दर्शन प्रस्तुत करने का प्रयत्न नहीं किया है। उसने सब कुछ यथार्थ रूप में चित्रित किया है। पात्रों के चरित्र की दुर्बलताएं, देश की अनैतिकता और विकृति सबको सीधे सच्चे ढङ्ग से प्रस्तुत किया है।

लेखक ने जो कुछ कहा है वह सच है उससे हम मुक्त नहीं हो सकते। भारत की स्वतन्त्रता हम पर लादी गई है वह हमें मिली नहीं है। क्योंकि देश की स्वतन्त्रता प्राप्ति के उल्लास के साथ महात्मा गांधी की हत्या को लेखक ने एक ऐसा प्रतीक बना लिया है जो अनायास ही परिस्थितियों द्वारा मिली हुई स्वतन्त्रता की असफलता की ओर संकेत करता है। आखिर चार साल की स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद भी हम कहाँ आ पहुँचे हैं? कहीं कुछ कारण तो होना ही चाहिए। 'सीधी सच्ची बातें' में एक जगह जमील जगतप्रकाश से कहता है 'तुम हिन्दू बुतपरस्त हो बिना देवताओं के तुम जिन्दा हो नहीं रह सकते। खुदा जाने यह बुतपरस्ती तुम्हें कहाँ ले जायगी?' और प्रस्तुत उपन्यास में लेखक यह स्पष्ट कह देता है कि हमने सिर्फ देवता की पूजा की है, उस देवता की मानसिक गुलामी में अपने अन्दर वाले चेतन—मानव की हत्या करके। जगतप्रकाश का डूबकर मरना भी एक प्रतीक है—हमारे बिखराव और टूटन का। और इसी लिए सीधी सच्ची बातें में लेखक में अनास्था का भाव तीव्रतम हो गया है। इसके पहले उपन्यास में उसकी आस्थाएं हिल उठी हैं उसके विश्वास धूमिल पड़ गये हैं किन्तु इस उपन्यास में आते-आते उसकी सारी आस्थाएं एकदम टूट गयी हैं उसके अन्दर वाले सारे विश्वास नष्ट हो चुके हैं। और इसी अनास्था ने उसमें नियति पर विश्वास जगाया है। नियति हमारा जीवन सत्य है हमारा विश्वास है।

कहानियाँ

वर्माजी मे कहानी गढने की अद्भुत क्षमता है और उनके पास कहानियो का अक्षय भडार है भी। वैसे वर्माजी उपन्यासकार पहले हैं कहानीकार बाद म। किन्तु सब कहानियो को लेकर अगणित उपन्यास तो लिखे नही जा सकते। वैसे उनमे कथाकार वाला एक रूप और है छोटी कहानी को बृहत् रूप देने का। उनका वह फिर नही आई उपन्यास पैसा तुम्हे खा गया नाटक उनकी इस क्षमता के परिचायक हैं। उपयुक्त दोनो उपन्यास और नाटक पहले कहानी रूप मे ही थे बाद मे उन्हे प्रस्तुत रूप मिला। इन दोनो के विषय तथा भाव म कोई अन्तर नही आया है केवल रूप विधान परिवर्तन के। इसके अतिरिक्त वर्माजी एक ही विषय को दो प्रकार की सवेदनात्मक अनुभूति का साधन बनाने की कला म भी निपुण हैं। दो बाके कहानी सग्रह म सग्रहीत कहानी मेज की तस्वीर इसी शीर्षक से राख और चिनगारी नामक कहानी सग्रह म भी सग्रहीत है। दोनो की कथा एक है दोनो के नायक का नाम एक है। मेज की तस्वीर को लेकर ही नायक का मानसिक द्वन्द्व आरभ होता है। किन्तु दोनो की सवेदना भिन्न भिन्न हैं। राख और चिनगारी वाले सग्रह की कहानी कुछ बडी है और उसम नायक की पत्नी को भी प्रस्तुत किया गया है। इसम हमारी सवेदना का केन्द्र नायक की पत्नी बन गयी है जबकि पहले सग्रह की कहानी की सवेदना नायक के प्रति है। एक बात और है पहले सग्रह की कहानी के नायक को प्रेमिका के प्रति घृणा उत्पन्न होती है क्योकि उसने प्रेम का मूल्य न समझकर धनी व्यक्ति से विवाह कर लिया। किन्तु दूसरे सग्रह की कहानी के नायक की प्रेमिका हमारी दया की पात्र है जो किसी विवशतावश अपने प्रेमी से विवाह न कर सकी और अब उसे देखने के लिए तडपती रहती है। नायक उसके पास नही जा पाता। पत्नी की उदारता दयनीयता और उसकी निधनता प्रेमिका के पास न पहुँच सकने का कारण बनते हैं। वह विवश सा कह उठता है वह एक सपना था-बडा सुदर सपना था और तुम ऐ तस्वीर तुम उस सुदर सपने की एक यादगार भर हो और यादगार भर रहो।

इसके बाद वह लिखता है 'और यह विवशता   यह विवशता ही हमारी जिन्दगी है। दो बाँके' संग्रह की इस कहानी का अन्त दूसरी भाँति है।

वर्माजी ने कहानियाँ कम लिखी हैं किन्तु उनकी इस वैविध्यपूर्ण कलात्मक अभिव्यक्ति ने उनसे एक ही विषय को अनेक ढंग और रूप में लिखाया है। यह एक सफल कलाकार का कौशल है कि वह एक ही विषय को कितनी विविधता से प्रस्तुत करता है। वर्माजी ने मनुष्य के रागात्मक सम्बन्धों को लेकर लिखा है और इसमें से प्रत्येक को उन्होंने अनेक पहलुओं से देखा है। उन्होंने गंभीर विषय को मजाक और हँसी में उड़ाया है उन्होंने हल्के मजाक में एक गंभीर समस्या की ओर संकेत किया है। उनकी ऊपर से हास्यात्मक लगनेवाली कहानियों में एक प्रच्छन्न, पर तीखा व्यंग्य व्याप्त है। यही नहीं व्यक्ति और समाज के तथ्य प्रदर्शन के साथ उनकी कहानियों का दूसरा पक्ष भी है। किसी नवीन जीवन दर्शन की अभिव्यंजना नये नैतिक मानदण्डों की स्थापना और चिरंतन सत्य की अभिव्यक्ति। अतः यथार्थ अंकन और हास्यात्मक एवं व्यंग्यात्मक चित्रण के साथ उनकी कहानियाँ विचारोत्तेजक भी हैं।

वर्माजी की सामाजिक कहानियों में समाज की विकृति के विरोध में व्यक्ति वादी स्वर मुखर हुआ है। ऐसी अधिकांश कहानियों में सभ्यता और उससे उत्पन्न विषमता पर प्रहार किया गया है। 'अर्थ पिशाच   वरना हम आदमी थे काम के   बिकारी का अभिसार', 'कुँवर साहब मर गये', एक अनुभव कायरता 'बाबा कि मैं कर सकता   रेल में   कुँवर साहब का कुत्ता   नाजिर मुंशी   राख और चिनगारी   वह फिर नहीं आई   रुपया तुम्हें खा गया   लिलाकिन का नरक' कहानियाँ रुपये की शक्ति और पूँजी के सामर्थ्य से उत्पन्न व्यक्ति की विवशता दयनीयता और जीवन की कटुता का प्रदर्शन करती हैं। रुपये ने मनुष्य की मनुष्यता का अपहरण कर लिया है (अर्थ पिशाच कुँवर साहब मर गये, कुँवर साहब का कुत्ता   रुपया तुम्हें खा गया) इसने मनुष्य का स्वाभिमान और स्वच्छता छीन ली है। यही नहीं इसने मनुष्य को अपराधी बनने को विवश कर दिया है। (बिकारी का अभिसार) नारी के सतीत्व का अपहरण किया है (एक अनुभव   बाबा मैं कर सकता   वह फिर नहीं आई लिलाकिन का नरक) नारी के प्रेम को कुण्ठित किया है (राख और चिनगारी)। यही नहीं उसने मनुष्य को कुत्ता और बना दिया दिया है (दो बाँके का निर्णय) मनुष्य के जीवन को निरुद्देश्य और आवारा बना दिया है (आवारें) मनुष्य को रुपया कमाने के अनैतिक तरीके अपनाने को विवश किया है (विकारी का

नया तरीका लाला तिकडमीलाल) । ये सब विषमताएँ और विकृतियाँ धन परक हैं ।

अपनी अनेक कहानियों म वर्माजी ने सेक्स सम्बधी समस्याएँ भी प्रस्तुत की हैं । इस प्रकार की कुछ विकृतियों का उन्होंने मर्यादित माना है और कुछ का विशुद्ध कामजनित । चौथ एक पैग और उत्तरदायित्व इन्स्टालमट मेज की तस्वीर विवशता पियारी की काम विकृतियाँ अर्थजनित हैं । एक बात और है—इन कहानियों म वर्माजी न नारी का काफी गिराया है । आधुनिक नारी के प्रति उनकी दृष्टि अनुदार रही है । माना वह धन स प्यार करती है व्यक्ति से नहीं । उत्तरदायित्व की नायिका मिस शीला धनी बाप की पुत्री एक भावुक युवक स प्रेम का खेल तो खेल सकती है किन्तु विवाह नहीं कर सकती । ऐसी नारियाँ धनी पुरुष से विवाह करती हैं किन्तु विवाह के पश्चात् न तो वे अपने पति से प्रेम कर पाती हैं और न प्रेमी की ही हो पाती हैं । वे मानती हैं कि यह आवश्यक नहीं कि प्रेम का अन्त विवाह हो यह भी आवश्यक नहीं कि विवाह का अर्थ प्रेम हो । विवाह तो केवल जिन्दगी का आर्थिक पहलू है (मेज की तस्वीर) । चौथ एक पग और म भी स्त्री को धन लिप्सु दिखाया है । किन्तु वर्माजी की कहानियों मे हम नारी का दूसरा रूप भी मिलता है जिसम नारी की विवशता नारीत्व के हनन और चरित्रहीनता के पीछे एक सात्विकता से भरा नारीत्व है । काश कि मैं कह सकता वह फिर नहीं आई एक अनुभव की नायिकाएँ अपना तन बेचकर भी उस मानवता की रक्षा करती हैं जो साधारण मानव म दुर्लभ है । व अपना तन बेचती हैं, आत्मा नहीं । और इसलिए वे उनसे ऊँची हैं जो आत्मा बेचते हैं ।

नितान्त कामजनित समस्याओं को लेकर लिखी कहानियों मे प्रेजण्टस बाहर भीतर पराजय अथवा मृत्यु दो रात उत्कृष्टतम हैं । प्रेजेण्टस जहाँ हास्य प्रधान मनोरजक कहानी है वहाँ उसमे नारी मन की कुण्ठा का उद्घाटन भी हुआ है । यह एक ऐसी नारी की कुण्ठा है जो विवाह करने की प्रबल इच्छा रखती है किन्तु प्रत्येक व्यक्ति जो उसके जीवन म आया भविष्य के सुख स्वप्न पैदा करता आया । प्रत्येक व्यक्ति को उसने भावी पति के रूप म देखा । पर प्रत्येक उस प्रजेण्टस दे सकता था पर अपनी नहीं बना सकता था । धीरे धीरे वह उसकी अभ्यस्त हो गयी । एक रहस्यमय जीवन धीरे धीरे उसके वास्ते एक खेल हो गया । और फिर उसमे एक विकृति उत्पन्न हो गयी जिसस उसकी जीवन की मान्यता बन गयी कि जीवन एक खेल है जिसका

सबसे सुन्दर हृदय का मेल, नहीं भोगविलास का मन है और सुनकर खेलना ही हमारा कर्तव्य है। यही उनके प्रेजण्म का मजाकर दमन की विकृति का रहस्य है।

'बाहर भीतर' कहानी भी नारी-मन की एक दूसरी विकृति का ओर संकेत करती है। जिन स्त्रियों का वैवाहिक जीवन सुखी नहीं रह सका वे विवाह की विरोधी बन बैठीं और पुरुषों से घृणा करने लगीं। वस्तुतः उनके बाहर का यह व्यक्तित्व उनके भीतर के असंतोष और कुण्ठा का ही परिणाम है। सुखी दम्पति के प्रति ईर्ष्या भी उनकी इस कुण्ठा की ही अभिव्यक्ति है।

'पराजय अथवा मृत्यु' की नारी मन की कुण्ठा भी बड़ी विचित्र है। यह कुण्ठा कहानी की नायिका भुवनेश्वरी देवी की भ्रान्त धारणा की उपज है। उसका यह विश्वास है कि विश्व कपट धूर्तता और स्वार्थ के मिश्रित संग्रह का दूसरा नाम है। मैंने देखा है कि जिसे संसार त्याग बलिदान तथा भावना कहता है वह निर्बलता का द्योतक है और निर्बलता गुलामी है। पुरुष स्त्री को गुलाम नहीं बनाए है स्त्री स्वयं अपनी इस सद्भावना के कारण गुलाम बनी है। यदि गुलामी नहीं करनी है तो शक्तिशाली बनना आवश्यक है और शक्तिशाली बनने के लिए स्वार्थ, बर्बरता तथा मान करने की आवश्यकता है। इस प्रकार यह मिथ्या विश्वास भुवनेश्वरी देवी को पुरुष जाति का शत्रु बना देता है। किन्तु उसका यह कठोर व्यक्तित्व, पुरुष की गुलामी न करने का संकल्प एक दिन टूट जाता है और उसे झुका कर ही छोड़ता है। उसका आत्मविश्वास हिल जाता है। किन्तु वह पराजय की अपेक्षा मृत्यु का स्वीकार करती है। जिस गुलामी का वह विरोध करती रही उसी गुलामी को अपनाना वह स्वीकार नहीं करती। किन्तु मरण-काल का उसका यह चीत्कार कि 'डाक्टर साहब! मुझे बचाइए। मेरे रमेश को बुला दीजिए—मैं नहीं मरना चाहती—नहीं मरना चाहती' से स्पष्ट है कि अन्त में उसकी पराजय ही होकर रहती है। मृत्यु पाकर भी वह पराजित हुई।

इन कहानियों से यह स्पष्ट हो जाता है कि वर्माजी में मानव मन की विकृतियों और कुण्ठाओं को समझने एवं उनके विश्लेषण की पर्याप्त क्षमता है। किन्तु उन्होंने नितान्त मनोविश्लेषणात्मक कहानियाँ नहीं लिखीं। कदाचित् इसका कारण यह है कि वर्माजी कथा-साहित्य को मनोरंजन का साधन मानते हैं, दर्शन विवेचना का विषय नहीं। इसीलिए उन्हें दर्शन और मनोविज्ञान में विशेष रुचि नहीं रही। यदि रोचक कहानी के आवरण में दर्शन और मनोविज्ञान स्वयं आ

गये तो उससे बचने की चेष्टा भी उन्होंने नहीं की, उसे रुचि के साथ गहराई से समझने और अभिव्यक्त करने की प्रवृत्ति दिखायी है। अतः प्रेम चित्रण ने उनकी कहानियों के कथा-तत्व एवं उनकी रोचकता का अपहरण कभी नहीं किया है।

मानव जीवन के ऊँचे उद्देश्य उनके नए ...तिक मान्यता ...सार भी वर्माजी ने अनेक कहानियाँ लिखी हैं। उनकी कहानी का वस्तु विषय चाहे कभी रहा हो, उसकी पृष्ठभूमि में चाहे कोई भी यथार्थ अंकन रहा हो, किन्तु उन सबका मूल स्वर जो केवल ध्वन्यात्मक है नये जीवन मूल्यों का रहा है। उल्लिखित समस्त कहानियों में यही विशेषता है। किन्तु वर्माजी ने कतिपय कहानियाँ ऐसी भी लिखी हैं जिनमें प्रत्यक्ष रूप से नये जीवन मूल्य की स्थापना नये जीवन दर्शन के प्रति आग्रह है। ... विचित्र चक्कर ... परिवर्तन पानी ... दो पहलू, दो रात कहानियाँ हमारे सामने नये जीवन मूल्य रखती हैं। परिवर्तन पानी का यह वक्तव्य कि सौन्दर्य का छिपाना मनुष्यता के प्रति एक घोर अपराध है दण्डनीय है और कुरूपता का प्रदर्शित करना उतना ही बड़ा अपराध है जितना सौन्दर्य को छिपाना —हमें आश्चर्यचकित कर देता है। फिर एक कुरूप स्त्री से विवाह करना विवाह करना मात्र नहीं उसमें प्रेम भी करना हमें नवीन विचार देता है। अभाव की पूर्ति का नाम ही प्रेम है के अनुसार यदि कुरूपता आत्मा को दूषित नहीं करती और वह अभाव की पूर्ति करती है तो वह कुरूपता नहीं है।

दो पहलू कहानी में व्यक्ति के उच्चांश का अंकन है। दृष्टांत द्वारा लेखक ने दो भिन्न भिन्न स्तर के भिन्न भिन्न प्रवृत्ति के व्यक्तियों को लेकर जीवन के दो पहलू उद्घाटित किये हैं। एक का जीवन दूसरों में व्याप्त है दूसरे का केवल अपने तक सीमित है। एक अपने जीवन के स्वर्ग को आत्म बलिदान की भेंट चढ़ा देता है दूसरा अपने जीवन के नरक तक को अपने लिए सुरक्षित रखता है। एक ओर जीवन का इतना ऊंचा आदर्श है और दूसरी ओर है निकृष्ट जीवन जो वितृष्णा उत्पन्न करता है।

इन गम्भीर समस्याओं के बीच भी वर्माजी की विनोदी प्रकृति छिप नहीं पायी है। समस्या ने उनकी कहानियों के विचार पक्ष को बोझिल नहीं बना दिया है। रोचक कहानी के माध्यम से समस्याएं आप ही आप सामने आ गयी हैं। बीच बीच में हास्य और विनोद के मिश्रण ने उनकी कहानियों को और भी अधिक रोचक तथा मनोरंजक बना दिया है। कई कहानियाँ तो वर्माजी ने

नितान्त हास्य और विनोद की सृष्टि के लिए लिखी हैं। 'विक्टोरिया क्रॉस' 'मुगलों ने सल्तनत बख्श दी', 'प्रायश्चित्त', 'रेल में', 'तिजारत का नया तरीका', 'अन्नदान', 'लाला तिकड़मीलाल', 'दो बाँके', 'आवारे', 'छः आने का टिकट' वगैरह ऐसी कहानियाँ हैं जिनमें हास्य द्वारा मनोरंजन उत्पन्न करने में लेखक सफल हुआ है। विक्टोरिया क्रॉस में तो आलम्बन का एक अत्यन्त छोटा कृत्य ही हास्य उत्पन्न करने का साधन बना है। 'मुगलों ने सल्तनत बख्श दी' में एक ऐतिहासिक सत्य तक को हँसी का मसाला बनाया है। 'तिजारत का नया तरीका', 'अन्नदान', 'लाला तिकड़मीलाल' तो सबसे अधिक हास्यपूर्ण रचनाएँ हैं। इनके आलम्बन और कृत्य दोनों हास्यास्पद हैं। 'तिजारत का नया तरीका' के सुखानन्ददास के तिजारत के सूत्र हास्यात्मक नये-नये तरीके पाठकों के हास्य की अद्भुत सृष्टि करते हैं। इसी तरह 'लाला तिकड़मीलाल' के अन्य हास्यास्पद हैं। इसके सारे चरित्रों का आचरण तक हास्यास्पद है। 'अन्नदान' के चरित्र ही नहीं परिस्थिति तक में हास्य है। इन कहानियों के चरित्र, स्थिति और परिस्थिति सभी में हास्य-ही-हास्य है। 'आवारे', 'छः आने का टिकट' वगैरह भी उत्कृष्ट हास्य की सृष्टि करते हैं। 'प्रायश्चित्त' कहानी जिसका हास्य घटना में है ऐसी कहानियों में अन्यतम है। उपर्युक्त सभी कहानियों का हास्य हास्यात्मक चरित्रों की सृष्टि है घटना की नहीं। किन्तु 'प्रायश्चित्त' के चरित्र हास्यास्पद नहीं हैं। घटनावश एक ऐसी परिस्थिति उत्पन्न हो जाती है जो अत्यन्त हास्यास्पद है। इस कहानी की एक विशेषता और है वह यह कि इसका आरम्भ हास्य से हुआ है मध्य एक अत्यन्त गम्भीर परिस्थिति से बोझिल है, किन्तु अप्रत्याशित अन्त के कारण वह गम्भीर परिस्थिति ही सारे हास्य का कारण बन जाती है।

कथानक की घटना और अभिव्यक्ति दोनों में हास्य है इसलिए वे इस क्षेत्र में अभूतपूर्व सफल हुए हैं। प्रायश्चित्त का एक स्थल उद्धृत करने योग्य है

अगर कबरी बिल्ली घर भर में किसी से प्रेम करती थी तो रामू की बहू से और रामू की बहू घर भर में किसी से घृणा करती थी, तो कबरी बिल्ली से। ... लेकिन (रामू की बहू) ठहरी चौदह वर्ष की बालिका कभी भण्डार घर खुला है तो कभी भण्डार घर में बैठे-बैठे सो गया। कबरी बिल्ली को मौका मिला घी-दूध पर अब वह जुट गई। रामू की बहू की जान आफत में और कबरी बिल्ली के पौ बारह। रामू की बहू हाँडी में घी रखते-रखते ऊँघ गयी और बचा हुआ घी कबरी के पेट में। ... रामू की बहू ने तय कर लिया कि या तो वही घर में रहेगी या फिर कबरी बिल्ली

ही। मोरचाबन्दी हो गयी और सेना सतर्क। बिल्ली फँसाने का कटघरा आया उसमें दूध मलाई चूहे और बिल्ली को स्वादिष्ट लगने वाले विविध प्रकार के व्यंजन रख गये लेकिन बिल्ली ने उधर निगाह तक न डाली। इधर नौकरों ने सरगर्मी दिखलायी। अभी तक तो वह रामू की बहू से डरती थी पर अब वह साथ लग गयी लेकिन इतने पर भी रामू की बहू उस पर हाथ न लगा सके। बिल्ली की हरकतों का इतना मनोरंजक चित्रण और कहाँ मिलेगा।

वर्माजी का व्यंग्य निरर्थक तथा निरुद्देश्य नहीं है। वह मार्मिक और विचारोत्तेजक है। कहीं यह व्यंग्य हास्य है तो कहीं प्रच्छन्न, कहीं स्पष्ट है तो कहीं तीखा। प्रायश्चित्त में उन पंडितों पर व्यंग्य है जो लोगों से प्रायश्चित्त कराने के बहाने उन्हें लूटते हैं। खिजाबन का नया तरीका में साम्यवादी लेखक के व्यंग्य का लक्ष्य है। लाला तिकड़मलाल में बने हुए पवित्र मूर्ख प्रशासकों और धूर्त-कपटी व्यक्तियों पर व्यंग्य है। वतगर समूह की मनोवृत्ति पर हास्य व्यंग्य करता है। दो बाँके में हास्य व्यंग्य दोनों एक दूसरे में गुँथ दिये गये हैं। दोनों बाँके समझौता करके एक दूसरे के साथ मिलकर चलने लगते हैं। उस पार वाला बाँका अपने शागिर्दों से घिरा हुआ चल रहा था। शागिर्द कह रहे थे— उस्ताद उस वक्त बड़ी समझदारी से काम लिया वरना आज लाशें गिर जातीं। उस्ताद हम सब के सब अपनी अपनी जान दे देते। लेकिन उस्ताद गजब के कड़े हैं।

इतने में किसी ने बाँके से कहा— मुला स्वाँग खूब भरयो। बाँके ने देखा कि एक लम्बा और तगड़ा देहाती जिसके हाथ में एक भारी सा लट्ठ है सामने खड़ा हुआ मुसकरा रहा है।

उस वक्त बाँके खून का घूँट पीकर रह गये। उन्होंने सोचा—एक बाँका दूसरे बाँके से लड़ सकता है देहातियों से उलझना उसे शोभा नहीं देता।

और शागिर्द भी खून का घूँट पीकर रह गये। उन्होंने सोचा—भला उस्ताद की मौजूदगी में उन्हें हाथ उठाने का कोई हक भी है।

एक हृष्ट पुष्ट देहाती के मुला स्वाँग खूब भरयो में कहानी का सम्पूर्ण हास्य व्यंग्य सिमट आया है। एक देहाती को लाकर लेखक ने शहरी जीवन के खोखलेपन की ओर भी संकेत किया है। मानव मन की झूठी शान और कमजोरियों को कितने साधारण और स्वाभाविक ढंग से चित्रित किया है यह कहने की आवश्यकता नहीं है। इस कहानी में वर्माजी को लखनऊ का स्थानीय रंग भरने का भी अवसर मिल गया है। लखनऊ के जीवन का स्वाभाविक चित्र आँकने के साथ लेखक ने अवध की ह्रासकालीन अवशिष्ट संस्कृति का भी

परिहासपूर्ण एवम् व्यंग्यपूर्ण चित्रण किया है। 'शायद ही कोई ऐसा अभागा हो जिसने लखनऊ का नाम न सुना हो और युक्तप्रांत में ही नहीं बल्कि सारे हिन्दुस्तान में और मैं तो यहाँ तक कहने को तैयार हूँ कि सारी दुनिया में लखनऊ की शोहरत है। लखनऊ के सफेदा आम, लखनऊ के खरबूजे, लखनऊ की रेवड़ियाँ ये सब चीजें हैं। जो लखनऊ से लौटते समय लोग सौगात की तौर पर साथ ले जाया करते हैं लेकिन कुछ ऐसी भी चीजें हैं जो साथ नहीं ले जायी जा सकतीं और उनमें लखनऊ की ज़िन्दादिली और लखनऊ की नफासत विशेष रूप से आती है।

इन स्थानीय विशेषताओं के वर्णन के बाद लेखक हास्य व्यंग्य पर उतर आता है — हाँ तो लखनऊ शहर में रईस हैं। तवायफें हैं और इन लोगों के साथ शोहदे भी हैं। बकौल लखनऊ वालों के ये शोहदे ऐसे-वैसे नहीं हैं। ये लखनऊ की नाक हैं। लखनऊ की सारी बहादुरी के ये ठेकेदार हैं और ये जान लेने तथा जान दे देने पर आमादा रहते हैं। अगर लखनऊ से ये शोहदे हटा दिये जायें तो लोगों का यह कहना अजी लखनऊ तो जनानों का शहर है सोलहों आने सच्चा उतर जाय।

रोचकता वर्मा जी की कहानियों का सबसे बड़ा आकर्षण है। उनका प्राथमिक ध्येय अपनी कहानियों से पाठकों का मनोरंजन करना है। किन्तु उन्होंने घटना-वैचित्र्य द्वारा चमत्कार उत्पन्न कर रोचकता उत्पन्न नहीं की है। उनकी कहानियों का भावनात्मक संवेदना वाला तत्त्व ही पाठकों को आकर्षित करता है उनके मन को छूता है। उनकी कहानियाँ पाठकों के मन पर स्थायी प्रभाव डालती हैं। घटना प्रधान कहानियाँ तो उन्होंने बहुत कम लिखी हैं और जो एक दो लिखी भी हैं उनमें घटना-वैचित्र्य न होकर घटना की रोचकता द्वारा पाठकों में भावनात्मक संवेदना उत्पन्न की गयी है। प्रायश्चित्त कहानी का सम्पूर्ण आकर्षण घटना की इसी रोचकता में है। इस कहानी से सहज ही अन्दाज लगाया जा सकता है कि वर्मा जी घटना प्रधान कहानियों में भी अपूर्व सफलता प्राप्त कर सकते थे। उनमें घटनाओं को मनोरंजक ढङ्ग से प्रस्तुत करने की अद्भुत क्षमता है। फिर भी उनकी अधिकांश कहानियाँ रेखाचित्र के समीप लगती हैं। वरना हम भी आदमी थे काम के विशुद्ध रेखाचित्र है। इसमें घटना और कथा नाम-मात्र को है। मियाँ राहत की दुनिया बड़ी रोचक है इसी के कारण यह कहानी रेखाचित्र के समान मानी जा सकती है — प्रति-आदर कामीम साल के इस लम्बे आदमी को मेरे बगल के कमरे में रहने आ सम्भा था और जिसे हम तब मोटा-सा कहा करते जिसका चेहरा गोल

भरा हुआ और उस पर चेचक के दाग मूछ नदारद, लेकिन दाढ़ी नाफ तक पहुँचती हुई सिर पर पटे और बाल बीच से निकले हुए आँखें बड़ी-बड़ी ऊपर उभरी हुई और उनमें सुरमा लगा हुआ चिकन का कुर्ता और सरकार का गरदनतोड़ पाजामा पहने हुए हों, तो आप समझ लें कि यही मियाँ राहत हैं। वह आपसे झुककर सलाम करेंगे अदब के साथ आपका नाम पूछेंगे। आपको कुर्सी पर बिठाकर मुझे आपकी इत्तिला देंगे और फिर धीरे से वहाँ से खिसक जायँगे। आप उनको मेरा नौकर किसी हालत में नहीं समझ सकते और मैं उनसे मालिक का बरताव करता भी नहीं हूँ। मैं उनकी इज्जत करता हूँ। बुजुर्ग की तरह उन्हें मानता हूँ।

अन्य हास्य प्रधान कहानियाँ भी रेखाचित्र के अधिक निकट हैं। किन्तु उनमें कथा और घटना का भी सहयोग है इसलिए उन्हें हम विशुद्ध रेखाचित्र नहीं कह सकते। वर्मा जी की कहानियों में एक कलात्मक कमी है जिसके कारण उन्हें रेखाचित्र समझने का भ्रम हो जाता है। वह यह है कि उनकी कहानी में समस्त अंगों का समुचित विकास और निर्वाह नहीं हो पाया है। एक विचित्र चक्कर विक्टोरिया क्रास मुगलों ने सल्तनत बख्श दी दो पहलू कहानियों में तो कहानी के अंगों का समुचित विकास जरा भी नहीं हुआ है। परन्तु इन कहानियों की कथा की गति धीमी है। बहुत कम कहानियाँ ऐसी हैं जिनका आरम्भ घटना से हुआ है। और इस अभाव में प्रारम्भ में गति की मंथरता स्वाभाविक है। वर्मा जी में कहानी के आरम्भ में भूमिका बाँधने की प्रवृत्ति है। प्रायः सभी कहानियाँ एक व्यावहारिक दार्शनिक टिप्पणी से आरम्भ हुई हैं और उससे विषय की ओर संकेत हुआ है। उत्तरदायित्व कहानी का आरम्भ इस प्रकार हुआ है मैंने एक काम किया—अच्छा या बुरा इससे कोई प्रयोजन नहीं। अब प्रश्न यह उठता है कि मैंने वह काम क्यों किया? अपने कर्म का उत्तरदायी मैं हूँ सब लोग यह कहेंगे और साधारण तर्क से उनका यह कहना गलत भी नहीं है। पर ऐसी परिस्थितियाँ आ सकती हैं जब कि वह काम करने के लिए मैं प्रेरित या विवश किया जाता हूँ। ऐसी अवस्था में मेरे उस काम का उत्तरदायित्व मुझ पर है और कुछ कहेंगे कि उत्तरदायित्व प्रेरित या विवश करने वाले पर। एक और भी मत है और यद्यपि उस मत के मानने वालों की संख्या धीरे धीरे कम होती जाती है, वह मत ऐसा नहीं है जो हँसी में उड़ाया जा सके। उस मत के हिसाब से मेरे किसी भी काम का उत्तरदायित्व न मुझ पर है और न किसी दूसरे व्यक्ति पर है मेरे प्रत्येक साधारण अथवा असाधारण कर्म का उत्तरदायित्व उस पर है जिस पर कर्म

करने वालों को रचने का उत्तरदायित्व है। इस मत वाले को अंग्रेजी में 'फैटलिस्ट' कहते हैं और हिन्दी में 'भाग्यवादी' कहते हैं। यहाँ पर यह कह देना अनुचित न होगा कि यदि मैं भाग्यवादी बन सकूँ तो जगदीश की आत्म हत्या से मेरे हृदय में जो भय हुआ है वह शान्त हो जाय।

इस प्रकार कहानी के विषय को लेखक वादविवाद का विषय बना लेता है और विवेचना करने में ऐसा मग्न हो जाता है मानो वह निबन्ध लिख रहा हो और अपने तर्क को सर्वमान्य बनाने के लिए किसी कहानी का दृष्टान्त दे रहा हो।

विक्टोरिया क्राम, एक विचित्र चक्कर, मेज की तस्वीर, कौन कह सकता, नाजिर मुंशी, पराजय अथवा मृत्यु, कहानियाँ भी इसी प्रकार की दार्शनिक टिप्पणियों से आरम्भ हुई हैं। इन टिप्पणियों को देखकर कई बार तो ऐसा लगता है जैसे लेखक तर्क करने पर तुल गया हो। 'ज्ञान दुःखदाता है और अज्ञान सौन्य है।' अगर आप इस बात को बिना किसी तर्क के मान लेते हैं—और मैं आपको विश्वास दिलाता हूँ कि तर्क करके आप मुझसे जीत न सकेंगे—तो मैं आपसे कह सकता हूँ कि लड़कपन जीवन का सौन्य है। ये टिप्पणी सोद्देश्य और रोचक अवश्य है किन्तु कई बार ऐसा भी हुआ है कि इनसे कहानियों के अन्त का आभास हो जाता है और पाठकों की उत्सुकता आरम्भ में ही समाप्त हो जाती है। इसके अतिरिक्त कुछ कहानियों की टिप्पणियाँ निरर्थक सी भी लगती हैं। विक्टोरिया क्राम की डेढ़ पृष्ठ की टिप्पणी सर्वथा निरर्थक और उद्देश्यहीन है। ऐसा प्रतीत होता है लेखक को साधारण से साधारण बात तक को दार्शनिक आवरण देने की आदत सी हो गयी है।

कतिपय कहानियाँ ऐसी भी हैं जिनमें यदि लेखक ने इस प्रकार की दार्शनिक टिप्पणी द्वारा भूमिका नहीं बाँधी है तो अन्य प्रकार से भूमिका बाँधने का प्रयास किया है। मानो उन्हें विषय की भूमिका बाँधने का रोग हो। किन्तु उनकी अपनी इस आदत के कारण कई कहानियों में बड़ी शिथिलता सी आ गयी है। एक अनुभव कहानी का प्रारम्भिक अंश जो लगभग ढाई पृष्ठ का है इस निरर्थक भूमिका बाँधने में ही निकल गया है। यह अंश किसी भी भाँति मूल कहानी से सम्बन्धित नहीं है। कहानी कहने-सुनने का वातावरण उत्पन्न करने के लिए लेखक श्रोता और वाचक को रेस्ट्रां में एकत्र करता है। इसके अधिक इस अंश की कोई उपयोगिता नहीं है। किन्तु यह त्रुटि केवल एक दो ही कहानियों के साथ हुई है। कुछ कहानियों की ऐसी भूमिकायें बड़ी सरस और रोचक हैं। प्रेतात्मा कहानी का आरम्भ एक वार्तालाप से हुआ है और का

कहानी आरम्भ करने की एक भूमिका ही है। हम लोगों का ध्यान अपनी सोने की अगूठी की ओर जिस पर सोने के काम में श्याम लिखा था आकर्षित करते हुए देवेन्द्र ने कहा—'मेरे मित्र श्यामनाथ ने यह अँगूठी मुझे प्रेजेन्ट की। जिस समय उसने यह अगूठी प्रेजेण्ट की थी उसने कहा कि मैं इसे सदा पहने रहूँ जिससे कि वह सदा मेरे ध्यान में रहे।

परमेश्वरी ने कुछ देर तक उस अगूठी की ओर देखा इसके बाद वह मुस्कराया—प्रेजेन्ट की बात उठी है तो मैं आप लोगों को एक विचित्र मजेदार और सच्ची कहानी सुना सकता हूँ।

और फिर प्रेजेण्ट की मूल कथा आरम्भ होती है।

इसी प्रकार एक विचित्र चक्कर है का आरम्भ भी बड़ा साभिप्राय और रोचक है। जो सत्य इसके नायक ने पहले कहा उसी को एक लघु वाक्य में, अंत में कह कर सारी कहानी का रहस्य प्रकट कर देता है। घटना प्रधान कहानियों का आरम्भ वर्माजी ने घटना से न कर एक प्रकार की परिचयात्मक भूमिका से किया है। यह परिचय अत्यन्त रोचक है। दो बाँके कहानियों का आरम्भ अत्यंत मनोरंजक भूमिका से हुआ है।

वर्माजी की जिन कहानियों का आरम्भ नाटकीय संवादों से हुआ है वे बड़ी मनोरम और आकर्षक बन गयी हैं। कायरता नामक कहानी का आरम्भ ऐसे नाटकीय वार्तालाप से ही हुआ है अगर मैं आप से कहूँ कि आप कायर हैं तो आप बुरा मान जाइयेगा कि नहीं? कोने में बैठे हुए इन्होंने कुछ रुक कर कहा। पर मैं अपने इस साठ वर्ष के अनुभव से इस नतीजे पर पहुँचा हूँ कि हम सब कायर हैं और कायर होना इतना बड़ा दुर्गुण भी नहीं है जितना आप समझते हैं।

कहानी के आरम्भ के प्रति वर्माजी पूर्णतया सतर्क रहे हैं। कहानी के आरम्भ में ही वे कहानी की मूल कथा उसकी मूल संवेदना और उद्देश्य से परिचित करा के पाठकों को आगे क्या हुआ के लिए उत्सुक बना देते हैं। उनकी कहानियों का मध्य भाग चरम सीमा वाला है। फलतः आरम्भ के बाद कहानी का विकास बड़े तीव्र वेग से होने लगता है। वर्माजी ने घटना प्रधान कहानियाँ कम लिखी हैं किन्तु उन्होंने घटनाओं का उपयोग अपनी कहानी में किया अवश्य है। उनके कथानक निर्माण में संयोग और घटनाओं का विशेष साथ रहता है। घटना द्वारा चरित्र में बाह्य और मानसिक द्वन्द्व उत्पन्न कर उन्होंने कहानी के विकास में तीव्रता ला दी है। इसमें एक लाभ यह भी है कि

कहानियों का कथाक्रम कहीं टूटने नहीं पाया है। 'राख और चिनगारी' घटना प्रधान कहानी नहीं है, फिर भी इसमें घटनाओं का समुचित उपयोग हुआ है। यही नहीं, इस इतिवृत्तात्मक कहानी में हम वर्मा जी का कथा बाँधने का शिल्प भी दृष्टिगत हुआ है। इसकी नायिका गीता का मानसिक-संघर्ष कहानी को गति प्रदान करता है। गीता का मानसिक द्वन्द्व घटनाओं द्वारा प्रखर हुआ है। अपने भाई रमेश की मृत्यु के बाद गीता का एकमात्र ध्येय अपने परिवार का भरण-पोषण करना हो जाता है। समाज से विरक्त रहकर या अपने यौवन के प्रति अनासक्त रहकर, वह अपना जीवन व्यतीत करती है किन्तु उसके अन्दर एक जलन सदैव बनी रहती है—'मैं कहती हूँ मेरे पास यौवन है, मेरे पास उमंग है। हँसने खेलने की इच्छा मुझे होती है। नाच रंग, आमोद प्रमोद मुझे भी प्यारे लगते हैं। मुझमें भी यह अभिलाषा है कि मैं सुन्दर दिखूँ, नवयुवक मेरी ओर आकर्षित हों वे मेरे सौन्दर्य की उपासना करें। दुनिया की चहल पहल अपने को देने की प्रबल अभिलाषा को कितने प्रयत्न के साथ दबाना पड़ता है यह मैं ही जानती हूँ। और अपने अन्दर चलनेवाले अनवरत संघर्ष के कारण मैं अजीब-सी दिखने लग गयी हूँ। कुछ लोग मुझे गर्विता कहते हैं कुछ लोग मुझे असभ्य समझते हैं और कुछ लोग तो मुझे पत्थर की उपमा दे डालते हैं। लेकिन रमेश मैं आज साफ-साफ अपना रूप देख रही हूँ। मैं राख से ढँकी हुई एक चिनगारी की भाँति हूँ जो अन्दर ही अन्दर सुलगकर राख बनती जा रही है।

मेरे अन्दर जलन है उमंग है जीवन है। सब कुछ है लेकिन बेकार! समाज के आर्थिक ढाँचे ने राख बन कर हर तरफ से मुझे ढक लिया है और उसने मेरे समस्त अस्तित्व को अपने अभिशाप से आच्छादित कर रखा है। पर दुर्भाग्य यह है कि मैं पूरी तरह से भी तो राख नहीं बन पाती अन्दर वाली चिनगारी जलती रहती है—निरन्तर। और वही अन्दर वाली चिनगारी कुछ अधिक प्रज्वलित हो गयी थी उस दिन जिस दिन साहित्य-समाज में तुमसे मेरी प्रथम बार भेंट हुई थी।

पाठकों पर अधिक से अधिक स्थायी प्रभाव डालने के लिए वर्मा जी बड़े सचेत रहते हैं। इसलिए यदि कहानी का क्रमिक विकास नहीं हो पाता, तो वे इस बात की चिन्ता नहीं करते। उन्हें तो पाठकों में अधिक से अधिक भावनात्मक संवेदना उत्पन्न करने की चिन्ता लगी रहती है। पात्र चरित्रों का मानसिक संघर्ष उभारने के लिए वे घटनाओं को आगे-पीछे करते रहते हैं। 'राख और चिनगारी' की गीता के उपर्युक्त मानसिक संघर्षों के बाद लगभग उस घटना का

लाता है जिसके फलस्वरूप उसकी भेंट नायक से हुई और उसके अन्तर के द्वन्द्व ने प्रबल रूप धारण किया। फिर कहानी की चरम-सीमा आ जाती है जब गीता रमेश से विवाह करने का संकल्प कर लेती है ऊपर से मैं प्रसन्न थी पर अन्दर ही अन्दर एक भयानक द्वन्द्व मचा हुआ था मुझमें। कुरूप और कठोर वास्तविकता मेरे इन सुनहरे सपनों को लगातार झकझोर रही थी लेकिन मैं जबरदस्ती आँखे मूँदे हुए सपनों की दुनिया में विचरण करने का प्रयत्न कर रही थी। मित्रो का तांता बंधा था विवाह की तिथि निश्चित हो गयी थी—कल ही तो है वह तिथि। मैंने आफिस से एक महीने की छुट्टी ले ली थी, थोड़ा-बहुत मैंने कुछ संचित किया था उससे गहने और कपड़े बनवा लिए थे। लेकिन मैंने अपनो को अपनी भाभी को अपने भतीजे को अपनी भतीजी को अपने जीवन के सबसे बड़ी परिवर्तन की सूचना तक नहीं दी।

रमेश—मैंने उन्हें सूचना नही दी इसलिए कि उन्हें सूचना देने की मुझमें हिम्मत नही होती थी।

इसके बाद कहानी में चरम सीमा आ जाती है। उस घटना द्वारा जब गीता के 'अपने' उसके विवाह की खबर सुनकर स्वयं आ जाते हैं और विवाह की तैयारियाँ खुशी खुशी करने लगते हैं। यहाँ गीता का आन्तरिक संघर्ष फिर भड़क उठता है। एक अकेली मैं रो रही हूँ बुरी तरह रो रही हूँ। इन लोगों का निराश्रय भटकता हुआ छोड़कर चले जाने के परिणाम पर सोचती हूँ और काँप उठती हूँ। मैं आखिर क्या कर रही हूँ? मैं खुदगर्ज हूँ मैं झूठी हूँ मैं विश्वासघातिनी हूँ मैं पापिन हूँ—

नहीं—नहीं—नहीं। मैं अपने से लड़ूंगी। मैं अपने ऊपर विजय पाऊंगी। मैं खुदगर्जी के ऊपर उठूंगी। मैं उस विश्वास की रक्षा करूंगी जो दूसरे ने मेरे ऊपर सौंपा है। उसके इस अन्तर्द्वन्द्व द्वारा कहानी में अप्रत्याशित मोड़ आता है और कहानी का अन्त हो जाता है। चिनगारी जल रही है और राख बनती जा रही है। और इस समय तो मैं अपने अन्दर वाली चिनगारी की जलन को भी नही अनुभव कर पा रही हूँ। मुझे ऐसा लग रहा है कि मैं राख हूँ—राख हूँ राख हूँ। यह अन्त पाठकों के मन पर अमिट प्रभाव छोड़ जाता है। भावना पर कर्तव्य विजयी होता है।

ऐसा प्रभाव उत्पन्न करने के लिए यदि वर्मा जी कहानी का क्रमिक विकास नहीं करते तो उसमें उनकी कहानी-कला की कोई त्रुटि नहीं है वरन् इससे उनकी कहानियों में एक अनोखा आकर्षण और सौंदर्य उत्पन्न हो गया है।

'पराजय या मृत्यु' कहानी का विकास भी इसी भाँति हुआ है। घटना प्रधान कहानियाँ 'तिजारत का नया तरीका', 'लाला तिकडमी लाल' 'दो रात' 'प्रायश्चित' कहानी सबसे सुन्दर बन पड़ी है। इसमें पाठकों में कुतूहल बनाये रखने में वर्मा जी अभूतपूर्व सफल हुए हैं। कहानी की पृष्ठभूमि जिज्ञासापूर्ण है। रामू की बहू द्वारा बिल्ली के मारे जाने की घटना से कहानी में तीव्रता आ जाती है। महरी मिसरानी सास अडोसी-पडोसी सब घटना स्थल पर एकत्र हो जाते हैं तथा रामू की बहू सर झुकाये बैठी रहती है। पंडित राम सुख की धन आती है और वे प्रायश्चित कराने के बहाने मनमानी सामग्री की लिस्ट बनाकर रख देते हैं कि रामू की माँ सकते में आ जाती है। किन्तु बहू को कुम्भी पाक के नरक में बचाने के लिए वह ठगी माँग लेते हुए रामू की माँ कहती है अब तो जो नाच नचाओगे नाचना ही पड़ेगा। और जब पंडित जी यह कह कर उठने लगते हैं कि 'अच्छा तो प्रायश्चित का प्रबन्ध कराओ रामू की माँ ग्यारह तोला सोना निकालो मैं उसकी बिल्ली बनवा लाऊं। दो घंटे में बनवा कर लौटूंगा। तब तक पूजा का सब प्रबन्ध कर रखो। और देखो पूजा के लिए— तभी अप्रत्याशित घटना हो जाती है—पंडित जी की बात खतम भी नहीं हुई थी कि महरी हाँफती हुई कमरे में घुस आयी और सब लोग चौंक उठे। रामू की माँ ने घबरा कर कहा—अरी क्या हुआ री।

महरी ने लड़खड़ाते स्वर में कहा—माँ जी बिल्ली तो उठकर भाग गयी।—जैसी अप्रत्याशित घटना के कारण जब पाठक हँसते हँसते लोट पोट हो जाते हैं तो उन घटना के पात्रों का तो न जाने क्या हाल हुआ होगा। जहाँ 'राख तथा चिनगारी' तथा 'पराजय अथवा मृत्यु' का अन्त भावनाओं के आलो डन विलोडन का चरम सीमा में हुआ है वहाँ इसका घटना का चरम सीमा द्वारा। वर्मा जी की कहानियों के अन्त चाहे घटना में हो या बाह्य और आंत रिक संघर्ष में पर वे बड़े ममस्पर्शी एवम् भावोत्पादक हैं। यह अन्त कहीं [redacted] वार्तालाप के अधूरे वाक्यों द्वारा हुए हैं कहीं स्वयं पात्रों के आत्मकथन द्वारा। 'भवारी का अभिशाप' 'बाय एक पग और' 'कुंवर साहब मर गये' 'बाहर भीतर' 'उत्तरदायित्व' आदि कहानियों का अन्त वार्तालाप के पूर्व-अपूर्ण वाक्यों द्वारा हुआ है जिनमें पात्रों के मानसिक-संघर्ष का एक सजीव तस्वीर पाठकों पर कभी न मिटने वाला प्रभाव छोड़ जाती है। वैसे अधिकांश कहानियों के अन्त कहानी के मुख्य पात्र के आत्मकथन से हुए हैं जिनमें उनका हृदयोद्घाटन झलकता है। 'मेज की तस्वीर' 'काश कि मैं कह सकता', 'पराजय अथवा मृत्यु' 'राख और चिनगारी' 'मेज की तस्वीर' 'क्या तुम्हें याद आया' का

अन्त आत्मकथन द्वारा हुआ है और वे आत्मकथन पात्रों का हृदय उद्घाटन प्रकट करते हैं। इस प्रकार लेखक ने कहानी के अन्त के सम्बन्ध में स्वयं बहुत कम कहा है। कतिपय कहानियाँ ही ऐसी हैं जिनमें लेखक को अपनी ओर से कहानी का अन्तिम निष्कर्ष देने की आवश्यकता पड़ी है। परन्तु इन कहानियों में भी लेखक अलग नहीं है वह या तो कहानी का एक पात्र है या उसका वाचक। प्रेजेण्ट का परमेश्वरी इस कहानी का वाचक ही नहीं महत्वपूर्ण पात्र है, जो कहानी का अन्त यह कह कर करता है—तुमने जो कुछ कहा उसमें मैं सब बातें ठीक नहीं मानती ! पर इतना अवश्य मानती हूँ कि मैंने अपने बुढ़ापे के लिए कोई इंत जाम नहीं किया। इसलिए मैं तुम्हारे हाथ यह सब बेच दूँगी। कान्ट्रैक्ट साइन कर दो।—और मैंने कान्टैक्ट साइन कर दिया। अभी दो वर्ष हुए हैं। परसों ही उसका पत्र आया है जिसमें उसने लिखा है कि इस समय तक उनके पास एक सौ तेरह चीजें हो गयी हैं।

तिजारत का नया तरीका, छः आने का टिकट तथा एक अनुभव का अन्त भी उसके कथावाचकों जो उनके पात्र भी हैं के निष्कर्षों से हुआ है। कतिपय कहानियों के अन्त का संकेत संक्षेप में स्वयं लेखक ने किया है। जैसे आशान लाला तिकड़मीलाल बतगड़ और खिलावन का नरक। लेखक के अंतिम विवरण ने कहानी के बिखरे सूत्रों को एक सूत्र में मिलाने का अच्छा काम किया है। दो पहलू कहानी में दो दृष्टान्त हैं और दोनों अलग अलग। एक कहानी दूसरे से कोई सम्बन्ध नहीं रखती पर दोनों के अन्त में लेखक के ये वाक्य कि और मैं पूछ रहा हूँ—कल्पना के किस स्वर्ग को पाने के लिए वह नवयुवक अपने जीवन के स्वर्ग को ठुकरा कर चला गया ? — और मैं पूछ रहा हूँ—कल्पना के किस नरक से बचने के लिए वह बुड्ढा और कोढ़ी भिखारी अपने जीवन के नरक से बुरी तरह चिपका हुआ था ? —सम्पूर्ण कहानी को एक सूत्र में बाँध देते हैं। यदि लेखक अंत में यह वक्तव्य न देता तो दोनों कहानियाँ अलग-अलग भावनात्मक संवेदना जगा कर रह जाती।

अतएव वर्माजी की कहानियों के अन्त जिस रूप में भी वे हों आकर्षक और प्रभावोत्पादक हैं। वे घटनाओं के परिणाम या पात्रों की अंतिम अवस्था की ओर संकेत करते हैं। अधिकांश कहानियाँ दुखांत हैं और मानव मन की निस्स हायपूर्ण अवस्था उसकी लाचारी उसकी विवशता और उसकी छटपटाहट तथा कमजोरी में उनका अन्त हुआ है। व्यक्ति मन की उलझनों का चित्रण करना वर्माजी की कहानियों का एकमात्र लक्ष्य है। उनकी दृष्टि में आज का प्रत्येक मनुष्य असहाय और कमजोर है। वह अहंशक्ति के अभाव में निरुपाय निर्बल

और अशक्त बन गया है। उसमें स्फूर्ति और स्पन्दन नहीं रहा। अपनी निर्बलता को छिपाने के लिए वह भाग्य और भगवान का नाम लेता है। उसके इस नंगेपन और झूठी शान पर इन्होंने मार्मिक चोट की है।

कुतूहल वर्माजी की कहानियों का प्राण है। कहानी के अन्त तक लेखक पाठकों की जिज्ञासा-वृत्ति को सजग रखने में समर्थ हुआ है। यह कुतूहल अप्रत्याशित घटना और चरित्र के अप्रत्याशित आचरण की सम्भावना के कारण बना रहा है। नवीन परिस्थिति में पड़कर पात्र कैसा आचरण करेगा या उसके आचरण की प्रतिक्रिया-स्वरूप कैसी घटना घटित होगी इसका पहले से पाठक अनुमान नहीं लगा पाता। इसलिए उस स्थिति के प्रति कुतूहल बना रहता है। यद्यपि सादृश्य कहानियाँ होने के कारण लेखक के मन में घटनाओं एवम् पात्रों के आचरण का पूर्वनिश्चित चित्र बन जाता है, किन्तु वह पाठकों को इसका आभास नहीं होने देता। 'दो रातें' कहानी विषय की दृष्टि से साधारण होते हुए भी बड़ी प्रभावोत्पादक है। ट्रेन में एक रात का जिस युवती के साथ जीवन ने अपने सुन्दरतम क्षण बिताये उसका यह कहकर विदा लेना कि मैं आपसे विदा लेती हूँ लेकिन आपसे एक प्रार्थना है। आप मेरा पीछा न कीजिए मेरा पता लगाने की कोशिश न कीजिए बस एक यही भीख मैं आपसे माँगती हूँ। हमें उसके प्रति जिज्ञासु बना देता है। हम कहानी के एक अप्रत्याशित अन्त की आशा करने लगते हैं किन्तु वह अन्त क्या होगा, उसकी हम कल्पना भी नहीं कर पाते। कौन सोच सकता है कि वह सुन्दर युवती वेश्या निकलेगी! कौन सोच सकता है कि युवक और युवती के परस्पर विश्वास का नष्ट कर कहानी का अन्त होगा। इसी प्रकार का कौतूहल हमें वर्माजी की प्रत्येक कहानी में मिलता है। प्रायश्चित्त कहानी में सबसे अधिक विस्मय तथा कुतूहल है।

रूप विधान की दृष्टि से वर्माजी की अधिकांश कहानियाँ छोटी हैं। उद्देश्य युक्त होने के कारण उनमें निरर्थक विस्तार का अभाव है। शायद घटना अथवा पात्र के भाव के अनुसार रखे गये हैं पात्र के नाम पर बहुत कम हैं। जिन कहानियों के शीर्षक उनके मूल भाव या घटना के आधार पर रखे गये हैं वे स्वभावतः सम्बद्ध हो गये हैं। किन्तु वे हैं आकर्षक और जिज्ञासापूर्ण। भाषा की दृष्टि से वर्माजी की कहानियों का स्पष्ट विभाजन रेखा में नहीं बाँधा जा सकता क्योंकि उनकी कोई भी कहानी विशुद्ध एक बोली में नहीं लिखी गयी है। आवश्यकतानुसार स्थल के स्थान-स्थान पर उस बोली का उपयोग किया है जिससे कहानी अधिक सजीव एवं भावयुक्त हो गई। कैंड़े गाय और

चिनगारी तथा 'वह फिर नहीं आई' कहानियाँ आत्म कथा मय शैली में हैं। यद्यपि इनमें घटनाओं तथा परिस्थिति का वस्तुपरक चित्रण भी यथेष्ट है। 'वह फिर नहीं आई' कहानी में तो एक कहानी के अन्दर से दूसरी कहानी निकलती आयी है। एक के बाद दूसरा पात्र पहले पात्र को अपनी आत्म-कथा सुनाने लगता है।

संलाप शैली में भी एक-दो कहानियाँ हैं— कायरता, धनगढ़ आदि। किन्तु ये विशुद्ध संलाप शैली की नहीं कही जा सकतीं क्योंकि इनमें संवाद के विश्लेषण की भी आवश्यकता पड़ी है। इसी भाँति पराजय अथवा मृत्यु भी विशुद्ध पत्र शैली की कहानी नहीं कही जा सकती क्योंकि उसके आदि और अन्त में कहानी के सूत्र जोड़ने के निमित्त अन्य पुरुष को आना पड़ा है। विशुद्ध अन्य-पुरुष प्रधान शैली में केवल वही कहानियाँ हैं जो घटना प्रधान हैं। ऐसे पहलू, दो रातें, अनशन, लाला विरडमीलाल, दो बीज, आवारे, जिना मन का नरक, प्रायश्चित कहानियाँ अन्य-पुरुष प्रधान शैली की कही जा सकती हैं। अवशिष्ट अन्य कहानियों में लेखक स्थिति का यथार्थ अंकन कर अलग हो गया है अर्थात् कहानी आरम्भ कर वह उसका सूत्र कहानी के मुख्य पात्र या उसके पात्र के सम्पर्क में आने वाले व्यक्ति या घटनाओं के सम्पर्क में आने वाले व्यक्ति के हाथ में दे देता है। इस प्रकार एक ओर तो स्थिति एवम् चरित्र का यथार्थ अंकन सम्भव हो सका है दूसरी ओर लेखक ने अनायास ही स्वयं तटस्थ रहने का सरल उपाय निकाल लिया है। इसके फलस्वरूप कभी कभी ऐसा भी हुआ है कि एक ही कहानी के कथावाचक क्रमशः कई व्यक्ति बन गये हैं। प्रेजेण्ट्स कहानी का आरम्भ उसकी नायिका शशिबाला के सम्पर्क में आने वाले व्यक्ति परमेश्वरी द्वारा होता है और वह कहानी का सूत्र उस स्थिति तक ले जाता है जहाँ से शशिबाला अपने गत जीवन और तज्जनित विकृति का विश्लेषण करती है। इसके बाद फिर कहानी का सूत्र परमेश्वरी के हाथ में आ जाता है और उसी के कथन से कहानी का अन्त होता है। किन्तु यहाँ एक बात उल्लेखनीय है। वह यह कि यह दूसरा कथावाचक अनायास ही हमारे सामने नहीं आ जाता वरन् पहले कथावाचक के माध्यम से आता है। यह पहला कथावाचक उससे अपनी कहानी सुनाने को कहता है। चकारी का अभिशाप कहानी में पहले कथावाचक से यह कहने पर कि अगर तुम्हें कोई आपत्ति न हो तो मैं तुमसे चोरी करने का कारण पूछूँ —कहानी का मुख्य पात्र अपनी कहानी कहता है। एक अनुभव कहानी में भी ऐसा ही हुआ है तो क्या कभी आपको ऐसा अनुभव प्राप्त हुआ ? —परमेश्वरी ने पूछा—

के बाद पृथ्वीनाथ अपना अनुभव सुनाता है। विक्टोरिया क्रास मुगलों ने सल्तनत बख्श दी, बाय एण्ड पग और तथा वह फिर नहीं आए कहानियों में भी लगभग ऐसा ही हुआ है।

एक साथ ही विविध प्रकार की शैलियों का प्रयोग लेखक ने निरुद्देश्य नहीं किया है। चरित्र चित्रण में यथार्थता तथा सजीवता लाने के उद्देश्य से ही उसने ऐसा किया है। फलतः विशुद्ध घटना प्रधान कहानियों को छोड़ अन्य कहानियों का चरित्र चित्रण आत्मविश्लेषणात्मक है। जहाँ स्वयम् मुख्य पात्र ने कहानी का सूत्र पकड़ा है वहाँ उसने केवल वस्तुपरक वर्णन ही नहीं किया वरन् स्वयं आत्म विश्लेषण भी किया है। प्रजंटम उत्तरदायित्व बाय एण्ड पग और कायरता पराजय अथवा मृत्यु राख और चिनगारी का आत्म विश्लेषण अत्यंत सुन्दर हुआ है। इनमें स्वयम् पात्रों ने अपने मन की विकृति तथा कुंठाओं की पृष्ठभूमि दे दी है। अन्य कहानियों का अधिकांश चरित्र चित्रण प्रायः लेखक द्वारा हुआ है। किन्तु इस चित्रण में लेखक तटस्थ नहीं रह पाया है। कारण यह कि लेखक निम्न तथा मध्यवर्ग के प्रति तो सहानुभूति रखता है किन्तु पूँजीपति के प्रति उसके मन में यह भावना नहीं रहती। यही नहीं, शिक्षित नारी के प्रति भी वह अनुदार रहा है। फलतः पहले वर्ग में तो उसने अच्छाइयाँ भर दी हैं और दूसरे वर्ग में केवल मात्र बुराइयाँ। अतः एव चरित्रों के सम्बन्ध में उसके निर्णय एकपक्षीय और पूर्वाग्रह से ग्रस्त हैं।

जो भी हो वर्माजी की कहानियों में मन का द्वन्द्व और भावनाओं का आलोड़न विलोड़न पर्याप्त मात्रा में है। इसके फलस्वरूप चरित्र सजीव और स्वाभाविक बन गये हैं। अतर्द्वन्द्व के अनेक उदाहरण पहले दिए जा चुके हैं जिनमें वर्माजी का मनोविज्ञान सम्बन्धी ज्ञान परिलक्षित हुआ है।

कहानियों के संवाद नाटकीय पर सजीव और स्वाभाविक हैं। पात्रानुकूल तथा भावानुकूल उनकी भाषा में स्वच्छन्दता तथा बनावट रहती है। कुँवर साहब मर गए में कुँवर साहब के सामने जब शराब से भरा गिलास रखा है जवान मालिन पर नजर है तब उनका यह वाक्य अब आ कम्बख्त देख तो इन सहरसीली को किसने बगल में धुस आने दिया ? इसी प्रकार कुँवर साहब मर गए — कितना सजीव और स्वाभाविक है यह कहने की आवश्यकता नहीं। 'आवारे' कहानी के गैर जिम्मेदार उच्छृंखलित युवकों के वार्तालाप में नाटकीयता नहीं, स्वाभाविकता है। वर्माजी की कहानियों के कथोपकथनों की एक मूल विशेषता यह है कि पात्रानुकूल उनकी भाषा सम्बन्धी

रही है। पियारी की ग्रामीण नायिका अपनी लोक भाषा में बात करती है राजा बाबू ! एक दिने है—जब उह मिलें तो कहि दीहुवे कि रास्ता रखत देखते । दो बातें वे ग्रामीण का मुंहा स्वांग खूब मरयो में कितनी सजीवता और स्वाभाविकता है। वरना हम भी आदमी थे काम के मैं मियाँ राहत की बीबी का निगोड़ा कलमुँहा कहीं का। नौकरी छोड़ आया हम लोगों को भूखा मारने के लिए ! न नौकरी छोड़ने का मलाल ! में लड़ाकू मुसलमान औरत का चित्र सजीव हो उठा है। अपनी कहानियों में मुसलमान पात्रों से वर्माजी ने अरबी फारसी शब्दों का अधिक-से-अधिक प्रयोग कराया है जिससे उनके संवाद कृत्रिम बनने से बच गये हैं। नाजिर मुंशी में मुंशी के कथोपकथन बड़े आकर्षक बन गये हैं लड़को ! सब जज साहब यही हैं बड़े स्वाभिमानी और बड़े इज्जतदार ! अंग्रेज तहजीब के कायल हैं और अगर देखा जाय तो अंग्रेजी तहजीब ऐसी कोई बुरी भी नहीं है। ये सब जज साहब हमारे मेजबान हैं इन्होंने हम यानी बारात को अपने घर पर बुलाया है। और मेरे प्यारे बच्चो तुम्हारे बुजुर्ग सबजज साहब से नाराज होकर चले जा रहे हैं इसमें तुम्हारे बुजुर्गों की ही गलती है। माना कि हिन्दुस्तान की पुरानी तहजीब के मुताबिक मेजबान का यह फर्ज है कि वह मेहमान की उचित अनुचित चुपचाप सह ले और अपने घर आमंत्रित मेहमान की सेवा करे लेकिन अंग्रेजी तहजीब के मुताबिक कभी भी बेजा बात न बर्दाश्त करनी चाहिए। क्योंकि मैं हिन्दुस्तानी तहजीब का कायल हूँ क्योंकि मैं हिन्दुस्तानी ही हूँ और हिन्दुस्तानियों के बीच में ही मुझे रहना है और मेरे प्यारे लड़को ! तुम्हारे लिए भी मेरी नेक सलाह यही है कि तुम हिन्दुस्तानी तहजीब को ही अपनाना लेकिन तुम्हें (सब जज) साहब की उचित पर डटे रहने की प्रवृत्ति पर उनकी इज्जत करनी चाहिए। तुम सब लोग झुककर (सब जज) साहब को सलाम करो और फिर अपने बुजुर्गों के साथ यहां [illegible] रवाना हो जाओ ! यद्यपि इसमें उचित-अनुचित तथा प्रवृत्ति जैसे शब्दों का प्रयोग मुसलमान पात्र के मुख से अस्वाभाविक लगता है किन्तु सम्पूर्ण वार्तालाप में जो मुसलमानी लहजा और अरबी फारसीपन है वह इसका प्राण है।

वर्माजी की वर्णनात्मक शैली की भाषा सीधी सरल और सुबोध है और उसने देखा कि सारी प्रकृति उसकी प्रसन्नता से हँस रही है। चिड़िया चहक रही थी और मोगरा महक रहा था। सुबह की ठंडी हवा अपनी मस्ती के साथ सौरभ से अठखेलियाँ कर रही थी और आम के बौरों पर बौराई हुई कोयल

पश्चिम की अन्धी नकल में मशगूल था। अपनी उमंग की मान्यता में वर्जित और पुनर्जित रामेश्वर अपनी तन्मयता के साथ यह सब देख रहा था।

प्रेमचन्द की भाषा की भाँति ही वर्माजी की भाषा उनके पात्रों के लिए स्वाभाविक और सरल है। अपनी अभिव्यक्ति को प्रभावशाली बनाने के लिए उन्होंने आवश्यकतानुसार लोकप्रचलित उर्दू, फारसी तथा अंग्रेजी भाषा के शब्दों का प्रयोग किया है। इस प्रकार उदाहरण समासयुक्त सूक्तियों आसमान दाग दा- ल्नि गवाग फज तनख्वाह नम्र न्यायाधीश सरजाम आदि लोक प्रचलित शब्दों के अतिरिक्त परिभाषा (पारिभाषिक अप्रचलित शब्द) जैसे अप्रचलित शब्दों का भी प्रयोग किया है।

वर्माजी एक विद्रोही कलाकार हैं और उनका सारा विद्रोह वर्तमान समाज के सौन्दर्य और आडम्बर पर है। उनकी प्रत्येक कहानी व्यक्ति की क्रिया-प्रतिक्रिया समझाने पर आधारित प्रहार करती है। परन्तु वर्माजी का ध्यान स्वभावतः कहानी के भाव-पक्ष की ओर अधिक और उसके कला-पक्ष की ओर कम है। भावों पर अधिक बल देने के कारण कहीं-कहीं उनकी भावनाएँ असंयत और विशृंखल हो गयी हैं। विचारों का वेग जब उनके मन में तीव्र हो उठता है तब वे अपने को नियन्त्रित नहीं कर पाते। और उन उठते गिरते भावों को वे ज्यों-का-त्यों अभिव्यक्त कर देते हैं। तब उन्हें इस बात की चिन्ता नहीं रहती कि उनकी कहानी की शिल्प विधि कैसी होगी। तब वे कला-सम्बन्धी नियम के पाबन्द नहीं रह पाते। वे भाव के प्रति सचेष्ट हैं शिल्प-विधि के प्रति नहीं। अपने एक कहानी-संग्रह में उन्होंने लिखा है "क्या लिखा जाता और क्यों लिखा जाता है किसी भी कलाकार की कृति को परखने के समय इन प्रश्नों का उत्तर कलाकार के पास ही नहीं वरन् कला के साथ अन्याय करना है। और लोगों को देखना चाहिए किस तरह लिखा जाता है? और यही कलाकार की सफलता है।" यही कारण है कि वर्माजी की कला मौलिक और विशिष्ट है।

अन्त में हमारे सामने एक प्रश्न आता है कि पूर्ववर्ती और समकालीन हिन्दी कहानीकारों में वर्माजी का स्थान क्या है? पूर्व प्रेमचन्द कहानी साहित्य उत्कर्ष की दृष्टि से कोई महत्वपूर्ण स्थान नहीं रखता। प्रेमचन्द हिन्दी कहानी क्षेत्र में युगनिर्माता के रूप में आये। विषय की दृष्टि से उनका साहित्य सम्पूर्ण है। जीवन का कोई ऐसा पक्ष नहीं है जिसे प्रेमचन्द ने न छुआ हो। उच्च मध्य और निम्नवर्ग सभी की, समस्या

मनोवृत्ति और मनोविज्ञान का जितना यथार्थ अंकन प्रेमचन्द कर गये वह आज दुर्लभ है। किन्तु वर्माजी का कहानी क्षेत्र अत्यन्त सीमित है। उनमें प्रभाव या जमीन्दार, कृषक, मजदूर, नगर सभी का चित्रण किया वहाँ वर्माजी का क्षेत्र बहुत कुछ बुद्धिजीवी वर्ग तक ही सीमित रह गया है। वे जमीन्दार, कृषक, मजदूर जीवन से काफी दूर रहे हैं। यह नहीं कि उनमें निम्न वर्ग के प्रति सहानुभूति नहीं है इस वर्ग के प्रति संवेदना तो उनकी रचनाओं में दृष्टिगत होती ▌ कि उन्होंने 'प्रायश्चित' ... ... आदि कहानियों में पतितवर्ग और उनकी संस्कृति को चित्रित किया है। वस्तुतः इसका कारण यह है कि इस वर्ग को वर्माजी ने निकट से नहीं देखा और जिस बात को गहराई से अभिव्यक्त न कर सकें उन विषयों पर लिखने का उन्होंने प्रयास नहीं किया। 'चित्रलेखा' और 'तीन वर्ष' ... में निम्नवर्ग की चर्चायें हैं अवश्य किन्तु वे ग्रामीण और मजदूर जीवन का अंकन करने के अभिप्राय से नहीं लिखी गयी हैं। इनका उद्देश्य अयंत्रित मानव विकृति का प्रकाशन करना रहा है। इसके विपरीत शहरी जीवन का जितना यथार्थ अंकन वर्माजी ने किया है वैसा प्रेमचन्द नहीं कर सके। शहरी जीवन में भी उन्होंने बुद्धिजीवी वर्ग को अपना प्रमुख विषय बनाया है। इस वर्ग की मनोवृत्ति तथा मनोविकृतियों को देखने की जितनी सूक्ष्म दृष्टि वर्माजी में है वैसी प्रेमचन्द में न थी। कारण स्पष्ट है। प्रेमचन्द के संस्कार और वातावरण ग्रामीण थे उन्होंने ग्रामीण जीवन को निकट से देखा ही नहीं था भोगा भी था इसलिए इस क्षेत्र में उनकी अभिव्यक्ति उत्कृष्टतम है। किन्तु वर्माजी का वातावरण सदैव शहरी रहा और उसी में उनका व्यक्तित्व पनपा इसलिए उसकी एक-एक गतिविधि और उस समाज की एक-एक साँस से वे परिचित हैं। जैसे उन्होंने उसकी प्रत्येक रक्तचाप प्रत्येक धड़कन को समझ लिया है। इसकी अभिव्यक्ति में वे नग्न यथार्थ का चित्रण करने में भी नहीं चूके हैं और इसलिए कभी-कभी वे हमें उग्र की भाँति कलाकार लगने लगते हैं किन्तु उनका नग्न यथार्थ उग्र की भाँति उत्तेजना पूर्ण नहीं।

उत्तर प्रेमचन्द काल के युग प्रवर्तक कहानीकार जैनेन्द्र हैं। उन्होंने काम जनित विकृतियों को आधार बनाकर कहानियाँ लिखी हैं। अपने क्षेत्र के वे अन्यतम कलाकार हैं किन्तु उनका विचारक वाला रूप उनके कलाकार वाले रूप पर हावी हो गया है। वे पात्र के किसी आचरण का सरल और सीधे ढंग से नहीं कह पाते। इसलिए उनके चरित्र बड़े गूढ़ और रहस्यमय हो गये हैं। किन्तु वर्माजी पहले कलाकार हैं बाद में चिंतक। उनमें भी विचारक वाला व्यक्तित्व

है, किन्तु उनका यह व्यक्तित्व मानव वाले व्यक्तित्व पर भारी नहीं हो गया है इसलिए उन्होंने दार्शनिक और मनोवैज्ञानिक बन कला के सौन्दर्य-व्यापार की हत्या नहीं की है। यद्यपि नीचे उद्धृत अंश समीक्षा की जबान में कहानी वह मर चुका का अंश है फिर भी यहाँ वह बगल बैठा है मैं कवि हूँ, कहानी लेखक हूँ पर मैं दार्शनिक कभी नहीं रहा। मेरा ऐसा अनुभव है कि दर्शन और मनोविज्ञान मनुष्य में उसकी भावना वाले सौन्दर्य का अपहरण कर लेता है। ❀



[१२]

'वह फिर नहीं आई' (१९६०)

वह फिर नहीं आई उपन्यास की कहानी राख और चिनगारी नामक कहानी संग्रह में इसी नाम से संग्रहीत है। लगभग छत्तीस पृष्ठों की इस कहानी को वर्माजी ने लघु उपन्यास का आकार दिया है। कदाचित् इस कहानी को उपन्यास रूप में प्रस्तुत करने में वर्माजी का उद्देश्य व्यावसायिक रहा हो किन्तु इस बात से इन्कार नहीं किया जा सकता कि वह फिर नहीं आई कहानी संवेदनशीलता की दृष्टि में अत्यन्त सफल है और मित्रों का आग्रह भी इसे उपन्यास का रूप देने में सहायक हुआ होगा। वैसे कहानी और उपन्यास के लेखन-काल में दस वर्ष का अन्तर है। वह फिर नहीं आई कहानी का लेखन काल वर्माजी के कथनानुसार १९५० है और वह फिर नहीं आई उपन्यास का प्रकाशन काल १९६०। इस दस वर्ष की अवधि में किसी लेखक क्या साधारण व्यक्ति तक में महान अन्तर आना स्वाभाविक है। उसके आदर्श उसकी मान्यताएं उसके जीवन मूल्य बदल सकते हैं। विशेषत यदि युवा व्यक्ति प्रौढ़ता की ओर बढ़ रहा हो तो उसमें अधिक अन्तर आने की संभावना रहती है। उसकी भावुकता गम्भीरता में बदल सकती है। लेखन में उसके अनुभवों की छाप आ सकती है। वर्माजी की इस कहानी और उपन्यास में इन सब कारणों से अन्तर आना स्वाभाविक था और वह आया भी है। भावुकता की दृष्टि से वर्माजी में किसी प्रकार का अन्तर नहीं आया। उम्र के साथ उसमें वृद्धि हुई है। उन पर दार्शनिकता का आवरण अवश्य चढ़ गया है। प्रत्येक वस्तु को वह दार्शनिक दृष्टि से देखने लगे हैं। कहानी के इतिवृत्त में किसी प्रकार का अन्तर न होने के कारण उसके आकार में वृद्धि दो ही प्रकार से की जा सकती थी—एक तो विषय की विस्तार से व्याख्या करने से दूसरे बाह्य जगत का दूसरे शब्दों में स्थानीय वर्णन को बढ़ा चढ़ा कर करने से। वर्माजी ने दोनों का ही उपयोग अपने उपन्यास में किया है। १९५३-५५ में लेखक दिल्ली में रहा। वहाँ के जीवन का सूक्ष्म पर्यवेक्षण उसने किया था। उपन्यास में दिल्ली के वर्तमान और प्राचीन

जीवन पर उनकी टिप्पणी काफी लम्बी है। दिल्ली भारतवर्ष की राजधानी है। यहाँ से करोड़ों आदमियों का जीवन संचालित होता है। सारे देश का रुपया सिमटकर दिल्ली में आता है और यहाँ से वह फिर वितरित होता है। भोजन वस्त्र, शांति आराम सुख-सुविधा ये सब सारे देश को दिल्ली से वितरित होते हैं। यहाँ कानून बनते हैं यहाँ परमिट बनते हैं यहाँ रुपया लुटता है। बनाना या तबाह करना हँसाना या रुलाना बसाना या उजाड़ना ये सब कुछ अफसरों के हर फेर से हो जाया करता है यहाँ। कितनी व्यंग्यपूर्ण पर सटीक टिप्पणी है दिल्ली पर।

विस्तार के लिए वर्मा ने नानचन्द के कारोबार परिवार आदि का भी उल्लेख किया है। कहानी में यह अंश नहीं है। इस प्रकार का विस्तार उचित है किन्तु इसमें नानचन्द की पत्नी का जो रूप आया है वह कथा में ही सा अस्वाभाविक है। पत्नी चाहे कितना भी विशाल-हृदया हो यह नहीं कह सकती कि वह तुम्हारी नहीं है—शायद वह बन भी नहीं सकता। वह फिर नहीं बाद कहानी में नानचन्द के परिवार और उसकी पत्नी का उल्लेख तक नहीं है। इस उल्लेख से इतिवृत्त किंचित मात्र बढ़ा अवश्य है पर मूल कथा में इसमें किसी प्रकार का अन्तर नहीं आया है। उपन्यास में भी पाठकों की भावनात्मक संवेदना उतनी रहती है जितनी कहानी में उत्पन्न हुई है। किन्तु स्थान-स्थान पर वर्माजी की दार्शनिक टिप्पणियों ने उपन्यास में एक गम्भीरता अवश्य उत्पन्न कर दी है। इस प्रकार की टिप्पणियों में भावनात्मक संवेदना बाधा तो हलका पड़ने की सम्भावना थी किन्तु उपन्यास में ऐसा नहीं हुआ। वरन् हम यह पाते हैं कि उसमें वृद्धि ही हुई है। इसका कारण यह है कि वर्माजी ने जितनी भी दार्शनिक टिप्पणियाँ की हैं वे सब भावुकता में आते प्रात हैं। कहा तो इनके संयुक्त प्रभाव में अभिव्यक्ति में अपूर्व सौन्दर्य उत्पन्न हो गया है लेकिन मैं शायद अपनी बात ठीक तरह से नहीं कह पा रहा। असली बात यह है कि मैंने अपने को खो दिया हम सब खोते रहते हैं। पाते कुछ नहीं। जिसे हम पाना कहते हैं वह छलने वाला भ्रम है। भ्रम है, भ्रम का दूर हो जाना ही खो देना कहलाता है। और आज मुझे लग रहा है कि हमारा समस्त अस्तित्व ही इस भ्रम और छलना से अनुप्राणित एव अनुशासित है। भ्रम दूर होते रहते हैं लेकिन वास्तविकता हम नहीं प्राप्त कर पाते—एक भ्रम के बाद दूसरा भ्रम। हम पकड़ा सत्य को ही समझ पाते हैं लेकिन वह सत्य क्या है? नहीं समझ में आता कुछ भी समझ में नहीं आता। वह सत्य है असमर्थता और निराशा। इस असमर्थता और निराशा के आगे और कुछ है यह मैं नहीं जानता।

मेरे सामने तो जो कुछ है वह भ्रम है और इस भ्रम को हम दूर नहीं करना चाहते क्योंकि भ्रमों का पर्दा हटाने पर जो है वह मृत्यु है। हे मृत्यु। हम सब अपने भ्रमों के सुख तले घिरे रहना चाहते हैं। इन भ्रमों का टूटना ही मृत्यु देना है।

मैंने श्यामलाल को मार दिया। एक भ्रम मेरे जीवन में आकर निकल गया। लेकिन उस भ्रम में कितनी मान्यता थी कितना पुण्य था उस भ्रम को पाने के लिए मैं कितना विकल हूं। कितना अधीर हूं उस भ्रम के अभाव में मैं स्वयं अपने लिए एक दुःस्वप्न बन गया हूं।

अतएव वह फिर नहीं आई कहानी में लेखक विशुद्ध कहानीकार है पर उपन्यास में कहानीकार के साथ साथ दार्शनिक भी है। अवसर पाते ही वह किसी न किसी विषय की जरूर दार्शनिक व्याख्या करने लगता है। उसकी ये व्याख्याएँ सभी विषयों पर हैं—व्यापार इतिहास परिवार समाज प्रेम अपराध कानून नैतिकता—किसी को भी उसने नहीं छोड़ा। ये टिप्पणियाँ कभी कभी लगातार भी आ गयी हैं। जैसे इतिहास कानून नैतिकता व्यापार पर छः सात पृष्ठों में दार्शनिक व्याख्याएं लगातार बड़ी विस्तार से आयी हैं। इससे उपन्यास में नीरसता आने की संभावना पूरी तरह थी। किन्तु ऐसा नहीं हुआ है क्योंकि बीच-बीच में लेखक ने एक-दो पैराग्राफों में कथा तन्तु इस प्रकार गूंथ दिये हैं कि वे टिप्पणियाँ प्रसंगानुकूल प्रतीत होती हैं। जो आत्मविश्लेषण पात्र कर रहा है और जिस मन स्थिति में वह है उसमें उसका दार्शनिक और मनोवैज्ञानिक दृष्टि से विश्लेषण करना स्वाभाविक है। फलतः इस प्रकार की व्याख्याएं मूल कथा की अंश हैं। इस संदर्भ में एक प्रश्न उठा सकते हैं कि जब शांतचन्द्र आत्मविश्लेषण कर अपनी गलती महसूस करता है तो फिर क्या वह जीवनराम को जेल भेजता है? इसका उत्तर स्वयं शांतचन्द दे देता है जीवनराम जेल में है। उसे सजा होगी। वह बच नहीं सकता। और जहां तक मेरा प्रश्न है मैं कानून की पकड़ में नहीं हूं। क्योंकि मैं सक्षम हूं मैं समर्थ हूं अधिकारी मेरे मित्र हैं समाज में मेरा आदर है सम्मान है। दूसरों को पैसों का प्रलोभन कर सकता हूं और मेरे ऊपर आँच भी नहीं आ सकती। फिर भी मेरे मन में हलचल है उलझन है। मेरा मन शांत नहीं है मैं अपराधी हूं।

मेरे मन वाला यह अन्तर्द्वन्द्व यह आर्थिक कारणों से नहीं हो सकता मैं अनुभव कर रहा हूं। कहीं बहुत भीतर चेतना की अजीब अथाह तहों में

देना चाहें तो भारतीय काव्य शास्त्र की शब्दावली में हम उसे उपनायक कह सकते हैं किन्तु उपनायक कहकर हम उसके महत्त्व को कम नहीं करते। क्योंकि वह नायक से अधिक महत्त्वपूर्ण है। अतएव उपन्यास में पात्र यद्यपि तीन हैं किन्तु दोनों प्रमुख हैं।

उपन्यास का सम्पूर्ण इतिवृत्त भावना और संवेदना का कहा जा सकता है क्योंकि घटना और चरित्र का स्थूल वर्णन इसमें नहीं है। फलतः उपन्यास में वह कथा संयोजना भी नहीं है जो होनी चाहिए। आत्म-कथात्मक शैली में पूर्व निश्चित योजना होती भी नहीं। वस्तुतः इसमें इतिवृत्त के क्रमिक विकास की भी आवश्यकता नहीं होती। किन्तु वह फिर नहीं आयी में एक विराम क्रम है एक प्रकार का कुतूहल और उत्सुकता है। जीवनराम की जब भेंट होती है तब कथा में एक विराम सा आता है। किन्तु श्यामला की कहानी को सुनने के बाद ज्ञानचन्द पर क्या प्रतिक्रिया होगी उसका परिणाम क्या होगा—इसके प्रति पाठक उत्सुक हो उठता है। ज्ञानचन्द की भावनाएँ बार-बार बदलती रहती हैं इसलिए उसकी प्रतिक्रिया के परिणामस्वरूप कुछ नवीन होगा इसकी सम्भावना हमेशा बनी रहती है।

वर्मा जी का नियति और प्रेम के स्थायित्व पर सदैव से विश्वास रहा है। इन दोनों का अस्तित्व हम इस उपन्यास में भी पाते हैं। श्यामला अपने संवाद में बार-बार नियति की दुहाई देती है। श्यामला और जीवनराम का प्रेम भी स्थायी है—चिरस्थायी। बाह्य परिस्थितियों के कारण जीवनराम और श्यामला अनेक बार विलग होते हैं श्यामला को अनेक बार अपना तन बेचना पड़ता है—किन्तु उसकी आत्मा सदैव जीवनराम की रहती है। उसके मरने के बाद तक। उसकी मान्यता है दो प्राणों को एक सूत्र में बाँधता है वह प्रेम है विवाह तो दो शरीरों को एक सूत्र में बाँधता है। विवाह तो वह शाहनाज से भी करती है लेकिन परिस्थितियों से मजबूर होकर किन्तु प्रेम दो प्राणों को जो एक सूत्र में बाँधता है वह जीवनराम से ही करती है। वर्मा जी ने नारी को विशेषतः वेश्या या समाज की दृष्टि में पतित नारी को बहुत ऊँचा उठाया है। उसके हृदय की पीड़ा को समझा है उसके मर्म को छुआ है। चित्रलेखा की चित्रलेखा तीन वर्ष की सरोज आखिरी दाँव की चमेली वह फिर नहीं आयी की श्यामला के ऊँचे चरित्र उनकी इसी भावना के परिणाम हैं। शरणार्थी समस्या और सताई हुई शरणार्थी नारी की इतनी मर्म स्पर्शी कहानी बहुत कम देखने में आयी है।

'वह फिर नहा आई' के सभी चरित्र मानवीय-कमजोरियों से ग्रस्त होने पर भी बहुत ऊँचे हैं। ज्ञानचन्द की समस्त दुर्बलताएं मानवीय हैं। जीवनराम का चरित्र भी कम प्रभावशाली नहा है। परिस्थितिवश वह अपनी पत्नी का शरीर बिकने देता है किन्तु वह श्यामला को प्राणों से भी ज्यादा प्यार करता है। उसने अपनी छोटी-सी जिन्दगी म इतना सहा है कि अच्छाई नेकी और इसानियत पर स उसका विश्वास उठ जाता है और अगर वह विश्वास कर भी ले तो किसी की दया का उसे आवश्यकता नहा। जेल से छूट जाने के बाद वह समझता है कि ज्ञानचन्द ने उसकी पत्नी के बन्ने में उसे छुड़ाया है तो वह कहता है ता फिर आ गया आपकी समझ म—आपने मेरी पत्नी ली मन आपका रुपया लिया, हिसाब किताब बराबर। किन्तु ज्ञानचन्द के यह कहने पर कि यह श्यामला तुम्हारी पत्नी है और वह तुम्हारी ही रहेगी वह एकाएक सहक उठता है। न जाने कहाँ की दृढ़ता और कठोरता उस अकर्मण्य स्त्रैण और सकुचित जीवनराम म आ जाती है और वह यह कहकर कि तो मालूम होता है श्यामला आपके सामने रोई और गिड़गिड़ाई। वह आपके यहाँ भीख माँगने गयी थी। लेकिन ज्ञानचन्द जी मैं आपकी भीख नहा चाहता। मैं दुनिया में किसी की दया और करुणा नहा चाहता।।मैं चाहता हूँ कि मैं आपका रुपया वापस करके ही अपनी पत्नी को आपसे लूगा तब तक नहा। वह चला जाता है। जीवनराम में दृढ़ता और अटूट आत्मविश्वास है।

इस प्रकार 'वह फिर नहा आयी' के किसी पात्र के प्रति हमारी सहानुभूति कम नहा होती उपन्यास की भाषा बड़ी प्रभावपूर्ण और अभिव्यक्ति बड़ा मम स्पर्शी है। एक उदाहरण है 'क्या आप कल्पना कर सकते हैं—जिसे पाला मार गया हो, उस रक्त का जो ठंडा पड़ गया हो, उस अस्तित्व को जो भावना विहीन हो गया हो? क्या आपने पानी का सड़ना देखा है? क्या आपने रुकी हुई हवा की घुटन का अनुभव किया है?



परिशिष्ट

एक लम्बे अरसे के बाद वर्माजी की 'उन्माद' नाम से एक रचना 'नई कहानियाँ' के मार्च १९६३ के अक मे प्रकाशित हुआ। यह कहानी वर्मा जी की पूर्ववर्ती कहानियो से अभिव्यक्ति और रचना सभी म भिन्न है। आज की कहानी कला से लेखक प्रभावित है इसके स्पष्ट चिन्ह उनकी इस कहानी मे मिलते है। पात्रो का मनोवैज्ञानिक चित्रण भले ही उनकी अभी तक की कहानियो म रहा हो किन्तु आधुनिक मनोविज्ञान की गहराई उनमे नहीं थी। 'उन्माद' म मन के गूढ रहस्यो से वह हमारा परिचय कराता है। और इस प्रकार यह भी स्पष्ट है कि वर्मा जी की मान्यताएँ बदली हैं। अब वे मनोविश्लेषण को कहानी मे दुरुहता लाने का कारण नहीं मानते।

'उन्माद' की सम्पूर्ण कथा व्यक्ति के मन के आलोडन विलोडन से सम्बन्ध रखती है। अपने मन के सघर्ष को स्वयम् उसका भुक्त भोगी तक नहीं समझ पाता। कहानी की नायिका नीलिमा का मानसिक सघर्ष बडा विचित्र और गूढ है। उसका व्यक्तित्व बडा उलझा उलझा और मनोविकृति से पूर्ण है। तीन बच्चो की माँ और करोडपति की पत्नी होने पर भी वह एक पर पुरुष चित्रकार मधुसूदन से प्रेम करने लगती है या उसके वासना के उन्माद मे खो जाती है। उसके पति का जो व्यक्तित्व लेखक ने प्रस्तुत किया है वह इतना रूखा है कि कोई भावुक स्त्री उससे प्यार कर ही नही सकती। नीलिमा का पति साधारण शक्ल का मोटा-सा आदमी जिसके बाल सफेद होने लगे थे और जिसके मुख पर किसी प्रकार का कोई भाव नहीं था। वह एक लम्बा सा स्वस्थ व्यक्ति था और बडे शानदार कपडे पहने था। उसके शब्दो मे एक प्रकार के अहकार की छाप थी—मैंने यह अनुभव किया। वैसे वह ऊपरी ढङ्ग से बडा शिष्ट और विनीत था जैसा कि हरेक सफल और सम्पन्न व्यापारी होता है। यह व्यक्ति व्यस्त इतना कि दो मिनट शान्ति से बैठने का समय इसके पास नहीं। नीलिमा के शब्दो म—इन्हे तो बस कारबार कारबार। फुरसत ही नहीं मिलती कि कला साहित्य और सगीत मे रुचि ले। चित्रकार के शब्दो मे अपने व्यापार म और धन सग्रह मे खोया आदमी था वह भावना के क्षेत्र से अलग। और

इसलिए नीलिमा चित्रकार की ओर आकर्षित होती चली जाती है। किन्तु यह वासनामय प्रेम यह उन्मादावस्था देर तक रहती। जब नशा उतर जाता है जब उन्माद के क्षण बीत जाते हैं तो प्रत्येक व्यक्ति को अपना कर्तव्य याद आता है। चित्रकार की वासना जब तृप्त हो चुकती है तो वह अपने परिवार की ओर झुकता है। किन्तु नारी की उद्दाम वासना इतनी जल्दी तृप्त नहीं हो पाती। इसलिए नीलिमा चित्रकार के साथ भागकर रहने को कहती है। वह कहती है—'मैं तुमसे प्रेम करती हूँ। मैं तुम्हारे साथ रहना चाहती हूँ मधुसूदन। मैं अपने पति को छोड़ने को तैयार हूँ। सच मुच—मैं तुम्हें ही प्यार में रखना चाहती हूँ। इस उन्माद का प्रेम के पागलपन में ही वह जिक्र करता है। मधुसूदन तथा नीलिमा के मन की ये स्थितियाँ तो स्पष्ट हैं किन्तु उनका मन तब गूढ़ रहस्य बनकर हमारे सामने आता है जब शीला अपना कर्तव्य जानते हुए भी इस उन्माद से मुक्त नहीं हो पाते। मधुसूदन यह जानते हुए भी कि यह पागलपन अस्तित्व का निषेध है—यह विनाश है। ... आत्मा समाज की अवज्ञा करके कब तक और कहाँ तक एक साथ रह सकते हैं —अपने मन की गति को रोक नहीं पाता। दूसरी ओर नीलिमा भी कभी कभी यह अनुभव करती थी लेकिन वह भी अपने ही में विवश है। दोनों का मन इस उन्माद की स्थिति इस सम्मोहन से मुक्ति पाने को तैयार नहीं होता। फलतः विवश हो मधुसूदन को पलायन दिखलाना पड़ता है। किन्तु विदेश जाकर भी चित्रकार का मन शम नहीं पाता और नीलिमा को एक बार फिर से देखने की उसकी अभि-लाषा उसे अपने देश लौटा लाती है। नीलिमा का अन्तर्मन मधुसूदन के उसके जीवन से चले जाने से निश्चय ही प्रसन्न हुआ होगा, क्योंकि इस प्रकार वह अपने अन्तर्द्वन्द्व से मुक्ति पा सकी थी। मधुसूदन को फिर से पाकर वह प्रसन्न नहीं होती। उसकी उदासीनता उसके व्यवहार से प्रकट है। वह अपनी इस परिवर्तित मनःस्थिति को मधुसूदन से छिपाने का प्रयत्न भी नहीं करती। वह स्वीकार करती है कि 'मधु तुमने मुझे छोड़कर मेरा बड़ा उपकार किया मैं तुम्हारी कृतज्ञ हूँ। तुम सच कहते हो कि मैं सुखी हूँ बहुत अधिक सुखी। मेरा परिवार है मेरे बच्चे हैं। बड़ी-बड़ी पार्टियाँ मैं देती हूँ बड़ी बड़ी पार्टियों में मैं जाती हूँ। समाज में मेरा मान है मेरी प्रतिष्ठा है। सच मैं तुम्हारा कितना आभार है। किन्तु यह भी नीलिमा का वास्तविक रूप नहीं था उसके हृदय का यथार्थ चेतन नहीं था क्योंकि पाँच वर्ष बाद वह फिर मधुसूदन के पास प्रेम की भिक्षा माँगने आती है यह कहकर कि 'मैं तुम्हारे बिना नहीं रह सकती मधु। मुझे यह परिवार की बच्चों का सुख नहीं चाहिए बिलकुल नहीं

चाहिए। उस आदमी के साथ जिसके बच्चों को मैंने जन्म दिया जिस घुटन के साथ मैं रही हूँ यह मैं ही जानती हूँ। मैंने तुम्हें भूलने का प्रयत्न किया तुम्हारे हित का ध्यान रखकर तुम्हारे परिवार के हित का ध्यान रख कर। और अब तुम मुक्त हो। नीलिमा के मन की इस क्षण-क्षण परिवर्तित मनोवृत्ति का रहस्य क्या है? वह मधुसूदन को धोखा देती है या अपने मन को? उसकी आत्म छलना का रहस्य है—उसकी अतृप्त वासनाएँ। यह स्पष्ट है कि वह मधुसूदन को वैसा प्यार नहीं करती जैसा दिखाती है। उसमें वह अपनी वासना तृप्त करती है। उसके पास निजी दस लाख रुपया है जिससे विदेश में वह सुख और सम्मान से अपना जीवन बिता सकती है। यदि उसके पास धन न होता तो वह कभी मधुसूदन को विदेश ले जाकर जिन्दगी को फिर से नये सिरे से शुरू करने की बात न कहती। यह सब उसकी मृग-तृष्णा है जो क्षण क्षण पर अपना रूप बदलती है।

मधुसूदन और नीलिमा दोनों के अन्तर्द्वन्द्व को अभिव्यक्त करने में लेखक पूर्णतः सफल हुआ है। अपने हृदयान्दोलन से भागे भागे फिरने पर भी दोनों पात्र उससे छुटकारा नहीं पा सके इस उलझनपूर्ण मनोविकृति को लेखक ने उनके आचरण के माध्यम से प्रकट करने का प्रयत्न किया है। पात्रों के मनोविश्लेषण में वह स्वयं नहीं उलझा है। उन्हीं के माध्यम से उसे अभिव्यक्त करने की चेष्टा की है।

वर्माजी ने स्वच्छन्द प्रेम को सदैव प्रश्रय दिया है। किन्तु उस स्वच्छन्द प्रेम के वे समर्थक नहीं हैं जिसमें उच्छृङ्खलता हो। जो जीवन की अनेक महत्वपूर्ण चीजों को भुला दे। यह प्रेम नहीं उन्माद है यह पागलपन है। प्रेम को संयत रहना चाहिए प्रेम का पागलपन बन जाना प्रेम की विकृति है।

उन्माद कहानी का सम्पूर्ण इतिवृत्त भावनाओं के आलोडन विलोडन पर स्थित है। स्थूल इतिवृत्त को लेकर यह कहानी नहीं लिखी गयी। जैसा कि वर्माजी की पूर्ववर्ती कहानियों की विशेषता थी उनके कथा विकास में घटनाओं एवम् संयोगों का विशेष हाथ रहता था इसमें वह बात नहीं है। चरित्र की विविध मन स्थितियों भावनाओं के उत्थान-पतन ने ही इस कहानी का रूप विधान निर्मित किया है।

जैसा कि हम वर्माजी की पूर्ववर्ती कहानियों में देख चुके हैं वे कहानी का आरम्भ विविध ढङ्ग से करते हैं। कहानी का आरम्भ करने का उनका एक ढङ्ग यह भी है कि वे मूल कहानी की भूमिका बाँधने के लिए किसी दूसरी कहानी से

उसका आरम्भ करते हैं और फिर विषय के साम्य के कारण प्रमुख कथा का सूत्र पकड लेते हैं। उन्माद म मुख्य पात्र मधुसूदन की भेंट सतीश से संयोगवश ट्रेन मे हो जाती ह—एक विचित्र मन स्थिति म। यह विचित्र मन स्थिति कभी मधुसून्न की भी थी यही पागलपन तो जिन्दगी है एक समय मैं भी यह समझता था—हम सब किसी न किसी समय ऐसा समझने लगते हैं, लेकिन यह सत्य नही है। तुम शायद मेरी कहानी सुनना चाहोगे—इस कहानी को सुनने के बाद सभव है तुम अपना दुख भूल जाओ इस सत्य प्रेरणा क फलस्वरूप मधुसून्न अपनी कहानी सुनाता है।

कहानी आत्म-कथात्मक शैली म है। पर मधुसून्न ने अपना आत्म विश्ले पण इतना अधिक नही किया जितना नीलिमा के आचरण का अध्ययन। अपने हृदय-मथन क सम्बध म तो वह केवल दो चार बार उल्लेख करके ही रह जाता ह हम दोना वासना के उन्माद म बह रहे थे और उसके प्रेम तथा आत्म समपण की प्रतिक्रिया उस पर भी पडी। मैं नीलिमा से दूर हटना चाहता था। हम दोनो क अलग होने ही में दोना का कल्याण था हम दोना जितना अधिक एक-दूसरे से हटना चाहते थे, उतना ही एक-दूसरे क पास आते जाते थे। पलायन करते समय वह केवल इतना सोचता है—ऐसी हालत में मुझे कुछ-न-कुछ निणय करना ही था। मेरा सारा अस्तित्व खतरे म था और एक अजीब तरह का भय समा गया था मेरे अन्दर। और फिर मैंने इस समस्या को हल करने का कदम उठा लिया। वह कदम था—पलायन। इन दो-चार वाक्यों से ही मधुसून्न का मानसिक सघष प्रकट हुआ है। मनोविश्लेषण की प्रवृत्ति वर्माजी म अधिक नही दिखलाई।

उपसंहार

वर्माजी के सम्यक कथा-साहित्य का अध्ययन करने के पश्चात् उनका कथाकार वाला एक विशिष्ट व्यक्तित्व हमारे सामने उभर आता है। उनकी समस्त रचनाओं में हमें व्यक्तिवादी मानव चेतना का स्वर मुखरित मिलता है। उनका यह स्वर रोमांस के क्षेत्र में सबसे अधिक प्रखर हुआ है। नवीन को ग्रहण करने की उनमें जन्मजात प्रवृत्ति है पर नवीन के नाम पर अंधानुकरण उनकी रुचि के बाहर की चीज है। आज के सांस्कृतिक संक्रमण काल में अनास्था का भाव उनमें आप-ही आप तीव्र हो उठा है। परिस्थितियाँ इतनी तेजी से बदल रही हैं चीजों का रूप इतना विकृत होता जा रहा है कि सही क्या है और गलत क्या है इसका निर्णय व्यक्ति के सामने एक समस्या बनकर उपस्थित हो गया है। और यही व्यक्ति में अनास्था का भाव जाग्रत करने का कारण बना है। इस रूप में वर्माजी को हम अनास्थावादी कलाकार कह सकते हैं। किन्तु उनमें हमें अनास्था का विकृत रूप नहीं मिलता। उनकी आस्था अंधी नहीं है। उनकी आस्था फेथ इन गुड वाली है। और यही वर्माजी के साहित्य में वह विशिष्टता पैदा हो गयी है जो हमें सर्वाधिक प्रभावित करती है और यह विशिष्टता है उनका अत्यधिक यथार्थवादी दृष्टिकोण। उन्होंने केवल जीवन के चित्र दिए हैं उन्हें अच्छा या बुरा बताने का प्रयत्न नहीं किया और इसलिए वे समस्या या समस्याएँ उपस्थित कर देते हैं समाधान नहीं देते। पाठक को वे वस्तुस्थिति के यथार्थ रूप से परिचित कराकर उस पर निर्णय देने के लिए स्वतंत्र छोड़ देते हैं। पाठक जिस ढंग से चाहे उसे ग्रहण करे और उस पर सोचे।

किन्तु इसका यह अर्थ नहीं कि वर्माजी की रचनाएँ निरुद्देश्य हैं। वस्तुतः उन्होंने जो कुछ लिखा है वह सोद्देश्य है—केवल इस अर्थ में कि वस्तु का यथार्थ रूप हमारे सामने आ जाय। उसके लिए किसी आदर्श की स्थापना करने का प्रयत्न उन्होंने कभी नहीं किया। वैसे उनकी व्यक्तिवादी मानव चेतना स्वयं में एक स्थापना है इसे हम अस्वीकार नहीं कर सकते। किन्तु वह

स्थापना आस्था से मुक्ति पाने का प्रयास भर है—इससे अधिक कुछ नहीं। और अच्छाई के प्रति आस्था वर्माजी की मौलिक प्रवृत्ति है।

यथार्थ अयथार्थ के प्रश्न से जुड़ी एक समस्या वर्माजी के साहित्य के सम्बन्ध में रह जाती है। वह यह कि जहाँ कहीं वे अति यथार्थ के निकट आया है, उनका साहित्य अश्लीलता का स्पर्श करने लगता है। रोमांस चित्रण में उन्होंने कम संयम से काम नहीं लिया। किन्तु इसका तात्पर्य यह नहीं कि वह उस के निकट पहुँच गया है। वस्तुतः वर्माजी का साहित्य उस-साहित्य की उस अश्लीलता से बहुत परे है जो पाठकों में तत्सम्बन्धी उत्तेजना उत्पन्न कर दे। उनकी चित्रण शैली यथार्थ है विषय निरूपण नहीं। उनकी चित्रण शैली में वह विशेषता है जो पाठकों की रुचि का परिमार्जन करती है उनकी भावनाओं को कलुषित करने का प्रोत्साहन नहीं देती।

वर्माजी के साहित्यिक व्यक्तित्व में चिन्तक एवं सर्जक वाले रूप अलग अलग नहीं हैं। वे एक-दूसरे के पूर्णमिल गये हैं। इनमें से एक रूप प्रधान और दूसरा रूप गौण भी नहीं हुआ है। उपन्यास और कहानी वाले तत्व को प्राथमिकता देने के कारण विचार-पक्ष प्रबल होने पर भी उनकी रचनाओं में वह अलग उभर कर नहीं आया। उनका साहित्य विचारोत्तेजक है विचार प्रधान नहीं। यह एक ऐसी विशेषता है जो आज के मनोवैज्ञानिक कथाकारों में नहीं मिलती। मनोरंजन की दृष्टि करना उनके कथा साहित्य का मुख्य ध्येय है। आज के कथाकारों की रचनाओं में जहाँ कहानी के नाम पर कुछ नहीं मिलता वहाँ वर्माजी के उपन्यास-कहानी में कथा तत्व उनका पहला आकर्षण है। कहानी वाले तत्व को प्राथमिकता देने के कारण ही उनकी कहानियों में हमें संकुचन नहीं मिलता। उनमें विस्तार स्वयं हो गया है।

सोद्देश्य रचनाएं होने के कारण वर्माजी की रचनाओं में कतिपय विशिष्टताएँ उत्पन्न हो गयी हैं। उनके मस्तिष्क में कथानक तथा पात्रों की संयोजना पूर्व निश्चित रहती है। किन्तु एक आलोचक के आरोप से हम पूर्णतः असहमत हैं कि वर्माजी अपनी अभीष्ट की सिद्धि के लिए कथानक के विकास में शिथिलता पात्रों के चरित्र में यांत्रिकता तथा घटनाओं में कृत्रिमता ला देते हैं। वर्माजी के मन में तद्विषयक पूर्व निश्चित योजना अवश्य रहती है, पर वह कृत्रिम रचना प्रक्रिया की सीमा तक पहुँच गयी हो ऐसा नहीं है। कौन-सा कलाकार ऐसा है जिसके मस्तिष्क में अपनी रचना का लक्ष्य या अपनी रू-

उपसंहार

वर्माजी के सम्यक कथा-साहित्य का अध्ययन करने के पश्चात् उनका कथाकार वाला एक विशिष्ट व्यक्तित्व हमारे सामने उभर आता है। उनकी समस्त रचनाओं में हम व्यक्तिवादी मानव चेतना का स्वर मुखरित मिलता है। उनका यह स्वर रोमास के क्षेत्र म सबसे अधिक प्रखर हुआ है। नवीन को ग्रहण करने की उनम जन्मजात प्रवृत्ति है पर नवीन क नाम पर अधानुकरण उनकी रुचि के बाहर की चीज है। आज क सास्कृतिक सक्रमण काल मे अनास्था का भाव उनमे आप ही आप तीव्र हो उठा है। परिस्थितियाँ इतनी तेजी से बदल रही हैं चीजो का रूप इतना विकृत होता जा रहा है कि सही क्या है और गलत क्या है इसका निर्णय व्यक्ति के सामने एक समस्या बनकर उपस्थित हो गया है। और यही व्यक्ति मे अनास्था का भाव जाग्रत करने का कारण बना है। इस रूप मे वर्माजी को हम अनास्थावादी कलाकार कह सकते हैं। किन्तु उनमे हमे अनास्था का विकृत रूप नही मिलता। उनकी आस्था अधी नही है। उनकी आस्था केवल इन गुणो वाली है। और यही वर्माजी के साहित्य मे वह विशिष्टता पैदा हो गयी है जो हमे सर्वाधिक प्रभावित करती है और यह विशिष्टता है उनका अत्यधिक यथार्थवादी दृष्टिकोण। उन्होने केवल जीवन के चित्र दिए हैं उन्हें अच्छा या बुरा बताने का प्रयत्न नही किया और इसीलिए वे समस्या या समस्याए उपस्थित कर देते हैं समाधान नही देते। पाठक को वे वस्तुस्थिति के यथार्थ रूप स परिचित कराकर उस पर निर्णय देने के लिए स्वतत्र छोड देते हैं। पाठक जिस ढग मे चाहे उसे ग्रहण करे और उस पर सोचे।

किन्तु इसका यह अथ नही कि वर्माजी की रचनाए निरुद्देश्य हैं। वस्तुत उन्होने जो कुछ लिखा है वह सोद्देश्य है—केवल इस अथ म कि वस्तु का यथार्थ रूप हमारे सामने आ जाय। उसके लिए किसी आदर्श की स्थापना करने का प्रयत्न उन्होने कभी नही किया। वैसे उनकी व्यक्तिवादी मानव चेतना स्वय म एक स्थापना है इसे हम अस्वीकार नही कर सकते। किन्तु वह

स्थापना आस्था से मुक्ति पाने का प्रयास भर है—इससे अधिक कुछ नहीं। और अच्छाई के प्रति आस्था वर्माजी की मौलिक प्रवृत्ति है।

यथार्थ अयथार्थ के प्रश्न से जुड़ी एक समस्या वर्माजी के साहित्य के सम्बन्ध में रह जाती है। वह यह कि जहाँ कहीं लेखक अति यथार्थ के निकट आता है उसका साहित्य अश्लीलता का स्पर्श करने लगता है। रामाम चित्रा में उसने कम संयम से काम नहीं लिया। किन्तु इसका तात्पर्य यह नहीं कि वह उ- के निकट पहुँच गया है। वस्तुतः वर्माजी का साहित्य उग्र-साहित्य की उग्र अश्लीलता से बहुत परे है जो पाठकों में तत्सम्बन्धी उत्तेजना उत्पन्न करे। उनकी चित्रण शैली यथार्थ है विषय निरूपण नहीं। उनकी चित्रण शैली में वह शिष्टता है जो पाठकों की रुचि का परिमार्जन करती है उसको [illegible] कलुषित करने का प्रोत्साहन नहीं देती।

ऐसा नहीं होती ? फिर यह बात कोई महत्त्व भी नहीं रखती क्योंकि अभिव्यंजना और चित्रण में वे पूर्णतः सफल हुए हैं। छोटे छोटे व्यंजक ब्यौरों से सारा वातावरण निर्माण व्यंग्य तथा हास्य निर्माण रचना में गवेषणात्मक गति उत्पन्न करने में वे कितने सफल हुए हैं उनकी लोकप्रियता इसका प्रमाण है।